आज़ादी के परवाने

(विप्लव-यज्ञ की कुछ महत्त्वपूर्ण आहुतियाँ)

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले !
वतन पर मरने वालों का, यही बाक़ी निशाँ होगा !!

सम्पादक :

आर० सहगल

भूतपूर्व सम्पादक तथा अध्यक्ष 'चाँद' और 'भविष्य'

प्रकाशक :

कर्मयोगी प्रेस, लिमिटेड,

इलाहाबाद

मूल्य पाँच रुपए

मुद्रक : श्री० आर० सहगल
प्रकाशक : कर्मयोगी प्रेस, लिमिटेड
स्थान : रैन बसेरा, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण : मार्च, १९४८

विषय-सूची

चित्र-सूची

सुमन जी

— की —

पुण्य-स्मृति में

सुमन रानी !

तुम्हें वीरों की जीवन-गाथा पढ़ने का बड़ा चाव था। तुम प्रायः नित्य ही पूछती रहती थीं, कि 'आज़ादी का पर्वाना कब निकलेगा पापा ?' दैव का दुर्विधान था, कि उसके निकलने के पूर्व ही तुम निकल भागीं ! यह लो अपना 'पर्वाना' खूब सावधानी से जी लगा कर पढ़ना। देरी और त्रुटियों के लिए क्षमा भी कर देना, सुमन रानी!

तुम्हारा वह—
जिसे तुम बड़े प्रेम से
'पापा' कहती थीं !

प्रस्तुत प्रकाशन के पीछे एक गम्भीर इतिहास सुरक्षित है और उस इतिहास में मेरे जीवन का भी उतना ही सम्बन्ध निहित है, जितना किसी भी बड़े से बड़े क्रान्तिकारी का; पर विषय इतना नाज़ुक है, जिसे एक बार ही उगल देना मेरे बस की बात नहीं है और न ऐसा करना इस समय उचित ही होगा। कारण स्पष्ट है, उन सभी बातों को समझने के लिए पाठकों को भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम की पृष्ठ-भूमि का प्रश्रय लेना होगा, जिसका प्रकाशन इस परिमित स्थान पर सम्भव नहीं है; यद्यपि मेरी हार्दिक इच्छा यही है, कि जो कुछ भी मैं कहना चाहता हूँ, उसे यदि शीघ्र से शीघ्र कह डालूँ तो ठीक होगा, क्योंकि मेरे तूफ़ानी जीवन का यह अन्तिम पक्ष चल रहा है और न

जाने किस समय अनायास ही चराग़ गुल हो जाय और देशवासी उन जानकारियों से वञ्चित रह जायँ, जिन्हें लाखों देकर और नाना प्रकार की कठिनाइयों को झेल कर मैं ख़रीद पाया हूँ! मेरी हार्दिक इच्छा यही है, कि देश का बच्चा-बच्चा मेरी तथा मेरे समान अन्य उग्र सुधारकों तथा क्रान्तिकारियों की भूलों से लाभ उठा सके पर देखता हूँ। इसी क्षोभ से मुझे अभी कुछ दिन और भी जीना पड़ेगा। अस्तु,

मैंने अपने सार्वजनिक जीवन के प्रथम प्रभात से ही क्रान्ति की उपासना की है चाहे उसका क्षेत्र सामाजिक हो अथवा राजनैतिक, पिछले २५ वर्षों की मेरी सेवाएँ तथा मेरी कृतियाँ इस बात की द्योतक हैं। मेरी तो निश्चित-धारणा है, कि क्रान्ति ही जीवन है। संसार का प्रत्येक कण इस सत्य का साक्षी है।

क्रान्ति एक स्थिर-सत्य है; पर यह बात सर्वथा असम्भव है, कि सत्य सब अवस्थाओं में मधुर और दर्शनीय हो। भावनाओं का मूल्य वास्तव में विपत्ति है, और कोई भी सद्भावना उतनी ही ऊँची उतरती है, जितनी कि विपत्तियों में वह स्थाई रहती है। सद्भावनाएँ भी कभी-कभी देखने में कुत्सित और भीषण हो जाती हैं। जैसे खोटे सोने से खोटापन निकालने को जब उसे तेज़ाब में पकाते हैं, तब उसका जैसा वीभत्स, मैला और भीषण रूप बनता है, वैसे ही जब सत्य कलुषित स्वार्थों से पद्-दलित होता है तो विशुद्ध होने के लिए सत्य को भीषण बनना पड़ता है। क्रान्ति भी सत्य का एक भीषण रूप है। वह चाहे जैसी भयानक क्यों न हुई हो, सदा सत्य की पवित्रता और शान्ति की पुनरावृत्ति के लिए ही होती है।

'क्रान्ति' एक बड़ा डरावना शब्द है। शान्ति-प्रिय लोग, चाहे वे कितने ही सम्पन्न और सशक्त क्यों न हों, क्रान्ति के नाम से डरते हैं। कोई राजसत्ता, चाहे कैसी ही उदार क्यों न हो, उसने क्रान्ति को तत्क्षण बल-पूर्वक दबा देने के लिए कड़े क़ानून पहले ही से बना रक्खे हैं। मतलब यह, कि राजा और प्रजा दोनों ही क्रान्ति के नाम से काँपते हैं और क्रान्ति के बीज को तत्काल नष्ट कर देने में सब से अधिक व्यग्रता तथा तत्परता दिखाते हैं। इतना सब है, फिर भी संसार के सभी सभ्य-राज्यों में—अच्छे से अच्छे ज़मानों में, भारी से भारी शक्ति के सामने समय-समय पर क्रान्ति बराबर हुई, और यद्यपि, तत्कालीन सत्ताधारियों ने क्रान्ति के नेताओं को फाँसी देने, सूली पर चढ़ाने, गर्दन काटने, जीता जलाने, विष पिलाने और आजन्म कारावास के निर्दय और चरम-सीमा के दण्ड दिए हैं, परन्तु बाद में इतिहास ने उन्हें ही मुक्त कण्ठ से धर्मात्मा और निर्दोष माना है!

क्रान्ति सत्य की सच्ची आवाज़ है; क्रान्ति न्याय का खरा रूप है, क्रान्ति न्याय का निर्दोष मार्ग है, और क्रान्ति ही सामाजिक जीवन का नीरोगीकरण है। वैद्यक-परिभाषा में क्रान्ति को जुलाब कहा जा सकता है और काव्य की परिभाषा में उसे आँधी कह सकते हैं! जिस तरह इन्द्रियों के दास, जिह्वा-लोलुप-जन नाना प्रकार के मिर्च-मसाले आदि अप्राकृतिक-पदार्थ खाकर और तरह-तरह के मिथ्या आहार-विहार करके अनेक जाति के रोगोन्मूलक परमाणुओं को शरीर में बसाकर रोगी हो जाते हैं और जुलाब देकर; जिस प्रकार उनके शरीर से समस्त दूषित पदार्थ निकालें जाकर शरीर शुद्ध और निर्मल किया जाता है, ठीक उसी

प्रकार मनुष्य-समाज ईर्ष्या, द्वेष, अज्ञान और स्वार्थवश जब अनेक बुराइयों से परिपूर्ण हो जाता है, तब क्रान्ति का जुलाब देकर उसे विशुद्ध और सबल बनाकर फिर नए सिरे से व्यवहार जारी किया जाता है; और जैसे भीषण गर्मी से उन्मत्त होकर वायु प्रचण्ड हो, रेत की आँधी उड़ा ले आती है और उसके पीछे चार बूँदें पड़ने से प्रकृति सौम्य बनती है, वैसे ही क्रान्ति की आँधी एक भीषण गर्जन-तर्जन कर के समाज के समस्त दोषों को उड़ा ले जाती है और समाज को सुश्रृङ्खल बना देती है।

तीसरी परिभाषा में यदि प्रकृति के नियमों को देख कर विचार किया जाय तो ऐसा मालूम होगा, मानो क्रान्ति प्रकृति के दोषों को निकाल कर विशुद्धता और पवित्रता उत्पन्न कर देती है और फिर सद्भावनाओं की उत्पत्ति होती है। इस परिभाषा की दृष्टि से एक बात यह भी कही जा सकती है, कि इस प्रकार की क्रान्ति कुछ मनुष्य-समाज में आती हो, सो बात नहीं है, जड़-जगत् में भी वैसा ही दिखाई देता है। क्रान्ति की उपमा जो आँधी या तूफ़ान से दी जाती है, वह वास्तव में उपमा नहीं है, आँधी और तूफ़ान ही जड़-जगत् की क्रान्ति है। इन सब का अर्थ यह है, कि क्रान्ति एक प्राकृत उद्वेग है, वह एक नैसर्गिक हुड़क है, एक सत्य अग्नि है। उसमें पाप, स्वार्थ, अत्याचर और मलिनता भस्म हो जाती है और शान्ति, तृप्ति, नया सङ्गठन और जीवन प्राप्त होता है!

निस्सन्देह क्रान्ति ईश्वरीय विधान है—वह न स्वार्थ है और न पाप। कोई क्रान्तिकारी वेतन के लोभ से, पद-वृद्धि अथवा किसी अन्य

स्वार्थ-आकांक्षा से प्रेरित हो, क्रान्ति कभी नहीं करता, प्रत्युत क्रान्ति करके, भारी से भारी त्याग करके, वह भारी से भारी जोखिम अपने सिर पर ले लेता है। संसार का कोई भी स्वार्थी, कपटी और पापिष्ट व्यक्ति कभी इतना आत्मत्याग, परिश्रम और अध्यवसाय नहीं कर सकता, जितना क्रान्ति का साधारण सिपाही स्वेच्छा और आनन्दपूर्वक कर लेता है। पवित्र धर्मात्मा के मुख पर मृत्यु के समय जो आनन्द और शान्ति दीखती है, वही शान्ति और आनन्द प्रायः सभी क्रान्ति-कारियों के मुख पर मृत्यु-काल में देखने को मिलती है। बल्कि मैं तो यहाँ तक कहूँगा, कि क्रान्तिकारी और परम वीतराग योगी के अतिरिक्त, कोई वैसी शान्तिपूर्वक मृत्यु और कष्टों का सामना कर ही नहीं सकता और न किसी में इतना प्रभाव और बल ही आ सकता है। इस बात का ज्वलन्त उदाहरण पाठकों को इस पुस्तक में मिलेगा।

हम सुकरात, ईसामसीह, श्रीकृष्ण, दयानन्द और ऐसे ही हज़ारों-लाखों महापुरुषों को क्रान्तिकारी के नाम से पुकार सकते हैं; क्योंकि इनकी क्रान्ति मिथ्या विश्वासों के विरुद्ध थी, जिसके कारण समाज का आत्म-बल और विचार-धारा कुण्ठित और प्रभा-शून्य हो गई थी और जनता भीरु और मूर्ख बन रही थी; परन्तु कुछ ऐसे वीर भी हैं, जो तलवार लेकर राज-सत्ताओं के विरोध में आवाज़ उठाकर मर-मिटे। अमेरिका, यूरोप और एशिया के ऐसे असंख्य वीरों के नाम इतिहास के पृष्ठों में चमक रहे हैं। हम उन्हीं पवित्र नामों में सर्वथा बदनाम, सन् १८५७ की भारत-क्रान्ति के नायक धन्धुपन्त, नाना-साहब और पञ्जाब तथा बङ्गाल के फाँसी पाए हुए और कालेपानी की नारकीय

यातनाओं को भोगे हुए कुछ नवयुवकों को भी, और जिनकी रस्सी का खून अभी भी गीला है, उन काकोरी के प्यारों को भी गिनेंगे, जिन्होंने आज तक अपने इन भाइयों से कृतज्ञता तथा सहानुभूति नहीं प्राप्त की, जिनके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व वीरतापूर्वक बलिदान किया था! इससे बढ़ कर देशवासियों की कृतघ्नता और हो भी क्या सकती थी?

क़ानून और सामाजिक नियम मनुष्य के बनाए हुए हैं, पर सत्य ईश्वरीय नियम है। ऐसी दशा में अधिकार और स्वार्थ के मद में अन्धे होकर सत्ता वालों की रीतियाँ, जब-जब सत्य-नीति का उल्लङ्घन करेंगी, तब-तब अवश्य क्रान्ति होगी। वेद में क्रान्तियों का उल्लेख है और क्रान्ति की प्रशंसा भी। इतना ही नहीं, क्रान्ति करने की आज्ञा भी दी गई है! पुराणों में क्रान्ति की कथाएँ बहुतायत से हैं! राजाओं को राज्य-च्युत करके प्रजातन्त्र की स्थापना की अनेक घटनाएँ देखने को मिलती हैं। आज भी ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है।

हम कृष्ण को संसार का सब से बड़ा क्रान्तिकारी समझते हैं। लाखों आदमी उन्हें आज ईश्वर कह कर मानते हैं। हम भी कहते हैं, उनमें ईश्वर का विशिष्ट अंश अवश्य था। बिना ईश्वरीय अंश हुए कोई क्रान्ति करने का साहस तक नहीं कर सकता! सत्ता और राजनीति के घोर अनाचार के समय उनका जन्म हुआ। अन्धकारमय कारागार की भीषण दीवारों के बीच में जन्म होने के प्रथम ही मार डालने के प्रबल प्रबन्ध उपस्थित कर दिए गए थे और वे भी साक्षात् राजा के द्वारा! और वह राजा भी

उनकी माता का सगा भाई था, उसने अपनी निरपराध बहिन के ६ बच्चे पहले ही मार डाले थे। इससे अधिक अनाचार का और भीषण स्वरूप क्या हो सकता था? बाल-काल में ही जब वे अपने वातावरण को समझे, तो उनकी ईश्वरीय आत्मा को कर्त्तव्य-बोध हुआ। एक बार दिन भर मेंह बरसने के कारण उन्हें अपने साथियों के साथ बन में रहना पड़ा। गोप बालकों ने जब ऋषियों से अन्न माँगा तो उन्होंने अपना पवित्र यज्ञ-अन्न नीच गोपों को देने से इनकार कर दिया। यह धार्मिक जगत् के अत्याचार का कड़ा उदाहरण था। नीच गोप भूखे मर जाएँ, पर ऋषियों का पवित्र अन्न वे नहीं छू सकते, ऐसा उस काल का वातावरण था। यह वह काल था, जब भीष्म, द्रोण-जैसे गुरुजनों के समक्ष क्षमताशाली भारत-सम्राट की आज्ञा से महारानी द्रौपदी बीच सभा में अपमानित की गई। यह वह काल था, जब स्वेच्छाचारी राजा (!) मनमानी कर रहे थे। न नीति थी, न मर्यादा थी; न धर्म था, न पद्धति थी, वह क्रान्ति का युग था। कृष्ण उस क्रान्ति के समय अवतार होकर जन्मे। क्रान्ति को बाल्यावस्था से ही उन्होंने अपना व्यक्तित्व बनाया। उन्होंने सब से प्रथम कंस के विपरीत क्रान्ति की। कंस को मारा, राज-सत्ता का परिवर्तन किया। जरासिन्ध से बराबर युद्ध किया और अन्त में विराट महाभारत की धधकती आग में समस्त स्वेच्छाचारी सत्ताओं का विध्वंस किया और रहा सहा पाप प्रभास-क्षेत्र में भस्म किया। यह कृष्ण का ईश्वरत्व था; यह कृष्ण की उदार क्रान्ति थी। इस कार्य में कृष्ण के सभी छल, सभी झूठ, सभी वञ्चनाएँ अनन्त भविष्य के लिए, न केवल क्षमा कर दी गईं, वरन् अनुमोदित

भी की गई। संसार में कदाचित् ही कोई ऐसा महापुरुष हुआ होगा, जिसने बुराइयों का ऐसा खुला और निर्दोष लाञ्छना-रहित उपयोग किया हो।

प्रचलित धर्म और विश्वासों के विरुद्ध आवाज़ उठाना और खुल्लमखुल्ला उसका खण्डन करना भी क्रान्ति ही है और इसी कारण हम ईसामसीह, शङ्कर, दयानन्द और सुक़रात को भी क्रान्तिकारी समझते हैं। बात वास्तव में यही है। न्याय और उदारता के आधार पर जो आवाज़ उठाई जाय, वह चाहे राजसत्ता के विपरीत हो, चाहे धर्म समाज के विपरीत; वह चाहे किसी एक व्यक्ति की तरफ़ से हो, चाहे समस्त जन-साधारण की तरफ़ से, वह क्रान्ति ही है—पाप कदापि नहीं।

अब प्रश्न यह है कि ऐसी क्रान्तियों को राजनीति और राजधर्म अपराध क्यों मानता है? शान्त जनता उनसे क्यों भयभीत होती है? तत्कालीन सत्ताधारी इन महात्माओं को क्यों कष्ट देते हैं? जगद्गुरु ईसामसीह को अपराधी के कटहरे में खड़ा करके एक पुरुष ने गम्भीरता-पूर्वक उसे अपराधी कहकर सूली पर चढ़वा दिया। महातत्त्वदर्शी सुक़रात को सामने खड़ा करके एक विद्वान् न्यायाधिकारी ने उसे विष पी कर मर जाने की आज्ञा दे दी।

राज्यक्रान्तियों के अधिक होने के कुछ और भी गम्भीर कारण हैं। बात ऐसी है कि राज्यक्रान्तियाँ कभी सिद्धान्तवाद के आधार पर नहीं होतीं, प्रायः अवसर पर निर्मित होती हैं और उनका प्रयोग सदा इस ढङ्ग से किया जाता है, कि वे सदा अधिकारी और सत्ताधारियों के ही

सुभीते की वस्तु होती हैं। जनता जब तक अपने स्वार्थ या अधिकारों से वञ्चित रहती है, तब तक इस तरह उदासीन रहती है। इससे अधिकारी और भी अवसरवादी हो जाते हैं। परन्तु अन्त में सत्य खुलता है; असन्तोष उत्पन्न होता है और जब जनता में कोई सच्चा महात्मा उत्पन्न हो जाता है, जो इस अन्याय को नहीं सह सकता, तो वह ईश्वर और धर्म के नाम पर सत्य का पक्ष लेकर लड़ता है। यही क्रान्ति है। क्या स्वर्गीय महात्मा गाँधी क्रान्तिकारी नहीं थे ?

क़ानून जो क्रान्ति से भय खाता और उसकी निन्दा करता है, उसका कारण उपर्युक्त ही है; परन्तु जनता भी क्रान्ति से इतना भय खाती है, कि वह चुपचाप बड़े से बड़े अत्याचार सह कर भी क्रान्ति नहीं करना चाहती। मेरी समझ में इसका कारण पुरुषार्थहीनता और इन्द्रिय-दासता ही है। जो तेजस्वी हैं, जो मान-धनी हैं, वे अपने झोपड़े में अपनी ही चटाई पर सुख से सो सकते हैं। उनके पास चाहे लाख चटाइयाँ हों, यदि कोई बलपूर्वक उनकी चटाई को ले लेगा, तो वे उसी चटाई पर लड़ मरेंगे, चाहे वह चटाई छीनने वाली कोई जगद्विजयिनी शक्ति ही क्यों न हो!

राज्यक्रान्ति हमेशा राजकीय क़ानूनों के दुष्परिणामों से होती है। अतएव क़ानून की बुराई क्रान्ति की उज्जवलता और पवित्रता में कदापि दोषारोपण नहीं कर सकती। जब तक क्रान्तिकारी पुरुष उदार, महान, वीतरागी, वीर, धीर, दृढ़ और सत्यवक्ता है, तब तक क्रान्ति पवित्र, सत्य और अनुकरणीय धर्म है। यह दण्ड पर दण्ड है। जिस प्रकार दण्ड से सब भयभीत होकर नियन्त्रित रहते हैं, उसी प्रकार क्रान्ति

से दण्ड भी भयभीत होकर नियन्त्रित रहता है। जिस देश में सफल-क्रान्ति होती है, उस देश को परम सौभाग्यशाली समझना चाहिए; क्योंकि वह उसके उत्थान की योग्यता का सब से बड़ा एवं अधिक दृढ़ प्रमाण है!

राजा को देख कर हज़ारों सेनाएँ अपनी बन्दूकें नीची कर लेती हैं, हज़ारों सशस्त्र सिपाही सिर झुका कर भेड़ की तरह अपने सेनानायक की आज्ञा पालते हैं! असंख्य प्रजा राजा को देख कर सिर झुका लेती है। तब क्या वह शक्ति का प्राबल्य है? कदापि नहीं! राजा में प्रजा से अधिक बल नहीं है; सेनापति में सेना से अधिक बल नहीं है; मालिक में नौकर से अधिक बल नहीं है, उनका मान केवल उनकी स्वीकृति से ही है। और वह स्वीकृति प्रेम, सहानुभूति और मनुष्यत्व के गम्भीर प्रदेश को वशीभूत करने से ही मिलती है; परन्तु यदि वह प्रेम और सहानुभूति किसी कारण से कहीं कम या नष्ट हो जाय और इस कारण से उस आदर-सत्कार में कमी आ जाय, तो जो राजा प्रजा से, नायक सेना से, मालिक नौकर से, द्विज अछूत से—बल दिखा कर वह स्वीकृति लेना चाहे, तो उससे अधिक मूर्ख कोई नहीं हो सकता! साधारण-सी हड़ताल के समय मालिक और मज़दूरों में जो भाव देखने में आता है, क्रान्ति के समय वही भाव राजा और प्रजा, सेना और सेनापतियों में दीख पड़ता है। हज़ारों वर्ष से जिस राजसत्ता को हम लरज़ते कलेजे से देखते थे, जिस राजा ने लाखों को फाँसी पर चढ़ाया था, जो लाखों का भाग्य-विधाता था, उसी को प्रजा ने पागल कुत्ते की तरह गोली मार दी! इतने आपत्ति-ग्रसित होकर भी उन महामहिमान्वित सम्राट ने संसार से इतनी भी सहानुभूति नहीं पाई, जितनी कि

किसी तुच्छ अपराधी को प्राण-दण्ड के समय समाज से प्राप्त होती है !!

क्रान्ति किसी क्षणिक आवेश के वशीभूत होकर नहीं हुआ करती। उसका जन्म भी सुकुमार पौदों की भाँति अन्याय और अत्याचार-रूपी खाद और पानी के सम्मिश्रण का स्वाभाविक परिणाम होता है। देशोद्धार की पुनीत भावना से प्रेरित होकर और अपना सर हथेली पर लेकर स्वतन्त्रता का सौदा करने वालों को मूर्ख, उतावले, पथ-भ्रष्ट आदि विशेषणों से स्मरण करना, सचमुच ही कृतघ्नता की पराकाष्ठा है !

मैं कहना यह चाहता हूँ, कि राज्यक्रान्तियाँ अनायास अथवा बरबस ही नहीं हुआ करती हैं। उनकी तह में देश-दशा का समूचा इतिहास चित्र-पट पर पड़े हुए अक्सों की भाँति सहज ही पढ़ा जा सकता है ! अपनी इसी धारणा को स्पष्ट करने के लिए मैंने इस बात का भरसक प्रयत्न किया है, कि इस छोटी-सी पुस्तक द्वारा देशवासी स्वातन्त्र्य-संग्राम के समूचे इतिहास का पारायण कर सकें। इसी सद्भावना से प्रेरित होकर प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्त में—परिशिष्ट रूप में—असहयोग तथा सत्याग्रह का संक्षिप्त इतिहास भी दे दिया गया है, ताकि पाठक हिन्सात्मक तथा अहिन्सात्मक आन्दोलनों का तुलनात्मक अध्ययन कर के अपनी व्यक्तिगत धारणा निश्चित कर सकें। जो कुछ भी अपनी टूटी-फूटी भाषा में मैंने निवेदन किया है, उसका एक-छत्र समर्थन मैज़िनी (*Mazzini*) की उन पंक्तियों से सहज ही होता है, जो उसने कार्लायल-कृत 'फ्रान्स की राज्यक्रान्ति (*Carlyle's French Revolution*) की आलोचना में लिखी हैं। मैज़िनी का कहना है :

" Every revolution must have had a fundamental principle. Revolution is a complete rearrangement in the life of historic man. A revolutionary movement cannot be based on a flimsy and momentary grievance. It is always due to some all-moving-principle for which hundreds of thousands of men fight, before which thrones totter, crowns are destroyed and created, existing ideals are shattered and new ideals break forth, and for the sake of which vast masses of people think lightly of shedding sacred human blood. The moving spirits of revolutions are deemed holy or unholy in proportion as the principle underlying them is beneficial or wicked. As in private life, so also in history, the deeds of an individual or a nation are judged by the character of the motive. If we forget this test, we cannot appreciate the vast difference between the empire-building wars of Alexander the Great and Italy's fight for liberty under Garibaldi. Just as to decide about the merits of these two different events, one has to consider the prime motive of the chief actors in those wars, so, also to write a full history of a revolution means necessarily the tracing of all the events of that revolution back to their source.—the motive, the innermost desire of those who brought it about. This is the telescope which will show clearly the lights and shadows obscured by the blurred presentation of partial and prejudiced historians. When a beginning is made in the manner, order appears in the apparent chaos of inconsistent facts, crooked lines become straight, and straight lines appear crooked, light appears where darkness is, and darkness spreads over light, what appeared ugly becomes fair and what looked beautiful is seen to be deformed. And expec-

tedly, or unexpectedly, but in a clear form, the Revolution comes into the light of the real history."

मेरी तो निश्चित-धारणा है, कि यदि अहिंसात्मक आन्दोलन ने देश को ५० वर्ष आगे ढकेला है तो हिंसात्मक आन्दोलन ने १०० वर्ष ! इस पुस्तक में प्रकाशित सामग्री का अध्ययन करने के बाद शायद देशवासी भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे । देखता हूँ, कॉङ्ग्रेस-मताव-लम्बियों को भी, सन् १९४२ के ऐतिहासिक आन्दोलन में, उन्हीं साधनों का प्रश्रय लेना पड़ा था, जिसकी एक-मात्र निन्दा करना उन्होंने अपना व्यवसाय बना रक्खा था ! और सच तो यह है, कि कॉङ्ग्रेस के बहुमत द्वारा सञ्चालित इसी आन्दोलन का एक हद तक यह परिणाम है, कि बृटिश गवर्नमेण्ट-जैसी सत्ताधारी व्यवस्था को भी जनमत के सामने घुटने टेक देने पड़े ! हिंसा तथा अहिंसा का सिद्धान्त एक दार्शनिक विषय है जिसकी मीमांसा इस परिमित स्थान में हो भी नहीं सकती । अपनी ओर से मैंने इस छोटी-सी पुस्तक में दोनों ही पक्ष निहायत ईमान्दारी से देशवासियों के सामने पेश कर देने का प्रयास किया है । जनता-जनार्दन का निर्णय मेरे लिए सदा ही शिरोधार्य रहा है, और रहेगा भी !

जिन 'पथ-भ्रष्ट' नवयुवकों के चरित्र-चित्रण का प्रयास इस पुस्तक में किया गया है, उनमें से कोड़ियों के निकट-सम्पर्क में आने का मुझे गर्व है और अपने व्यक्तिगत अनुभवों के बल पर उनकी समस्त कार्यवाहियों का—शायद मैं अकेला ही व्यक्ति हूँ, जिसने लाखों को होली खेल कर उनका आजीवन खुला समर्थन किया हो ! अतएव मुझे इस सम्बन्ध में कुछ कहने का अधिकार है।

देखता हूँ 'स्वतंत्र-भारत' के शासक भी उन्हीं पद्चिन्हों पर चलने का उपक्रम कर रहे हैं, जिससे 'एक बार' उन्हें घृणा थी! आज भी अन्याय का विरोध करना, उतना ही जघन्य अपराध समझा जा रहा है, जितना अङ्गरेज़ी शासन काल में समझा जाता था। आज भी सच्चे, निर्भीक और निस्वार्थ देश-सेवी उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाते हैं और धूर्त, ठग, लम्पट और बहुरूपियों का देश में बोल-बाला है! सचमुच ही वस्तुस्थिति इतनी करुणापूर्ण है; अतएव स्पष्ट है, जब कि जीवित-शवों के साथ ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार हो रहा हो, तो मुर्दों की सुध ले भी तो कौन? अङ्गरेज़ी सभ्यता एवं प्रथा के अनुसार मृतकों को फूलों से सुसज्जित किया जाता है, निकट-सम्बन्धी, मित्रगण, जान-पहचान के लोग; तथा पास-पड़ौसी, साधारण से साधारण व्यक्ति की मृत्यु पर भी समाज द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करते हैं। इस प्रथा को 'रीथार्पण' (Offering of Wreath) कहा जाता है और विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक द्वन्द अथवा युद्ध के पश्चात् तो विजयी राष्ट्र का सर्वोच्च और सर्व-प्रथम कार्य होता है, अपने योद्धाओं की स्मृति को अक्षुण्य बनाए रखने का उच्चतम प्रयास! साधारण से साधारण सिपाही की यादगार भी क़ायम रखना वे अपना नैतिक कर्तव्य समझते हैं। विगत महायुद्धों के बाद पाश्चात्य देशों ने अपने योद्धाओं की स्मृति-शेष को किन-किन प्रयासों द्वारा अपने सीनों में छुपा लिया था, सो शायद मुझे बतलाना न होगा; पर यह भी देखता हूँ, कि हमारे मदान्ध शासकों ने अभी तक अपने उन मुर्दों पर कफ़न-तक डालने का प्रयास नहीं किया, जिनकी क़ुर्बानियों के बल पर ही आज वे इतरा रहे हैं! इस सङ्गठित

उपेक्षा को देख कर सचमुच ही मैं रो उठा, मेरी आत्मा चीत्कार कर उठी और इतिहासज्ञों को दुर्लभ सामग्री भेंट करने की शुभ्र-भावनाओं से प्रेरित होकर ही मैंने इस पुस्तक का सम्पादन-भार ग्रहण किया है, ताकि कहीं हम अपने इन लालों को भूल न जाएँ !

एक बात और। जहाँ तक इस पुस्तक की प्रमाणिकता का सम्बन्ध है, मैं यह रहस्य भी बतला देना चाहता हूँ, कि प्रस्तुत पुस्तक में प्रकाशित अधिकांश सामग्री एक व्यक्ति द्वारा नहीं; बल्कि कई सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारियों तथा विप्लवी नायकों द्वारा स्वयं लिखी गई है; यह भी क्यों न बतला दूँ, कि इस नाटक के दर्जनों पात्र भेष बदल कर मेरे सहयोगी के रूप में एक सुदीर्घ काल तक 'चाँद' तथा 'भविष्य' के सम्पादकीय तथा प्रबन्ध विभाग में कार्य करते रहे हैं, जबकि मैं इन पत्र-पत्रिकाओं का एक-क्षत्र स्वामी था; पर कहते हुए लज्जा प्रतीत होती है, मेरे ही सगे छोटे भाई, नन्द गोपाल सिंह सहगल (जिसने अपनी धूर्तता और दग़ाबाज़ियों के कारण सारी संस्था उस समय हड़प ली, जब कि मैं जेल में सड़ रहा था और जो आज भी देशवासियों को मेरे नाम पर ठग रहा है) ने सचमुच ही मुझे मार कर भी रोने नहीं दिया !

आज मेरे साधन नितान्त परिमित हैं। मेरी विचार-धारा सचमुच ही घुट रही है, छटपटा रही है—मैं जो सोचना चाहता हूँ, वह सोच नहीं सकता; जो लिखना चाहता हूँ, वह लिख नहीं सकता, जो बोलना चाहता हूँ, उसे व्यक्त नहीं कर सकता, ऐसी दयनीय और सर्वथा विपरीत परिस्थियों में—जो कुछ भी मैं देशवाशियों की भेंट कर सका हूँ, उसे मेरी बेहयाई

ही समझी जायगी, मैं यह ख़ूब समझता हूँ ; पर खुल कर रो लेने से, जिस-प्रकार प्राणी-मात्र की मानसिक उथल-पुथल एक हद तक शान्त हो जाया करती है, इस समय ठीक वही मेरी मानसिक दशा है ; कौन क्या समझेगा, इस बात की चिन्ता मैंने कभी की ही नहीं ; करना भी नहीं चाहता।

मुझे इस बात का सचमुच ही बड़ा खेद है कि श्रद्धेय टण्डन जी इस पुस्तक की भूमिका न लिख सके ; इसलिए नहीं, कि मेरा उन पर दबाव है ; बल्कि इसलिए, कि वही एक-मात्र महापुरुष हैं ; जो इसके अधिकारी थे ; पर उनकी अस्वस्थता—उनका वर्तमान तूफ़ानी कार्यक्रम जिसके पीछे, गाँधी जी के एक मात्र उत्तराधिकारी टण्डन जी, आज पागलों की भाँति व्यग्र हैं—को दृष्टि में रखते हुए मेरा साहस ही नहीं हो सका, कि मैं इस नए प्रकाशन की चर्चा तक उनसे कर सकूँ ; नहीं तो कदाचित वे मेरा अनुरोध टालते नहीं।

समस्त-भारत की बात मैं नहीं जानता, पर पाठकों को यह जान कर अवश्य ही आश्चर्य हो सकता है, कि प्रयाग में हम दो ही ऐसे प्रमुख प्राणी रहे हैं, जिन्होंने इन विप्लवकारी नवयुवकों को अवसर पड़ने पर अपने सीने चीर कर उन्हें इनमें छुपा लिया था, सम्भव है प्रस्तुत पुस्तक के आगामी संस्करण में हम दोनों ही अपने-अपने व्यक्तिगत अनुभवों को स्वतन्त्रता पूर्वक व्यक्त कर सकें।

रैन बसेरा,
इलाहाबाद

—आर० सहगल
२३ मार्च, १९४८

कूका-विद्रोह के बलिदान

देखते-देखते पञ्जाब-केशरी रणजीत सिंह अपने प्यारे पञ्जाब को छोड़कर महायात्रा कर गए। उनके आँख मूँदते ही अङ्गरेज़ों की बन आई। दस ही वर्ष के भीतर पञ्जाब का नक़शा भी लाल रङ्ग में रँग दिया गया। अलीपुर और सुबराओं तथा गुजरात और चेलियाँवाला में वीर सिक्ख सैनिकों ने जिस वीरता का परिचय दिया था, उसकी याद आज भी रोमाञ्चित किए बिना नहीं रहती। परन्तु देश का दुर्भाग्य! नेताओं ने सदा धोखा दिया। और आखिर पञ्जाब भी पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ दिया गया।

* * *

१८५७ के दिन आए। समस्त भारत को सङ्गठित किया गया। पञ्जाब की ओर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया। अभी कल तो अपनी स्वतन्त्रता क़ायम रखने के लिए वीर योद्धाओं ने बढ़ बढ़ कर आत्म-बलिदान किए थे; अभी कल ही तो उन्होंने वह बहादुरी दिखाई थी कि जिसे देखकर शत्रु भी दङ्ग रह गए थे; अपने प्यारे महाराजा की प्रेयसी की दुर्दशा और छोटे महाराजा दलीपसिंह के साथ घोर अन्याय देखकर वह तड़प उठे थे; कौन आशा कर सकता था, कि उसी पञ्जाब में दस वर्ष के भीतर ही इतना परिवर्तन हो जाएगा

कि वह स्वतन्त्रता के संग्राम में विभीषण का काम करेगा। परन्तु वही हुआ, जो नहीं सोचा गया था। पञ्जाबी 'वीरों' (!) ने अपने ही भाइयों के उस विराट् आन्दोलन को बुरी तरह तहस-नहस कर डाला और सदा-सर्वदा के लिए पञ्जाब के उज्ज्वल ललाट पर कलङ्क-कालिमा पोत दी।

परन्तु उस कालिमा को धोने के लिए पञ्जाब ने अपना रक्त भी ख़ूब भेंट किया। अनेक वीरों ने 'रणाङ्गण में, फाँसी के तख़्ते पर या जेल में तिल-तिल कर आत्म-बलि दे दी, और आज तक वह बलि-शृङ्खला चल ही रही है।

पञ्जाब में सब से पहले जो बलिदान हुए, वे 'कूका-विद्रोह' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कूका-आन्दोलन के नेता श्री० गुरु रामसिंह का जन्म सन् १८२४ ई० में भैणी नगर, ज़िला लुधियाना में हुआ था। वे युवावस्था में महाराजा रणजीतसिंह की सेना में नौकरी करने के लिए भर्ती हो गए थे। परन्तु अधिकतर ईश्वरोपासना में विलीन रहने के कारण वे अपना कार्य भी ठीक न कर पाते थे। इसी से त्याग-पत्र देकर वे वहाँ से चले आए और गाँव में ही शान्तिपूर्वक भगवद्भजन करने लगे। भक्ति-भाव के कारण आपका नाम बहुत प्रसिद्ध हो गया और लोग दूर-दूर से दर्शनों के लिए आने लगे। आपने समाज की बुराइयों के विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया। परन्तु फिर शीघ्र ही यह अनुभव हुआ कि देश की वास्तविक उन्नति राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त किए बिना नहीं हो सकती। इसी-

लिए उनके धार्मिक उपदेशों में राजनैतिक बातों का भी प्रचार होने लगा। कहते हैं कि श्री० रामदास नामी एक साधु ने उनकी प्रसिद्ध की बात सुनी तो उनके पास जाकर कहा— "साहब! यह समय इस तरह वैयक्तिक आनन्द उड़ाने का नहीं। छोड़िए भक्ति-मार्ग को और देश में कर्मशीलता का सञ्चार कर, उसे स्वतन्त्र कीजिए। इन्हीं श्री० रामदास का ज़िक्र सरकारी रेकॉर्डस् में है। परन्तु फिर एकाएक वे किधर ग़ायब हो गए, यह नहीं जाना जा सका। सरकारी काग़ज़ों में भी कुछ निश्चित रिपोर्ट नहीं है, लोगों का कहना है कि उन्होंने रूस की ओर प्रस्थान कर दिया था। जो हो, गुरु रामसिंह राजनैतिक क्षेत्र में कटिबद्ध होकर उतर आए। उनका धार्मिक सम्प्रदाय अलग बन गया था, जिसके कि वे गुरु समझे जाते थे। वह 'नामधारी' कहलाता था।

उस समय उन्होंने देश में असहयोग का प्रचार किया। शिक्षा, अदालत आदि सभी चीज़ों के बहिष्कार के साथ ही साथ रेल, तार और डाक का अपना निजी प्रबन्ध कर लिया। यह सब देखकर, सरकार बौखला उठी और उन पर विशेष बन्दिशें लगा दी गईं।

परन्तु गुरु रामसिंह ने कार्य-क्षेत्र को और भी विस्तृत कर दिया। अधिकतर गुप्त रूप से ही कार्य होने लगा। पञ्जाब प्रान्त को २२ ज़िलों में विभाजित कर २२ अध्यक्ष नियुक्त कर दिए गए, जोकि अपने सङ्गठन को बढ़ाते और

दीक्षा देते जाते थे। कुछ दिनों में ही यह राजनैतिक तथा धार्मिक सम्प्रदाय ज़ोर पकड़ गया। परन्तु वाह्य आडम्बर कम हो जाने के कारण सरकार का सन्देह दूर हो गया और सब बन्दिशें हटा दी गईं। यह बात सन् १८६९ की है। बन्दिशें के हटते ही उत्साह बढ़ा। लोग उन्मत्त हो उठे। उनके लक्ष्य में और आदर्श में गो-रक्षा का भाव बहुत ज़ोरों से मौजूद था।

१८७१ में कुछ कूके वीर अमृतसर से जा रहे थे। बूचड़ों से मुठभेड़ हो गई। सबको क़त्ल कर के वे सीधे भैणी की ओर चल दिए। इधर अमृतसर में सभी प्रतिष्ठित हिन्दू पकड़ लिए गए। गुरु रामसिंह को समाचार मिला। तुरन्त उन लोगों को कोर्ट में जाकर अपना अपराध स्वीकार करने और आत्म-समपर्ण करने को लौटा दिया गया। लोगों पर इस बात का बहुत प्रभाव पड़ा। सरकार एक व्यक्ति-विशेष का यह प्रभाव बढ़ता देख न सकी।

सन् १८७२ में १३ जनवरी को भैणी में माघी का मेला होने वाला था। सहस्रों कूके उधर जा रहे थे। रास्ते में जाते हुए एक कूके का एक मुसलमान से मुस्लिम रियासत मालेर कोटला में झगड़ा हो गया। मुसलमानों ने उसे पकड़ कर बहुत पीटा और एक गाय उसके पास गिरा कर हलाल कर दी गई। वह क्रुद्ध और मायूस होकर वहाँ से गया और भरे दीवान में अपनी दुख-गाथा कह सुनाई। लोगों में उत्तेजना बढ़ी। सभी ने गुरु रामसिंह से आग्रह किया कि जिस विप्लव की आयो-

जना इतने दिनों से की जा रही है, वह आज ही आरम्भ कर देना चाहिए। परन्तु पर्याप्त तैयारी न दीखने से गुरु जी उनसे सहमत न हुए। उन्होंने गले में पगड़ी डाल कर उन लोगों से शान्त रहने की प्रार्थना की। बहुत से लोग उनका अनुनय-विनय सुन शान्त हो गए; परन्तु १५० व्यक्ति प्रतिहिंसा की आग से जल उठे। वे शान्त न हो सके, उन्होंने विद्रोह खड़ा करने की घोषणा कर दी। तब गुरु जी ने एक उपाय सोचा। उन्होंने पुलिस को कहला भेजा कि इन उत्तेजित लोगों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, अतः इनकी किसी कार्यवाही का उत्तरदायित्व मुझ पर न रहेगा। उन्होंने सोचा था कि इससे शेष सङ्गठन बच जायगा तो फिर शीघ्र ही पूरी तैयारी से विप्लव मचा दिया जायगा।

इधर इन लोगों ने मलौध नामक एक क़िले पर आक्रमण कर एक तोप, कुछ तलवारें और घोड़े निकाल लिए। कहा जाता है, कि इस क़िले के सरदारों ने विप्लव में साथ देने का वचन दे रक्खा था। उसी भरोसे पर इन लोगों ने उनसे साथ देने का आग्रह किया। परन्तु वे सरदार अपरिपक्व विद्रोह उठता देख, साथ देने का साहस ही न कर पाए। अब इन लोगों ने शस्त्र हासिल करने के ख्याल से उन्हीं के क़िले पर आक्रमण कर दिया। अगले दिन प्रातःकाल मालेर कोटला शहर पर आक्रमण कर दिया और महल तक में जा घुसे, हालाँकि वहाँ पहले से ही लोग सतर्क किए जा चुके थे और

असंख्य सैनिक पहरे पर नियुक्त थे। लड़ाई हुई। इन लोगों ने खज़ाने पर आक्रमण किया। परन्तु विशेष कारणों से इन्हें लौटना पड़ा। पीछा हुआ, खूब लड़ाई हुई। ये लोग बड़ी वीरता से लड़े और अन्त में पटियाला रियासत के सीमान्त-स्थित रढ़ नामक गाँव के निकटवर्त्ती जङ्गल में लड़ते हुए ६८ व्यक्ति पकड़े गए। उनमें से ५० को तो अगले दिन लुधियाना के डिप्टी-कमिश्नर मि० कॉवन ने मालेर कोटला में तोप से उड़ा दिया। बारी-बारी से सहर्ष जय-नाद करते हुए वे लोग तोप से बँध जाते और एक ही धमाके के शब्द के बाद न जाने वे किधर विलुप्त हो जाते। इस तरह ४९ को तो उड़ा दिया गया, परन्तु पचासवाँ एक तेरह वर्षीय बालक था। उस पर दयालु होकर मिसेज़ कॉवन ने अपने पति से उसे क्षमा करने को कहा। मि० कॉवन ने झुक कर गुरु रामसिंह को गाली बकते-झकते उससे कहा कि तुम कह दो कि तुम उसके अनुयायी नहीं हो तो छोड़ दिए जाओगे, परन्तु अपने गुरु के प्रति यह घृणित और कुत्सित शब्द बकते सुन उस बालक को ऐसा क्रोध आया कि तड़प कर पहरे वालों के हाथों से निकल गया और मि० कॉवन को दाढ़ी से पकड़ लिया, और तब तक, न छोड़ा जब तक कि उसके दोनों हाथ नहीं काट दिए गए और उसे भी वहीं पर ढेर न कर दिया गया!

शेष सोलह व्यक्ति अगले दिन मलौध में फाँसी पर लटका दिए गए। जिस आनन्द और हर्ष से वे लोग अपना प्राणोत्सर्ग

कर रहे थे, वह देखते ही बनता था। उन लोगों ने, उन निष्फल विद्रोही सैनिकों ने, अपने आदर्श के लिए अपने प्राण दे दिए। और निज रक्त से पञ्जाब के ललाट को और भी गौरवमय बना दिया।

उधर गुरु रामसिंह जी १८१८ रेगुलेशन के अनुसार गिरफ़्तार कर लिए गए और बर्मा में निर्वासित करके भेज दिए गए। वहीं पर १८८५ में जेल में ही आपका देहावसान हो गया।

आज लोग इन हुतात्माओं को भूल चुके हैं; उन्हें मूर्ख और उतावले, पथ-भ्रष्ट तथा आदर्शवादी बतलाते हैं, परन्तु कहाँ है आज वह उत्साह और साहस? कहाँ है वह निर्भीकता और तत्परता? आज कितने हैं, जो उसी प्रकार हँसते हुए फाँसी के तख़्ते पर प्राण दे सकेंगे?

श्री० चापेकर बन्धु

सन् १८९७ का साल था, अभी अन्य पाश्चात्य वस्तुओं की भाँति भारत के गाँव-गाँव में प्लेग का प्रचार न हुआ था। अस्तु। पूना में प्लेग फैलने पर सरकार की ओर से जब लोगों को घर छोड़ कर बाहर चले जाने की आज्ञा हुई तो उनमें बड़ी अशान्ति पैदा हो गई। उधर शिवाजी-जयन्ती तथा गणेश पूजा आदि उत्सवों के कारण सरकार की वहाँ के हिन्दुओं पर

अच्छी निगाह थी। वे दिन आजकल के समान नहीं थे। उस समय तो स्वराज्य तथा सुधार का नाम लेना भी अपराध समझा जाता था! लोगों के मकान न खाली करने पर सरकार को उन्हें दबाने का अच्छा अवसर हाथ आ गया। प्लेग-कमिश्नर मि० रेण्ड की ओट लेकर कार्यकर्ताओं द्वारा ख़ूब अत्याचार होने लगे। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई और सारे महाराष्ट्र में असन्तोष के बादल छा गए।

गवर्नमेण्ट-हाउस पूना में विक्टोरिया का ६० वाँ राज-दरबार बड़े समारोह के साथ मनाया गया। जिस समय मि० रेण्ड अपने एक और मित्र के साथ उत्सव से वापस आ रहे थे, तो एकाएक पिस्तौल की आवाज़ हुई और देखते-देखते रेण्ड महाशय ज़मीन पर आ गिरे। उनके मित्र अभी बच निकलने का मार्ग ही तलाश कर रहे थे कि एक दूसरी गोली ने उनका भी काम तमाम कर दिया। चारों ओर हल्ला मच गया और दामोदर चापेकर उसी स्थान पर गिरफ़्तार कर लिए गए। यह घटना २२ जून, १८९७ की है।

अदालत में आप पर, अपने छोटे भाई बालकृष्ण चापेकर तथा एक और साथी के साथ अभियोग चलाया गया। पकड़े जाने पर तीसरा साथी सरकारी गवाह बन गया और सारा भेद खुल गया।

किसी-किसी उपवन में प्रायः सभी फूल एक दूसरे से बढ़कर ही निकलते हैं। दो फूल तो देवता के चरणों तक पहुँच चुके थे,

अब तीसरे की बारी आई। चापेकर भाइयों में सबसे छोटे ने आकर माँ के चरणों में प्रणाम किया और कहा—"माँ! दो फूल तो रामाँ के काम आ गए, अब मैं भी उन्हीं के चरणों तक पहुँचने की आज्ञा लेने आया हूँ!" उस समय माता के मुख से एक शब्द भी न निकला। उसने बालक के मस्तक पर हाथ फेरते हुए उसका मुख चूम लिया।

एक दिन जब अदालत में चापेकर-बन्धुओं की पेशी हो रही थी, तो उनके तीसरे भाई ने वहीं पर उस सरकारी गवाह को मार दिया। उस समय किसी को इस बात का ध्यान तक न था कि वह छोटा-सा लड़का प्रतिहिंसा की आग से इतना पागल हो उठेगा।

अन्त में उन तीनों भाइयों को एक और साथी के साथ फाँसी दे दी गई!

श्री० कन्हाईलाल दत्त

कन्हाई सचमुच ही विप्लव-युग का कन्हाई था। १८८७ की कृष्णाष्टमी की काली अँधियारी रात में उसने पहले-पहल इस दुनिया की रोशनी देखी थी। उस दैवी ज्योति के आलोक से एक बार फिर भारत के प्राण जगमगा उठे। विपक्षियों के हृदय दहल गए और इतिहास के पृष्ठ खून से तर-बतर हो गए। वह ऐसा प्रकाश था, जिसकी आभा आज तक कम न

हुई, प्रत्युत दिनोंदिन बढ़ती ही चली गई। आज कन्हाई का पार्थिव शरीर हमारे बीच में नहीं है, फिर भी उसका मूर्तिमान् आदर्श बरबस हमारे हृदयों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। *To see him was to love him* की बात अक्षरशः उसके बारे में सत्य थी। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' अस्तु। बचपन से ही उनके ढङ्ग औरों से निराले थे। पढ़ने-लिखने में वे प्रायः सबसे प्रथम ही रहा करते थे और स्कूल के सभी लड़के उनसे विशेष स्नेह रखते थे। दीन-दुखियों से तो उन्हें कुछ विशेष सहानुभूति थी और एक धनी-मानी के घर जन्म लेकर भी वे प्रायः निर्धन विद्यार्थियों के साथ ही रहा करते थे। आज किसी के लिए किताबें खरीदी जा रही हैं, तो कल एक और के लिए कपड़ों का प्रबन्ध हो रहा है, और परसों किसी तीसरे के लिए भोजन की व्यवस्था की जा रही है। सारांश यह, कि कन्हाई बड़ा उदार-चरित तथा दयावान् था और देश-सेवा के भाव उस कोमल हृदय में बचपन से ही अङ्कुरित हो उठे थे।

बम्बई और बङ्गाल में शिक्षा पाकर ग्रेजुएट होने के बाद कन्हाई, यह कह कर कि नौकरी की तलाश में कलकत्ते जाता हूँ, घर से निकल पड़े। विदा होते समय उनकी माता ने स्वप्न में भी यह न सोचा था कि उनका प्यारा कन्हैया किसी और ही उद्देश्य को लेकर कलकत्ते जा रहा है।

स्वदेशी-आन्दोलन समाप्त हो चुका था और क्रान्ति का धुआँ

छिपे-छिपे बङ्गाल में ज़ोरों के साथ फैल रहा था। आघात पर आघात लगने से बङ्गाल में एक मर्मवेधी आर्तनाद घहरा उठा। घर-बार पर लात मार कर बङ्गाली युवकों ने प्राणों की बाज़ी लगानी शुरू की। अङ्कुर तो उग ही चुका था, अब परिस्थिति अनुकूल पाकर उसने विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लिया। माता की ममता, पिता का प्रेम, धन-वैभव का लोभ अथवा मृत्यु का भय अब कन्हाईलाल को अपने कर्त्तव्य से अलग न कर सका। उसने अन्त समय तक पर्वत की भाँति अचल तथा समुद्र की भाँति गम्भीर रहकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया। उस समय विप्लव-कार्य को देशव्यापी बनाने के लिए कन्हाईलाल ने जिस संलग्नता के साथ प्राणपण से अथक परिश्रम किया था, वह बिरले ही लोगों में दिखाई देता है।

चन्द्रनगर में विप्लव का केन्द्र स्थापित कर, सन् १९०७ में कन्हाईलाल कलकत्ते आ गया। कुछ दिन मानिकतल्ला बाग़ में श्री० उपेन्द्र आदि के पास रहकर उसे चटगाँव के एक कारखाने के प्रचार के लिए जाना पड़ा, किन्तु एक अमीर का लड़का आख़िर कुली बन कर कब तक छिपा रह सकता था। अस्तु; कुछ ही दिनों बाद उसे फिर वापस आना पड़ा। इस बार मानिकतल्ला न जाकर, उसने एक बम् की फ़ैक्ट्री में अपना अड्डा जमाया। उसे केवल धर्म-चर्चा अच्छी न लगती थी, वह तो काम चाहता था।

मई, सन १९०८ के आरम्भ में उक्त बाग़ की तलाशी ली

गई और गिरफ़्तारियाँ शुरू हो गईं। कन्हाईलाल भी पकड़ कर अलीपुर जेल में लाया गया। जेल में एक ही प्रकृति वाले कितने ही नवयुवकों का काफ़ी जमाव हो गया। काम तो कुछ था नहीं, अतएव कहीं धर्म की चर्चा होने लगी तो कहीं दो-चार ने राजनीति पर बहस शुरू कर दी। नित्य ही विवाद हुआ करता था, किन्तु कन्हाई ने कभी भी उसमें भाग न लिया। सब को तङ्ग करना तथा सोना, यह उसके दो मुख्य काम थे। जिस समय नरेन्द्र गोसाईं के बारे में बात छिड़ती तो कोई कहता कि उसे मृत्यु-दण्ड हो और कोई किसी अन्य प्रकार के दण्ड का विधान तैयार करता; किन्तु उस समय भी कन्हाई ने कभी एक बात भी न कही।

एक दिन अचानक कन्हाई के पेट में बड़े ज़ोरों का दर्द होने लगा और उसे अस्पताल भेज दिया गया। सत्येन्द्रकुमार खाँसी आने के कारण पहले ही से वहीं पर थे। उन्होंने नरेन्द्र से अपने सरकारी गवाह बनने की इच्छा प्रकट की। उन पर विश्वास कर एक दिन नरेन्द्र एक अङ्गरेज़ की संरक्षता में उनसे कुछ सलाह करने आया। अच्छा अवसर हाथ आया देख, सत्येन्द्र ने उस पर फ़ायर कर दिया। गोली पैर में लगी, किन्तु नरेन्द्र गिरा नहीं। उसे भागते देख कन्हाई आगे बढ़ा, पर उस अङ्गरेज़ ने उसे पकड़ लिया। कन्हाईलाल ने उस पर भी गोली चलाई और वे महाशय हाथ घायल हो जाने के कारण अलग खड़े होकर चिल्लाने लगे। नरेन्द्र को अस्पताल के बाहर

होते देख, कन्हाई ने उसका पीछा किया। फाटक पर पहरेदार ने रिवॉल्वर देखकर स्वयं ही दरवाजा खोल दिया और उँगली के इशारे से यह भी बता दिया कि नरेन्द्र उस ओर गया है। इस बार नरेन्द्र को देखते ही उसकी पिस्तौल दनादन गोलियाँ उगलने लगी। उस समय किसी को भी उसकी उग्र-मूर्ति का सामना करने का साहस न हुआ। जेल के और कर्मचारी तो इधर-उधर छिप गए, किन्तु जेलर साहब मुसीबत में आगए। बेचारा अपने मोटे-ताजे शरीर के आधे भाग को एक लकड़ी की तिपाई के नीचे छिपा कर पड़ रहा। नरेन्द्र के गिर जाने पर जब उसकी पिस्तौल खाली हो गई तो उसे गिरफ़्तार कर लिया गया। अभियोग चलने पर इन दोनों को ही फाँसी की सज़ा हुई। १० नवम्बर, १९०८ तक, जिस दिन उन्हें फाँसी दी गई थी, उनका वज़न १६ पाउण्ड बढ़ गया था।

कन्हाई के फाँसी के दिन का वर्णन श्री० मोतीलाल राय ने बड़े ही करुणाजनक शब्दों में किया है, अतएव उसे उन्हीं के शब्दों में पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जाता है :

"कन्हाईलाल का शव लेने के लिए हम लोग धीरे-धीरे एक अङ्गरेज़ के पीछे चल दिए। उस समय शोक और दुख से सारा शरीर काँप रहा था। धीरे-धीरे लोहे के फाटक को पार कर हम लोगों ने भीतर प्रवेश किया। सहसा उस व्यक्ति ने उँगली से एक कमरा दिखाया। उसी छोटे कमरे में सिर से पैर तक काले कम्बल से ढँका हुआ कन्हाई का मृत-शरीर पड़ा था।

हम लोगों ने उसे आँगन में लाकर रक्खा। किसी को भी ऊपर का कम्बल उतारने का साहस न हुआ। आशु बाबू की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। एक-एक कर सभी रोने लगे। उस समय उस गोरे ने कहा—"रोते क्यों हो? जिस देश में ऐसे वीर युवक जन्म लेते हैं, वह देश धन्य है, जन्म लेकर मरना ही होगा; इस प्रकार की मृत्यु मनुष्य कब पाते हैं?" हम लोग विस्मित नेत्रों से उसकी ओर देखने लगे। साहब ने शव बाहर ले जाने को कहा। हमने डरते-डरते कम्बल उतारा। ओह! उस दिव्य। स्वरूप का परिचय कराना हमारी शक्ति से परे है। लम्बे-लम्बे बालों ने प्रशस्त ललाट को ढँक लिया था। अधखुली आँखों से उस समय भी अमृत ढलक रहा था। दृढ़-बद्ध ओष्ठ-पुटों में सङ्कल्प की जाग्रत-रेखा फूटी पड़ती थी, फूलों आदि से सजाए जाने पर ऐसा जान पड़ता था, मानो वह एक मधुर हँसी हँस रहा है।

"उस दिन जेल के बाहर उसके स्वागत के लिए मानव-समुद्र उमड़ आया था। बाहर आते ही 'बन्दे-मातरम्' की आवाज़ के साथ ही फूलों की वर्षा होने लगी। कन्हाई की श्मशान-यात्रा के समय इतना जन-समूह उमड़ आएगा, इसकी मझे आशा न थी।

"एक छोटी वक्तृता के बाद चिता में आग दे दी गई, और कुछ घण्टों के बाद वहाँ राख के एक ढेर के सिवा और कुछ न रहा। उस समय चिता की एक मुट्ठी भस्म पाने के लिए

लोगों में एक प्रकार की छीना-झपटो-सी मच गई। मैं भी अस्थि का एक टुकड़ा चाँदी की डिब्बी में रखकर घर वापस आया।

"आधी रात का समय था। ऐसा जान पड़ा कि घर एक प्रकार की दुर्गन्धि से भरा है। मैं भयभीत होकर उठ बैठा। उस समय कन्हाई की विधवा माता का करुण-क्रन्दन हृदय को विदीर्ण करने लगा। मैं घुटने टेक कर बैठ गया और उस वीर-प्रसविनी विधवा की चरण-रज मस्तक में लगा ली, और करुण-स्वर से कहा— 'वन्देमातरम्' !"

इसी सम्बन्ध में उपेन्द्र बाबू ने लिखा है :

"अब उसी पुरानी कहानी का वर्णन करने की इच्छा नहीं होती। आज वे सब बातें मन से अलग हो चुकी हैं। हाँ केवल कन्हाईलाल के मुख की झलक रह गई है। आज जब चारों ओर से यही सुनाई पड़ता है कि अहिंसा ही परम धर्म है, उस समय चुप हो कर सुन लेता हूँ। परन्तु साथ ही साथ कन्हाईलाल की परम शान्त मुख-छवि का स्मरण हो आता है। वे आँखें क्या हत्यारी आँखें थीं ? क्या वे अशान्ति या अधार्मिकता की आँखें थीं ? अन्तरात्मा कभी साक्षी नहीं देता। हृदय से केवल यही ध्वनि निकलती है, कि धर्म का तत्व हिंसा और अहिंसा दोनों के परे है। कन्हाईलाल मर कर भी मरा नहीं है।"

श्री० सत्येन्द्रकुमार बसु

मुज़फ़्फ़रपुर हत्याकाण्ड ३० अप्रैल, सन् १९०८ ई० को हुआ। इसके होते ही सारे बङ्गाल में तलाशियों और गिरफ़्तारियों की धूम मच गई। कलकत्ते के प्रायः सभी अड्डों की तलाशियाँ हुईं और २री मई, १९०८ को बहुत से कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार कर लिए गए। इन लोगों को अलीपुर जेल में रक्खा गया और सब पर मुक़दमा चलाया गया। गिरफ़्तारी से इन लोगों में कोई उदास तक नहीं हुआ, क्योंकि इस दिन की प्रतीक्षा बहुत पहले से थी। ख़ूब चहल-पहल और धूम-धाम से इन लोगों के दिन बीत रहे थे, कि एकाएक एक दिन मालूम हुआ कि श्रीरामपुर का नरेन्द्र गोसाईं सरकारी गवाह बनने जा रहा है। वह समिति का सारा भेद खोल देगा और इससे आशातीत हानि होगी। अतएव विश्वासघातक को दण्ड देना और समिति की रक्षा करने का कठिन कर्त्तव्य सारे कार्यकर्त्ताओं के सामने उपस्थित हो गया। विश्वासघातक को दण्ड देकर समिति की रक्षा कौन करे, यही समस्या सब के सामने थी।

जिन दिनों की यह बात है, उन्हीं दिनों मेदिनीपुर से श्रीयुत सत्येन्द्रकुमार बसु, जिन्हें बिना लाइसेन्स अपने बड़े भाई की बन्दूक़ इस्तेमाल करने के अपराध में २ साल का कठिन कारावास हुआ था, अलीपुर जेल में लाए गए; क्योंकि कलकत्ते के

गिरफ्तार हुए लोगों से इनका घनिष्ट सम्बन्ध पाया गया और इनके ऊपर भी एक और नया मुक़दमा चलाया गया।

स्वदेशी-युग में मेदिनीपुर की समिति की बहुत ख्याति हुई थी। इसने बड़े-बड़े कार्य किए थे। सत्येन्द्र बाबू ही इनके प्रधान संयोजक समझे जाते थे। जब ये मेदिनीपुर से अलीपुर जेल लाए गए, तब इन्हें नरेन्द्र गोसाईं के विश्वासघात की बात बतलाई गई। समिति के नियमानुसार इन्होंने भी विश्वासघातक को प्राण-दण्ड देने की राय दी।

जब अरविन्द बाबू आदि कुछ नेताओं को छोड़, प्रायः सभी नरेन्द्र की हत्या के पक्ष में हो गए, तब निश्चय को कार्य-रूप में परिणत करने की सूझी! जेल के अन्दर नरेन्द्र की हत्या कैसे होगी, जबकि उसके साथ बराबर गार्ड रहते हैं और वह अन्य क़ैदियों से बिलकुल अलग रक्खा जाता है। हत्या का भार भी साधारण आदमी नहीं ले सकते थे, क्योंकि इस कार्य के लिए अत्यन्त विश्वस्त और कार्य-कुशल व्यक्ति की आवश्यकता थी। अन्त में सब ने मिल कर इस दुसह कार्य का भार इन्हीं सत्येन्द्रकुमार के ऊपर डाला।

कार्य-भार लेकर आप बीमार पड़ गए और अस्पताल पहुँचाए गए। अस्पताल में नरेन्द्र से भेंट हुई। अपने ऊपर उसका विश्वास जमाने के लिए सत्येन्द्र ने उसके सामने अपने को बहुत भयभीत प्रकट किया और कहा कि मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा। धीरे-धीरे दोनों मिल कर गवाही की तैयारी करने लगे।

इधर जब तक सत्येन्द्र अस्पताल में थे, बाहरी लोगों के साथ भी पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हो गया और अन्त में रिवॉल्वर भी मिल गया। सितम्बर को देवव्रत बाबू आदि के विरुद्ध नरेन्द्र की गवाही होने वाली थी। सत्येन्द्र जानते थे कि नरेन्द्र की गवाही से बहुत से दोषी और निर्दोषी फँस जायँगे, अतः गवाही देने के पहले उसकी हत्या का विचार पक्का कर लिया। कुछ लोगों को इसकी सूचना भी दे दी। सूचना मिलने पर कन्हाई लाल दत्त पेट-दर्द के बहाने अस्पताल पहुँचे और दोनों उत्सुकता से नरेन्द्र की बाट जोहने लगे।

१ली सितम्बर को नित्य के नियमानुसार अपने दो यूरेशियन अङ्ग-रक्षकों के साथ नरेन्द्र सत्येन्द्र के पास अस्पताल में आया और दुतल्ले की सीढ़ी के पास बैठ गया। सत्येन्द्र ने यह समझ कर कि सामने का शिकार क्यों छोड़ूँ, अपने कुर्ते के नीचे हाथ कर नरेन्द्र के ऊपर गोली चलाई। पहली बार केवल आवाज़ होकर ही रह गई, आग नहीं जल सकी। इस पर कुर्ते से हाथ बाहर निकाल कर सत्येन्द्र ने दूसरा फ़ायर किया। दूसरा वार करते देखकर हिगेनबॉथम ने, जो नरेन्द्र का अङ्ग-रक्षक था, सत्येन्द्र को पकड़ लिया। सत्येन्द्र ने उस पर भी वार किया। जब उसके हाथ में चोट लगी तब वह इन्हें छोड़ कर अलग जा खड़ा हुआ। इधर यह हो रहा था, उधर नरेन्द्र दुतल्ले से नीचे उतरा। नीचे उतरता देखकर कन्हाई लाल दत्त ने उस पर वार किया। निशाना पैर में लगा, लेकिन

फिर नरेन्द्र भागता ही गया। कन्हाईलाल ने नरेन्द्र का पीछा किया। सत्येन्द्र भी दौड़े और एक क़ैदी से पूछा—'नरेन्द्र किधर गया?' क़ैदी ने धीरे के उङ्गली का इशारा किया और सत्येन्द्र दौड़ कर कन्हाई के साथ हो गया। दोनों गोली चलाने लगे और नरेन्द्र का काम तमाम हो गया।

दोनों पर मुक़द्दमा चलाया गया और दोनों को प्राण-दण्ड की सज़ा हुई। कन्हाईलाल दत्त को २०वीं नवम्बर, १९०८ को फाँसी दी गई थी। आपकी मृत-देह को पाकर बङ्गालियों ही ने नहीं, प्रत्युत समस्त भारतवासियों ने, जो कलकत्ते में उपस्थित थे, महान् उत्सव मनाया। यह देखकर सरकार ने सत्येन्द्र की लाश जनता को नहीं दी। फाँसी के समय के दृश्य को तत्कालीन दर्शक श्रीयुत कृष्णकुमार मित्र ने इस प्रकार बताया है:

"मैं उसकी फाँसी के दिन स्वयं जेल में उपस्थित था। यद्यपि नितान्त हृदयहीन फाँसी के दृश्य को मैं स्वयं न देख सका, किन्तु मेरे साथियों ने, जिन्होंने उस दृश्य को देखा था, तथा जेल के अधिकारियों ने, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।" श्रीयुत अविनाशचन्द्र राय, जो सत्येन्द्र के पड़ोसी थे और जिन्होंने उनके दाह-संस्कार का भार लिया था, अपने एक मित्र को पत्र लिखते हुए लिखा था:

"मुझे सन् तारीख़ याद नहीं है। सत्येन्द्र की माँ ने घर आकर कहा—सत्येन्द्र का बड़ा भाई ज्ञानू बीमार है, उसके

अन्तिम संस्कार के लिए किसे भेजूँ, अब आप ही इस भार को स्वीकार करें। वृद्धा का आदेश मैं टाल नहीं सका। मैं प्रेमतोष बाबू से मिला। उनके प्रयत्न से दाह-संस्कार के लिए बहुत आदमी तैयार हो गए। सत्येन्द्र का चचेरा भाई भी साहस करके हम लोगों के साथ हो लिया। मैजिस्ट्रेट ने हमारे सामने यह शर्तें पेश कीं—(१) जेल के बाहर दाह-क्रिया न हो (२) कोई आडम्बर और उत्सव न मनाया जाय (३) कोई स्मृति-चिन्ह नहीं ले जा सकते (४) जेल-कर्मचारियों की उपस्थिति में दाह-कर्म होगा (५) केवल १४-१५ आदमी इसमें भाग ले सकेंगे। इस प्रकार की शर्तें पेश करने का कारण कन्हाई की लाश का उत्सव था।

"फाँसी के दिन प्रातःकाल ही हम लोग अलीपुर जेल के फाटक पर उपस्थित हुए। फाँसी के निर्दय दृश्य को देखने की क्षमता हम लोगों में न थी। फाँसी हो चुकने पर एक अङ्गरेज़ पुलिस-सुपरिन्टेण्डेण्ड आया और हम लोगों से कहा—'*You can go now. The thing is over. Satyendra died bravely. Kanhai was brave, but it seems Satyendra was braver*'.

अर्थात्—"अब आप लोग जा सकते हैं। फाँसी हो चुकी। सत्येन्द्र वीरतापूर्वक मरा। कन्हाईलाल बहादुर था, लेकिन मुझे मालूम होता है, सत्येन्द्र उससे भी बहादुर था।"

अनुसन्धान करने पर एक सार्जेण्ट ने कहा :

"When I went to his cell to get him to the gallows, he was wide awake. When I said "Satyendra be ready". He answered, well I am quite ready and smiled. He walked steadily to the gallows. He mounted it bravely and bore it all cheerfully. A brave lad."

अर्थात्—"जब मैं सत्येन्द्र की काल-कोठरी में फाँसी पर चढ़ने के लिए उन्हें लेने गया तो मैंने देखा, वह प्रसन्न-चित्त है। मैंने कहा—'सत्येन्द्र, तैयार हो जाओ।' उसने उत्तर दिया—'तैयार हूँ' और मुस्कुरा दिया। फाँसी के तख्ते पर मस्ती के साथ झूमता हुआ गया और वीरतापूर्वक फाँसी पर चढ़ गया। वह एक बहादुर युवक था।"

"मृत्यु के पूर्व मैं अपनी पत्नी के साथ दो बार उनसे मिला था। दोनों बार वे प्रसन्नता से हम लोगों के साथ स्वदेशी-आन्दोलन की चर्चा करते रहे। उनकी कुछ बातें आज भी याद हैं। उन्होंने कहा था—मेरे और कन्हाई के मरने से क्या हानि है? हमारे-जैसे हज़ारों के मरने पर देश का उद्धार होगा। हमारी मृत्यु शोक मनाने लायक़ नहीं, बल्कि हर्ष मनाने लायक़ होगी।"

"एक बार मैंने कहा—'तुम्हारी माँ तुमसे मिलना चाहती है।' उसने कहा—'यदि वे यहाँ आकर रोवें नहीं, तभी मैं उनसे

मिल सकता हूँ, अन्यथा नहीं।' वही हुआ। वीर माता ने पुत्र को बलि-वेदी की ओर अग्रसर किया। रोते हुए नहीं, बल्कि हँसते हुए। धन्य है ऐसी माता और ऐसे पुत्र को। नरेन्द्र की हत्या के बारे में पूछने पर उन्होंने हत्या करना स्वीकार किया था। मृत्यु के पश्चात् बङ्गाल के अनेक युवक और युवतियाँ इन दोनों की मूर्ति बना कर पूजते रहे।

"जेल में उन्हें जिस अवस्था में रक्खा गया था, उसे देख कर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा था। उन्हें काल-कोठरी में रक्खा गया था। कोठरी पले हुए बाघ के पिंजड़े के सदृश्य थी। एक तरफ़ सींखचे थे, दूसरी तरफ़ दीवार। ४ हाथ लम्बी और इतनी ही चौड़ी। उसी में सोना-बैठना, खाना-पीना, पाखाना-पेशाब सब काम करना पड़ता था।

"कड़े पहरे के बीच हम लोग उनसे मिलते थे। पुलिस के अतिरिक्त जेल-सुपरिन्टेण्डेण्ट मि० इमर्सन भी सामने रहते थे। दाह के समय आप प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उपस्थित रहे और इस महान् वीर की महान् वीर गति को देखते रहे। हम लोग कोई स्मृति-चिन्ह अपने साथ नहीं ला सके।"

श्री० खुदीराम बोस

विप्लववादियों के इतिहास का श्रीगणेश मुज़फ्फ़रपुर के लोमहर्षण हत्याकाण्ड ही से हुआ था। यह घटना मुज़फ्फ़रपुर में पहले-पहल ३० अप्रैल १९०८ को हुई थी। उसी

समय क्रमशः उत्तेजना का एक स्रोत बहना प्रारम्भ हो गया था।

किसी दिन यही स्रोत प्रबल उच्छ्वास में बाँध तोड़ कर ज्वालामुखी के सदृश अनल-वर्षा करके आत्म-प्रकाश करेगा, यह कौन जानता था?

श्री० किङ्ग्सफ़र्ड साहब ने कलकत्ते में प्रधान प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट के कार्यकाल में विप्लववादियों के कतिपय नवयुवकों को राजद्रोहात्मक लेख लिखने के कारण दण्ड दिया था। आपकी बदली कलकत्ते से मुज़फ़्फ़रपुर हुई थी। आप यहाँ ज़िला-जज बनकर आए थे। आपकी ही हत्या के निमित्त श्री० प्रफुल्लकुमार चाकी और श्री० खुदीराम बोस नामक दो नवयुवक कलकत्ते से मुज़फ़्फ़रपुर भेजे गए थे।

उपर्युक्त दोनों युवक मुज़फ़्फ़रपुर आए और स्टेशन के समीपवर्ती धर्मशाले में जा टिके। वे लोग यहाँ १०-१२ दिनों तक रहे और बम मारने का उपयुक्त अवसर ढूँढ़ने लगे।

मुज़फ़्फ़रपुर में गोरे साहबों का एक क्लब है, जिसके समीप ही ज़िला-जज श्री० किङ्ग्सफ़र्ड साहब की कोठी थी। कलकत्ते के पुलिस-अधिकारियों को इस षड्यन्त्र की खबर लग चुकी थी, जिसके फल-स्वरूप कलकत्ते के पुलिस-कमिश्नर ने मुज़फ़्फ़रपुर के पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट को २० अप्रैल, १९०८ को श्री० किङ्ग्सफ़र्ड साहब की रक्षा का प्रबन्ध करने के लिए लिखा

था। उसके बाद ही दो सशस्त्र पुलिस का पहरा श्री० किङ्गसफ़र्ड साहब की रक्षा के लिए पड़ने लगा।

क्लब में सायङ्काल प्रायः सभी गोरे हाकिम मिलते हैं, यह देखकर ही उन दोनों ने श्री० किंग्सफ़र्ड साहब की हत्या का वही उपयुक्त समय समझा। उन दोनों ने यह सोचा था कि जब साहब गाड़ी पर चढ़कर घर जाने लगेंगे तो उसी समय बम फेंकना ठीक होगा।

श्री० किङ्गसफ़र्ड साहब जिस फ़िटिन पर चढ़कर निकलते थे, उसी रङ्ग और काट की गाड़ी स्थानीय अङ्गरेज़ वकील श्री० पी० केनेडी की भी थी। पर इसकी ख़बर चाकी और खुदीराम को न थी। उन दोनों ने यह पता लगा लिया था कि किङ्गसफ़र्ड साहब अमुक रङ्ग की फ़िटिन तथा अमुक रङ्ग के घोड़ों पर चढ़कर अमुक समय क्लब जाते हैं और वापस आते हैं।

३० अप्रैल, १९०८ की बात है। अँधेरी रात थी। समय साढ़े आठ का था। उसी समय प्रफुल्ल चाकी और खुदीराम बोस क्लब के फाटक पर स्थित वृक्षों की ओट में खड़े हो गए। अभाग्यवश केनेडी साहब की स्त्री और लड़की फ़िटन पर चढ़ घर की ओर चलीं। किङ्गसफ़र्ड साहब के भाग्य अच्छे थे। गाड़ी जैसे ही बाहर आई, ठीक उसी समय बम फेंका गया। ज़ोरों का धड़ाका हुआ और गाड़ी चूर-चूर हो गई।

दोनों महिलाओं को बड़ी चोट आई। साईस तो वहीं बेसुध हो गिर गया। कुमारी केनेडी तो एक घण्टे के बाद ही मर गई और केनेडी साहब की स्त्री की मृत्यु २री मई को हुई।

इधर दोनों नवयुवक भाग निकले। शहर में यह खबर बिजली की तरह दौड़ गई। श्री० किङ्गसफर्ड साहब की शरीर-रक्षा के निमित्त दो सशस्त्र पुलिस के सिपाही रक्खे जाते थे। उस दिन तहसीलदार खाँ और फ़ैजुद्दीन का पहरा था।

उन दोनों ने श्री० खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी को सायङ्काल क्लब के सामने वाली सड़क पर घूमते हुए देखा था और उन दोनों से चले जाने को भी कहा था।

थोड़ी देर बाद धमाका का शब्द सुनते ही तहसीलदार खाँ आगे बढ़ा और दोनों महिलाओं को ज़ख्मी देखकर थाने में इसकी रिपोर्ट की। उसने उन दोनों (खुदीराम और चाकी) को भागते भी देखा था।

*　　　*　　　*

शहर चारों ओर से घेर लिया गया। इधर खुदीराम और चाकी भाग निकले। रातोंरात खुदीराम २५ मील पैदल चल कर बैनीगाँव में पहुँच गया और चाकी भागता-भागता समस्तीपुर जा पहुँचा। खुदीराम और चाकी के हुलिए की खबर चारों ओर दे दी गई थी और पकड़ने का वारण्ट भी निकाला जा चुका था।

खुदीराम बोस एक मोदी की दूकान पर १ली मई, १९०८ को फ़तहसिंह तथा शिवप्रसाद सिंह कॉन्सिटेबिलों द्वारा पकड़ा गया। जिस समय वह पकड़ा गया, उस समय उसके पास एक बड़ा खाली तथा एक छोटा भरा हुआ पिस्तौल निकला और ३० कारतूस मिले। बैनी से बोस रेल द्वारा मुज़फ़्फ़रपुर लाया गया। उस समय स्टेशन पर उसके दर्शनों के लिए सारा शहर उमड़ पड़ा था।

जब वह स्टेशन पर उतरा तो प्रफुल्ल-वदन था और थी उसके मुख पर हास्य की मधुमयी रेखा। उस समय मुज़फ़्फ़रपुर के ज़िला-मैजिस्ट्रेट श्री० एच० सी० उडमैन साहब थे। उनसे खुदीराम ने बड़ी वीरता से कहा था :

"मैंने स्वयं ही बम फेंक कर हत्या की है।"

*   *   *

उधर प्रफुल्ल चाकी भागता हुआ समस्तीपुर जा पहुँचा। स्थानीय श्री० शिवचन्द्र चैटर्जी वकील का नाती श्री० नन्दलाल बैनर्जी सिङ्घभूमि में उन दिनों पुलिस सब-इन्सपेक्टर था। वह छुट्टी में मुज़फ़्फ़रपुर आया था और हत्या के दिन मुज़फ़्फ़रपुर ही में था। वह हत्या के दूसरे दिन अर्थात् १ ली मई १९०८ को नौकरी पर सिङ्घभूमि जा रहा था, दैवयोग से उसी ट्रेन से प्रफुल्ल चाकी भी कलकत्ते के लिए समस्तीपुर में सवार हुआ। नन्दलाल मुज़फ़्फ़रपुर में की गई कल की हत्या

का समाचार सुन ही चुका था, इसलिए समस्तीपुर में चाकी को गाड़ी में सवार होते देख उसके कान खड़े हो गए।

नन्दलाल चाकी से बातें करने का बहाना ढूँढ़ने लगा। यह चाकी को बहुत अखरा। वह उस गाड़ी से उतर कर दूसरे डिब्बे में जा बैठा। इधर नन्दलाल ने चाकी के हुलिए की ख़बर तार द्वारा मुज़फ़्फ़रपुर दे दी और मुकामा में चाकी को पकड़ने का उसे एक तार मिला। मुकामा पहुँचने पर नन्दलाल ने चाकी से कहा कि मैं आपको सन्देह पर गिरफ़तार करने आया हूँ।

वह प्लेटफ़ॉर्म पर पकड़ा गया। चाकी ने एक पर पिस्तौल चलाया, पर निशाना खाली गया। अन्त में अन्य उपाय न देखकर प्रफुल्लकुमार ने रिवॉल्वर से आत्मघात कर विप्लववादियों के उच्चतम चरित्र का दिग्दर्शन करा दिया।

* * *

यथासमय खुदीराम बोस पर मुक़दमा चला और इण्डियन पेनलकोड की धारा ३०२ उस पर लगाई गई! वह दौरा सुपुर्द हुआ और स्पेशल जज श्री० कॉर्नडफ द्वारा मुक़दमे का विचार हुआ। सरकार की ओर से श्री० मानुक तथा श्री० विनोद मजुमदार पैरवी करने के लिए आए थे।

खुदीराम की ओर से पहले तो एक भी वकील पैरवी करने के लिए तैयार नहीं हुआ था, पर अन्त में श्री० कालीदास बोस तैयार हो गए। उस स्थिति में कालीबाबू ऐसे ही उत्साही सज्जनों का काम था, जिन्होंने खुदीराम की ओर से बहस की।

मुक़दमा ८-१० दिनों तक चला। उस समय खुदीराम की अवस्था केवल १७ वर्ष की थी और दूध के दाँत भी पूरे नहीं टूटे थे।

उसे फाँसी की सज़ा मिली। इस फ़ैसले के विरुद्ध माननीय श्री० ब्रेट तथा श्री० रिम्स के इजलास में हाईकोर्ट में अपील हुई।

अपील ८, ९ और १३ जुलाई, १९०८ को सुनी गई और फाँसी की सज़ा बहाल रही।

इधर खुदीराम बोस बहुत प्रसन्न-वदन था। वह कभी भी उदास नहीं हुआ, क्योंकि उसने तो हथेली पर जान रखकर ही यह खेल खेला था।

फाँसी का दिन ११ अगस्त, १९०८ निश्चित हुआ था। खुदीराम ने जेल से श्री० कालीदास बोस से अपनी अन्त्येष्टि क्रिया करने की प्रार्थना की और जिला-मैजिस्ट्रेट ने भी यह प्रार्थना मंज़ूर कर ली।

* * *

१० अगस्त १९०८ की बात है। दूसरे दिन खुदीराम को फाँसी होने वाली थी। उसके मृतक-दाह संस्कार का भार काली-बाबू के ऊपर पड़ा था।

बहुतों के मन में विचार-तरङ्गें उठ रही थीं कि प्रभात होते ही खुदीराम बोस की जीवन-लीला समाप्त हो जायगी।

जेल के बाहर पुलिस का कड़ा पहरा था। दर्शनार्थियों की संख्या अवर्णनीय थी।

एक हाथ में 'गीता' लेकर खुदीराम फाँसी के तख्ते पर हँसता-हँसता जा खड़ा हुआ और देखते ही देखते उसके प्राण-पखेरू उड़ गए !

लोग कहते हैं कि उस दिन तपस्वी खुदीराम का दिव्य स्वरूप देखने ही योग्य था। उसके घुँघराले बालों ने प्रशस्त ललाट को ढक लिया था, अधखुले नेत्रों से मरने पर भी मानों अमृत ढलक रहा था। दृढ़बद्ध ओष्ठपुटों में सङ्कल्प की जाग्रत-रेखा फूटी पड़ती थी।

* * *

एक सुसज्जित शय्या पर खुदीराम को शयन करा ललाट पर चन्दन लगा दिया गया और बिछौने के चारों ओर पुष्प-मालाएँ लटका दी गईं थीं। उस नूतन वेश में खुदीराम ऐसा मालूम पड़ता था, मानों वह एक मधुर हास्य हँस रहा हो ! अन्त्येष्टि क्रिया के लिए लोग उसे घाट पर ले चले। सम्मुख सागर-तरङ्गों की तरह नर-मुण्ड दर्शनार्थ उमड़ा आ रहा था। बृहत् जनसमूह खुदीराम की श्मशानयात्रा में सम्मिलित हुआ था।

* * *

सुन्दर चिता बनवाई गई। धू-धू करके चिता जल उठी। कालीबाबू ने ही सुगन्धित पदार्थ, काष्ठ और घृत की आहुति दी।

अस्थि-चूर्ण और भस्म के लिए परस्पर छीना-झपटी होने लगी। कोई सोने की डिब्बी में, कोई चाँदी के और कोई हाथी-दाँत के छोटे-छोटे डिब्बों में वह पुनीत भस्म भर ले गए! एक मुट्ठी भस्म के लिए हज़ारों स्त्री-पुरुष प्रमत्त हो उठे थे।

खुदीराम ने अपनी जान पर खेल कर इस प्रकार भारत-जननी पर अपनी भक्ति-श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। भगवान् इस पुण्यात्मा को शान्ति प्रदान करें!

श्री० मदनलाल ढींगरा

देश की स्वतन्त्रता के लिए संसार के एक कोने में बैठ कर अपने सारे अस्तित्व तथा व्यक्तित्व को छिपा कर, प्राण देने वाले इस वीर के बाल्य-जीवन की कहानी बहुत-कुछ ढूँढ़-तलाश करने पर भी न मिल सकी। वंश, जन्म तथा निवास-स्थान के सम्बन्ध में केवल इतना ही ज्ञात हुआ है, कि अमृतसर जिले के किसी पञ्जाबी खत्री के यहाँ उनका जन्म हुआ था और बी० ए० पास करने के बाद वे इङ्गलैण्ड चले गए थे।

इन दिनों इङ्गलैण्ड में सावरकर का बड़ा ज़ोर था। 'इण्डिया-हाउस' द्वारा ज़ोरों से प्रचार हो रहा था कि कन्हाई-लाल और सत्येन्द्र की फाँसी के समाचार ने वहाँ और भी उत्तेजना फैला दी। अस्तु; हमारे नायक भी उक्त हाउस के सदस्य बन गए। एक दिन रात के समय सावरकर जी तथा मदनलाल

में न जाने बहुत देर तक क्या बातचीत होती रही। अन्त में सावरकर ने उनसे जमीन पर हाथ रखने को कहा। मदनलाल के दोनों हाथ पृथ्वी पर रखते ही सावरकर ने ऊपर से सूआ मार दिया। सूआ उसे छेदकर पार निकल गया और ख़ून की धार बह चली, किन्तु फिर भी उस वीर की आकृति में अन्तर न आया। सावरकर जी ने सूआ दूर फेंक दिया। उस समय दोनों के हृदय प्रेम से गद्गद् हो उठे। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। हाथ फैलाने भर की देर थी। दोनों हृदय एक-दूसरे से मिल गए। आँखों से आँसू पोंछते हुए सावरकर ने मदन को छाती से लगा लिया।

अगले दिन इण्डिया-हाउस (*India House*) की मीटिङ्ग में मदनलाल न आए। कुछ लोगों ने उन्हें सर करज़न वायली की स्थापित की हुई भारतीय विद्यार्थियों की सभा में जाते देखा था। वायली साहब भारत-मन्त्री के एडोकॉङ्ग थे और भारतीय विद्यार्थियों पर ख़ुफ़िया पुलिस का प्रबन्ध कर उनकी स्वाधीनता को कुचलने के प्रयत्न में लगे रहते थे। मदन के इस आचरण पर इण्डिया-हाउस के विद्यार्थियों में आलोचना शुरू हो गई। किन्तु सावरकर के समझाने पर सब लोग चुप हो गए।

सन् १९०९ की पहली जुलाई का दिन था। सर करज़न इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट जहाँगीर हॉल की सभा में किन्हीं दो व्यक्तियों से बातचीत कर रहे थे, कि देखते-देखते मदनलाल ने सामने आकर उन पर पिस्तौल का फ़ायर कर दिया। सभा में

हाहाकार मच गया और मदनलाल पकड़ कर जेल में बन्द कर दिए गए। चारों ओर से उन पर गालियों की बौछारें पड़ने लगीं, यहाँ तक कि स्वयं पिता ने भी सरकार के पास तार भेजा कि मदनलाल मेरा लड़का नहीं है!

जिस समय इङ्गलैण्ड में विपिन बाबू के सभापतित्व में उनके कार्य के विरोध में सभा हो रही थी और उन पर घृणा का प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास किया जा रहा था तो सावरकर जी उसका विरोध करने खड़े हो गए। इतने में एक अङ्गरेज़ ने क्रोध में आकर यह कहते हुए कि *'Look! how straight the English fist goes'* उनके एक घूँसा मार दिया। पास ही में एक भारतीय युवक खड़ा था। उसने यह कह कर, कि *'Look! how straight the Indian club goes'* उस अङ्गरेज़ के सर पर एक लाठी जमा दी। गड़बड़ हो जाने से सभा विसर्जित हो गई और वह प्रस्ताव पास न हो सका।

अदालत में मदनलाल ने सब बातें मानते हुए कहा :

"I admit, the other day I attempted to shed the English blood as an humble revenge for the in-human hangings and deportations of the Indian Patriotic youth. And in this act, I have consulted none but my own conscience. I have conspired with none but with my own Duty.

I believe that a nation held in bondage with the help of bayonet is in a state of perpetual war. And since the guns were denied me I drew forth my pistol and attacked by surprise.

Being a Hindu I believe that an insult to my country is an insult to God. For, the worship of my country is the worship of Sri Ram and service of my country is the service of Sri Krishna.

What could a poor son not in wealth and intellect like me offer to The ××ׄ"

अर्थात्—"मैं जानता हूँ कि मैंने उस दिन एक अङ्गरेज की हत्या की, किन्तु वह उन अमानुषिक दण्डों का एक साधारण-सा बदला है, जो भारतीय युवकों को फाँसी और कालेपानी के रूप में दिए गए हैं। मैंने इस कार्य में अपनी अन्तरात्मा के अतिरिक्त और किसी से परामर्श नहीं लिया। एक हिन्दू के नाते मेरा अपना विश्वास है, कि मेरे देश के साथ अन्याय करना ईश्वर का अपमान करना है, क्योंकि देश की पूजा श्रीरामचन्द्र की पूजा है और देश की सेवा श्रीकृष्ण की सेवा है।"

इसके बाद नीरव आकाश की ओर देखकर उस भक्त-पुजारी ने कहा :

×××*Mother accept my own blood.*

The only lesson that India requires today, is how to die and the only way to teach it is by dying ourselves. And therefore I die; and glory to my Martyrdom.

The battle shall continue till both the Nations, English and Hindus live and their present unnatural relations continue.

My only prayer to God is that may I be return to the same Mother and die for the same cause, till the mother is freed for the Service of humanity and glory of God. BANDEMATRAM.

अर्थात्—"मुझ जैसे निर्धन और मूर्ख युवक पुत्र के पास माता की भेंट के लिए अपने रक्त के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है ? और इसी से मैं अपने रक्त की श्रद्धाञ्जलि माता के चरणों पर चढ़ा रहा हूँ।

"भारत में इस समय केवल एक ही शिक्षा की आवश्यकता है और वह है, मरना सीखना; और उसके सिखाने का एक-मात्र ढङ्ग स्वयं मरना है।

"मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है, कि मैं बार-बार भारत माता की ही गोद में जन्म ले उसी के कार्य में प्राण देता रहूँ 'वन्देमातरम्।"
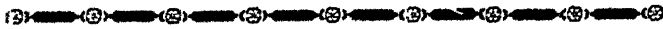
अन्त में आप वीरतापूर्वक फाँसी के तख़्ते पर खड़े होकर 'वन्देमातरम्' की ध्वनि के साथ १६ अगस्त, सन् १९०९ ई० को अपनी जीवन-लीला समाप्त कर गए।

श्री० अमीरचन्द

दिल्ली के मिशन-हाई स्कूल में मास्टर थे। उस समय आप स्वामी रामतीर्थ के भक्त थे, बाद में जब लाला हरदयाल ने अपने विचारों का प्रचार किया, तो आप भी उनसे सहमत हो गए और उसी कार्य का प्रचार करने लगे। आप उर्दू तथा अङ्गरेज़ी के अच्छे लेखक थे। १९०८ में जब लाला हरदयाल भारत से चलने लगे, तो दल का सारा भार आपको ही सौंप गए।

आप एक ज़िन्दा-दिल और आज़ादी-परस्त आदमी थे। हँसी में कहा करते थे, कि दिल्ली में आकर किसी से भी बन्दर मास्टर का मकान पूछने पर मेरे घर का पता मिल सकेगा।

दिल्ली और लाहौर में बम फेंकने वाले का पता न चला। चारों ओर तलाशी हो रही थी, कि कलकत्ते के राजा बाज़ार में एक मकान की तलाशी होने पर अवधबिहारी का पता निकल आया। ये उन दिनों अमीरचन्द के मकान पर ही रहते थे। शक तो पहले ही से था। अस्तु, तलाशी ली गई और मकान में एक बम की टोपी मिल गई। इसी तलाशी में लाहौर से लिखा हुआ एक पत्र भी मिला, जिसमें M. S. के हस्ताक्षर थे। पूछने

पर पता चला कि वह दीनानाथ का लिखा हुआ था। बहुत से दीनानाथ पकड़ लिए गए। परन्तु बाद में वास्तविक दीनानाथ का भी पता चल गया। उसकी भी तलाशी हुई और गिरफ्तार होने पर उसी ने सारा भेद खोल दिया।

आप पर *Liberty leaflet* के लिखने का अपराध लगाया गया और विशेषकर नीचे लिखी बातें ख़ास तौर पर आपत्तिजनक मानी गईं:

"*We are so many that we can seize and snatch from them their cannons* और—

"*Reforms will not do. Revolution and general massacre of all the foreigners, especially the English will and alone can serve our purpose*".

अदालत से आपको फाँसी की सजा सुनाई जाने पर आप हँस दिए। उस समय आपकी अवस्था ५० वर्ष की थी। दिल्ली के बड़े-बड़े आदमियों ने सफ़ाई की गवाही में आपके उच्च-चरित्र की बहुत प्रशंसा की थी। उसी पर अपील के फ़ैसले में जज ने लिखा था:

"*It must be borne in mind that 'patriots' of Amir Chand's type are often, except in regard to the monomania possessing them, estimable men, and of blameless private life*".

अदालत में आप ही के गोद लिए हुए लड़के सुल्तानचन्द ने सरकारी गवाह बनकर आपके विरुद्ध गवाही दी थी ! किसी ने ठीक ही कहा है :

बाग़बाँ ने आग दी जब आशियाने को मेरे !
जिन पे तकिया था, वही पत्ते हवा देने लगे !!

उस दिन मास्टर अमीरचन्द् भी सँभल न सके और कोर्ट में ही उनके नेत्रों से झर-झर आँसू गिरने लगे। मनुष्य सब कुछ सहन कर सकता है, परन्तु अपने प्रियजनों का—जिनको हृदय में सब से ऊँचा स्थान दे रक्खा हो उनका—विश्वासघात सहन करना असम्भव है। आज मास्टर जी जैसा गम्भीर और दृढ़-चित्त व्यक्ति भी अपने आँसू न रोक सका। उनका वह दत्तक पुत्र आज भी जीवित है और मज़े में जीवन व्यतीत कर रहा है।

मास्टर अमीरचन्द् ने पुत्र के विश्वासघात पर भले ही अश्रुपात किया हो, परन्तु मृत्यु-दण्ड सुनकर वे एकदम प्रफुल्लित हो उठे। आप संसार के साधारण व्यक्तियों से बहुत ऊँचे थे। इसका विशेष परिचय उन्होंने सहर्ष फाँसी की रस्सी गले में डाल कर दिया। आज वे इस संसार में नहीं हैं, परन्तु उनका नाम है, सुकृति है, उनका विप्लव है। जब कभी देश स्वतन्त्र होगा, तब उस महापुरुष की लोग क़द्र कर सकेंगे।

श्री० अवधबिहारी

बी० ए० पास करने के बाद आपने लाहौर सेन्ट्रल ट्रेनिङ्ग कॉलेज से बी० टी० पास किया था। आप एक बुद्धिमान् तथा चतुर युवक थे। जज ने भी फ़ैसले में कहा था :

"Avadh Behari is only 25 years of age but he is a highly educated and intelligent man".

राजाबाज़ार कलकत्ते में पता मिल जाने पर आप अमीरचन्द के मकान पर ही गिरफ़्तार किए गए। उस समय यू० पी० तथा पञ्जाब का नेतृत्व आप के ही हाथ में था। स्वर्गीय शचीन्द्र बाबू ने "बन्दी-जीवन" में आपकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। आप प्रायः निम्न-लिखित पद्य गाया करते थे :

एहसान नाख़ुदा का उठाए मेरी बला,
किश्ती ख़ुदा पे छोड़ दूँ, लङ्गर को तोड़ दूँ !

अदालत से आप पर कुल १३ अपराध लगाए गए। कहा गया कि लाहौर लॉरेन्स गार्डन के बम की टोपी इन्होंने बसन्त कुमार के साथ मिलकर लगाई थी और उसमें इनका पूरा हाथ था।

आपको फाँसी की सज़ा दी गई। जिस दिन फाँसी होने को थी, उस दिन एक अङ्गरेज़ ने आपसे पूछा—"आपकी आख़िरी ख़्वाहिश क्या है ?" आपने उत्तर दिया—"यही कि अङ्गरेज़ी साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाए!" उसने कहा—"शान्त रहिए। आज तो शान्तिपूर्वक प्राण दीजिए, अब इन बातों से क्या

क़ायदा ?" इस पर आपने जवाब दिया—"आज शान्ति कैसी ? मैं तो चहता हूँ कि आग भड़के, चारों ओर आग भड़के। तुम भी जलो हम भी जलें, और हमारी गुलामी भी जले और अन्त में भारत कुन्दन बनकर रह जाय।"

फाँसी के समय आपने स्वयं कूद कर रस्सी गले में डाल ली और 'वन्देमातरम्' के साथ हँसते-हँसते विदा हो गए !

श्री० भाई बालमुकुन्द

बहुत दिनों की बात है। तब दिल्ली में औरङ्गजेब का राज्य था, उन दिनों की धींगामस्ती का क्या कहना है। एक बार हिन्दू-नेता श्री० गुरु तेग़बहादुर बुला भेजे गए। इस्लाम क़ुबूल करने से इन्कार करने पर उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया गया था। उन्हीं के साथ उनके परम भक्त श्री० भाई मतिदास जी भी थे। उनको विशेष यातनाओं द्वारा अर्थात् आरे से चीर कर मृत्यु के घाट उतारा गया था। उनका उस समय का साहस तथा गाम्भीर्य देखकर शत्रु-तक मुग्ध हो उठे थे। तभी से उनके वंश को भाई की उपाधि दी गई थी।

उसी वैप्लविक वंश ने आज बीसवीं शताब्दी में देश के चरणों पर दो और रत्नों का बलिदान दिया। भाई परमानन्द जी, एम० ए० के नाम से कौन परिचित नहीं ? आप ही के चचेरे भाई श्री० बालमुकुन्द जी थे।

आपका जन्म चकवाल के पास के एक गाँव (ज़िला झेलम) पञ्जाब में हुआ था। पहले तो उधर ही शिक्षा पाते रहे, बाद में लाहौर डी० ए० वी० कॉलेज में भर्ती हुए। बी० ए० पास करने के बाद आपने देश-सेवा का व्रत धारण कर लिया और लाला लाजपतराय जी के तत्कालीन अछूतोद्धार-आन्दोलन में काम करने लगे और दूर पर्वतों में, जहाँ पर कि अन्धकार का गढ़ है, जाकर अनेक असुविधाओं में भी अपना कार्य बहुत उत्साह तथा साहस से करते रहे। उनके सहकारी उनकी संलग्नता और तत्परता की तारीफ़ आज भी मुक्त-कण्ठ से करते हैं। उधर पञ्जाब में विप्लव-दल का सङ्गठन-कार्य १९०८ में सरदार अजीतसिंह और सूफ़ी अम्बाप्रसाद के १९०७ वाले आन्दोलन के बाद से शुरू हो गया था। १९०९ में बङ्गाल के एक प्लायित वैप्लविक उनके पास पहुँचे। तब एक सङ्गठित दल क़ायम करने का उद्योग होने लगा। उधर १९०८ में श्री० लाला हरदयाल जी, एम० ए० अपनी शिक्षा बीच में ही छोड़ कर इङ्गलैण्ड से लौट आए। उन्होंने एकदम विप्लव का प्रचार शुरू कर दिया था। कुछ ही दिनों में अनेक आदर्शवादी युवक उनके अनुयायी हो गए। इसी बीच में उन्हें भारत छोड़ कर यूरोप जाना पड़ा।

कुछ ही दिनों बाद सूफ़ी अम्बाप्रसाद और सरदार अजीत-सिंह भी ईरान जाने पर बाधित हुए। तब यह युवक दिल्ली के प्रशम्य शहीद श्री० मास्टर अमीरचन्द जी से राजनैतिक शिक्षा

पाते रहे। इधर १९१० में श्री० रासबिहारी बसु देहरादून के जङ्गलात के विभाग में नौकरी करने लगे थे और बङ्गाल की ओर से, बङ्गाल से बाहर समस्त उत्तर भारत में विप्लव-दल सङ्गठित करने का भार आप पर ही पड़ा था। आपने लाहौर में सभी वैप्लविक युवकों का पुनर्सङ्गठन किया और एक कार्यकारिणी समिति नियुक्त की गई। उसमें लाहौर के दल का भार श्री० बालमुकुन्द पर सौंपा गया था। इस दल की ओर से कई बार "लिबर्टी" (*Liberty*) नामक क्रान्तिकारी पर्चे बाँट दिए गए थे।

१९१२ में सर माईकेल ओडायर ने पञ्जाब की गवर्नरी की बागडोर अपने हाथ में ली थी। उसी समय उन्हें बताया गया था, कि पञ्जाब में एक ज्वालामुखी तैयार हो रहा है, जो किसी भी समय फट सकता है। वह उसी दृष्टिकोण से तैयार होकर शासन का भार ले ही रहे थे कि दिल्ली में लॉर्ड हार्डिङ्ग, तत्कालीन वॉयसरॉय के जुलूस पर चाँदनी चौक में बम फेंका गया।

चारों ओर कुहराम मच गया, परन्तु लाख हाथ-पैर मारने पर भी पुलिस बम फेंकने वाले का पता न लगा सकी। पुलिस बहुत छटपटाई। यह घटना २३ दिसम्बर, १९१२ की है। मई, १९१३ में लाहौर के लॉरेन्स गार्डन में पञ्जाब के सभी सिविलियन पदाधिकारी अङ्गरेज एकत्र हुए थे। उन्हीं सब को उड़ा देने के लिए एक बम वहाँ पर रक्खा गया था, परन्तु उस बम के फटने से एक हिन्दुस्तानी चपरासी के सिवा और कोई न मर सका!

परन्तु उस समय उसका भी कुछ पता न चल पाया। इधर कुछ दिनों से भाई बालमुकुन्द जोधपुर में राजकुमारों को पढ़ाने का कार्य करते थे।

इधर राजाबाज़ार, कलकत्ता की तलाशी में श्री० अवधबिहारी का नाम मिल गया। उसकी तलाशी पर दीनानाथ का पता मिला। अनेक दीनानाथ पकड़े गए और प्रमाण न मिल सकने के कारण छोड़ दिए गए। परन्तु आखिर एक दिन वास्तविक दीनानाथ भी धर लिए गए। वह बड़ा चरित्रवान्, घण्टों ईश्वरोपासना में तल्लीन रहने वाला दीनानाथ पकड़े जाने पर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। उस दिन उसका इतने दिनों का सञ्चित साहस न जाने क्या हुआ! कहते हैं, डिप्टी-सुपरिन्टेण्डेण्ट सरदार सुक्खासिंह की लाल-लाल अङ्गारे की-सी दहकती हुई आँखें देखकर दीनानाथ ने काँपते हुए कहा—'लीजिए मैं सब भेद देता हूँ, परन्तु दया कर यह आँखें न दिखाएँ।' सैकड़ों पृष्ठों का वक्तव्य दिया। रत्ती-रत्ती भर की बात खोल दी। जोधपुर से भाई बालमुकुन्द और एम० ए० के विद्यार्थी श्री० बलराज इत्यादि अनेक लोग पकड़े गए। दीनानाथ के वक्तव्य के अनुसार भाई बालमुकुन्द जी के पास उस समय भी दो बम मौजूद थे। उन्हीं की तलाश में उनके गाँव वाले घर की तलाशी में दो-दो गज़ तक गहरी ज़मीन खोद डाली गई थी। सारी छतें उधेड़ डाली गईं, परन्तु वहाँ कुछ न मिल सका।

अभियोग चला। वे दिन बड़े विचित्र थे। उन दिनों किसी

क्रान्तिकारी से सहानुभूति प्रदर्शित करना आग से खिलवाड़ करना था। बड़े-बड़े नेताओं ने अभियुक्तों के सम्बन्धियों को घर पर परामर्श लेने आते देखकर धक्के देकर बाहर निकाल दिया था! ऐसी दशा में कौन किसकी सहायता करता? भाई परमानन्द जी ने ही भाई बालमुकुन्द जी के अभियोग में सब प्रबन्ध किया, परन्तु उस मतवाले सैनिक को यह सब एक नाटक-मात्र जान पड़ता था। उन्होंने अन्त में मृत्यु-दण्ड सुनने पर सहर्ष केवल इतना ही कहा था—"आज मुझे अत्यन्त आनन्द हो रहा है, क्योंकि उसी नगर में जहाँ कि हमारे पूर्व-पुरुष श्री० भाई मतिराम जी ने स्वतन्त्रता के लिए प्राण दिए थे, वहीं पर आज मैं भी—माँ के चरणों पर आत्म-समर्पण कर रहा हूँ।" आखिर उन्हें १९१५ के प्रारम्भ में फाँसी दे दी गई। घर की हालत अजीब थी। बड़ी मुश्किल से कुछ रुपया-पैसा जुटाकर भाई परमानन्द जी ने प्रिवी काउन्सिल के लिए वकील को तार दिया। एक महाशय ने पूछा—"भाई जी! बालमुकुन्द जी के बारे में क्या हो रहा है?" आपने उत्तर दिया—"प्रिवी काउन्सिल में अपील करने की चेष्टा कर रहे हैं।" फिर पूछा गया—"और स्वयं आपका क्या हो रहा है?" उत्तर दिया—"ख़ुद भी तैयार बैठे हैं। इङ्गलैण्ड से अपील ख़ारिज होने का तार पहुँचते-पहुँचते भाई परमानन्द जी भी धर लिए गए। तब तक १९१५ के विराट् विप्लव का सब प्रयास निष्फल हो चुका था। उसी के फल-स्वरूप उनकी गिरफ़्तारी हुई थी।

इधर भाई बालमुकुन्द जी को फाँसी हो गई। उस दिन कहते हैं, उनके आनन्द की सीमा न रही थी। सिपाहियों से पञ्जा छुड़ाकर फाँसी के तख्ते पर जा खड़े हुए थे। ओह! ऐसा साहस इन वैप्लविकों के अतिरिक्त और कहाँ मिलेगा? मृत्यु के प्रति इतनी उपेक्षा दिखाने का साहस साधारण दुनियादार लोग नहीं कर सकते।

आपके सुन्दर बलिदान को आपकी धर्मपत्नी श्रीमती रामरक्खी ने सती होकर और भी चार चाँद लगा दिए। बात यह थी कि वे उनको बहुत प्यार करती थीं। विवाह हुए भी अभी बहुत दिन नहीं हुए थे, वे उनसे जेल में मिलने गईं। पूछा—'भोजन कैसा मिलता है?' उत्तर में जेल की बालू मिली रोटी दिखाई गई। घर आकर वैसा ही भोजन तैयार कर खाने लगीं। फिर मिलीं। कहा—'सोते कहाँ पर हैं?' उत्तर मिला—'इस ग्रीष्म-ऋतु में भी अन्धकारमय कोठरी में दो कम्बल ओढ़ कर।' घर आकर वैसा ही रहना शुरू कर दिया। एक दिन बाहर से रोने-धोने का शब्द सुनकर उन्होंने सब कुछ समझ लिया। उठीं; स्नान किया, वस्त्राभूषण पहन कर शृङ्गार किया और अपने प्रियतम से मिलने के लिए तैयार होकर घर के अन्दर एक चबूतरे पर बैठ गईं। फिर वे नहीं उठीं। दूर—जहाँ तक स्थूल दृष्टि देख सकती है, जहाँ तक आततायी शासकों का क़ानून-विधान पहुँच सकता है, उससे बहुत दूर—उस पार, जहाँ पर जेल नहीं, फाँसी नहीं, विप्लव नहीं, पराधीनता भी नहीं, केवल प्रेम ही प्रेम है,

उसी लोक में वे अपने चिर-प्रियतम श्री० बालमुकुन्द जी से अनन्तकाल तक सहवास का आनन्द उठाने के लिए चली गईं।

श्री० बसन्तोकुमार बिस्वास

आप बङ्गाल के नदिया जिला के रहने वाले थे और जिस समय श्री० रासबिहारी जी देहरादून में थे, आप उनके पास हरिदास के नाम से नौकर बन कर रहते रहे। बाद में १९१२ में आप लाहौर की एक डिस्पेन्सरी में कम्पाउण्डर हो गए थे।

उस समय भाई बालमुकुन्द के साथ मिल कर आप पञ्जाब प्रान्त में बिप्लव-दल का सङ्गठन करते थे। कहा जाता है, कि जब १९१२ में दिल्ली में बम फटा था, उस समय आप लाहौर से ग़ायब थे।

अवधबिहारी की सहायता से लाहौर के लॉरेन्स गार्डन का बम भी आप ही का रक्खा हुआ बताया जाता है। बाद में आप दो और भी बम लाए थे, जो दीनानाथ के कथनानुसार भाई बालमुकुन्द के पास रक्खे गए थे।

दिसम्बर, १९१३ में आप बङ्गाल चले गए और १९१४ में वहीं से गिरफ़्तार कर लाहौर लाए गए। अदालत से पहले आपको आजन्म कालेपानी की सज़ा मिली थी, किन्तु सर ओडा-यर की सरकार को दिल्ली में बम फेंकने वाले का पता न लगने से बड़ा क्रोध आ रहा था और उसने आपको भी फाँसी की सज़ा

दी जाने की अपील की। इसे उसने स्वयं माना है। भला पुलिस की अपील और उस पर सिफ़ारिश सर माईकेल ओडायर की और फिर न मानी जाती? अस्तु, आपको भी बाद में फाँसी की सज़ा सुना दी गई।

आपके बारे में जज ने कहा था :

"He looked me a man of some force of character, with none of the familiar marks of weakness in his face."

फाँसी के समय आपकी आयु केवल २३ वर्ष की थी।

श्री० भाई भागसिंह

अच्छे घराने में जन्म लेकर और ऊँची शिक्षा प्राप्त कर देश तथा जाति की सेवा में जीवन समाप्त कर देने वाले तो संसार में अनेक होते रहे हैं और होते रहेंगे, किन्तु गाँव के एक साधारण से घराने में पैदा होकर और मामूली-सी शिक्षा प्राप्त करके भी जिन्होंने अपने कार्यों से मानव-समाज को चकित किया है, ऐसे उदाहरण इतिहास में विरले ही देखने में आते हैं।

हमारे नायक श्री० भाई भागसिंह जी भी ऐसे ही उँगली पर गिने जाने वाले रत्नों में से एक हैं। आपका जन्म लाहौर ज़िले के 'भिक्खोविण्ड' नामक गाँव में सरदार नारायणसिंह जी के घर, सन् १८७८ ई० में हुआ था। आपकी माता का नाम मानकुँवरि था। २० वर्ष की आयु तक आप घर पर ही रहकर

खेती-बाड़ी का काम देखते रहे। इसी बीच गुरुमुखी का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बस शिक्षा के नाते इतने ही को सब कुछ समझना चाहिए। आप बचपन से ही सैनिक स्वभाव के थे। अस्तु, २० वर्ष की अवस्था होने पर फ़ौज में नौकर हो गए। आज़ाद तबीयत के तो मशहूर ही से थे, फिर भला किसी की डाँट-डपट क्यों सहने लगे? सेना में आज किसी से झगड़ा है तो कल किसी को डाट बताई जा रही है। सभी लोग और विशेष कर अफ़सर लोग, आप से बहुत तङ्ग रहा करते थे। इन्हीं सब बातों से पाँच साल तक नौकरी करने पर भी आप एक मामूली सिपाही से आगे न बढ़ सके।

बाद में सेना से नौकरी छोड़, घर आए बिना ही आप चीन चले गए और हाँगकाओ पुलिस में भरती हो गए। ढाई साल काम करने के बाद वहाँ भी जमादार से अनबन हो गई और आप शङ्घाई आ गए। यहाँ पर ढाई साल तक म्युनिसिपल पुलिस में काम करने के बाद, आए दिन बहुतेक भारतीयों को अमेरिका की ओर जाते देख आप भी कैनाडा चले गए। बस, यहीं से आपका सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ होता है।

विचार तथा स्वभाव मिल जाने पर हृदय मिलते देर नहीं लगती। अस्तु, कैनाडा पहुँच कर भाई बलवन्तसिंह, भाई सुन्दर-सिंह, भाई हरिनामसिंह और अर्जुनसिंह से आपकी बहुत घनिष्टता हो गई। इस समय कैनेडास्थित भारतीयों पर वहाँ के रहने वाले बड़ा अत्याचार कर रहे थे। यहाँ तक कि बहुत

प्रयत्न करने के बाद भी उन्हें कहीं कोई जगह न मिलती थी। उनमें आपस में भी फूट थी। सभी अपनी-अपनी ही सोचा करते। ऐसे विकट समय में उपरोक्त मित्र-मण्डली ने आगे पैर बढ़ाया। प्रारम्भ करने भर की देर थी, कार्य चल निकला और जहाँ पहले एक भी गुरुद्वारा न था, वहाँ प्रायः सभी स्थानों पर गुरुद्वारे स्थापित हो गए। सभी बिखरी हुई शक्ति को केन्द्रस्थ कर सङ्गठन-कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। कैनाडा में भारतीयों को एक भारतीय की तरह जीवन व्यतीय करने तक की स्वतन्त्रता न थी। वे अपने सम्बन्धियों के मृत-शरीर को जला नहीं सकते थे, उन्हें उसकी क़ब्र बनानी पड़ती थी। अस्तु, इन लोगों ने कुछ ज़मीन ख़रीदी और उसमें श्मशान स्थापित किया। इस श्मशान में पहला संस्कार भाई अर्जुनसिंह जी का ही हुआ।

भला इमिग्रेशन वाले भारतीयों की इस उन्नति को कब देख सकते थे? अस्तु, एक ओर तो कैनाडा के भारतवासियों को हण्डूरास भेजने का प्रयत्न होने लगा और दूसरी ओर एक नया क़ानून गढ़ा गया। इस क़ानून के अनुसार कोई भी नया भारतीय कैनाडा में नहीं उतर सकता था। आपने अपने मित्रों की सहायता से इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई। दो आदमी हण्डूरास की दशा देखने भेजे गए। इन लोगों ने आकर रिपोर्ट दी, कि हण्डूरास नरक से भी गया-बीता स्थान है। अपने प्रयास में विफलता देख इमिग्रेशन वालों को इन पर बड़ा

क्रोध आया। उधर नए क़ानून के विरुद्ध निश्चय हुआ कि जो लोग कैनाडा में पहले से रह रहे हैं, वे भारत जाकर अपना परिवार आदि लेकर फिर वापस आ सकते हैं, किन्तु निश्चय को कार्यरूप में भी तो लाना था। अतः हमारे नायक अपने अन्य दो मित्रों के साथ भारत की ओर चल दिए।

भारत तो आ गए, किन्तु अब परिवार कहाँ से ले जायँ। स्त्री का स्वर्गवास हो चुका था और बाल-बच्चे थे नहीं, अतः आपने एक पेशावर की स्त्री से फिर से विवाह किया और उसे लेकर वापस चल दिए। हॉङ्गकॉङ्ग आकर मालूम हुआ कि कैनाडा जाने के लिए टिकट न मिल सकेगा। बहुत-कुछ प्रयत्न करने पर भी आपको वहाँ पर बहुत समय तक ठहरना पड़ा और यहीं पर आपके पुत्र श्री० जोगेन्द्रसिंह जी का जन्म हुआ। आख़िर बहुत प्रयत्न के बाद वैङ्कोवर पहुँचने पर, बहुत अड़चनों के बाद, आपको जहाज़ से उतरने दिया गया।

अभी तक आप अधिकांशतया धार्मिक कार्यों में ही भाग ले रहे थे, किन्तु इस यात्रा के अनुभव ने आपके विचारों में एक नया परिवर्त्तन पैदा कर दिया। आपको यह विश्वास हो गया कि ग़ुलामों के लिए संसार के किसी भी कोने में स्थान नहीं है और जब तक भारत की पराधीनता दूर नहीं होती, हमें इसी प्रकार पग-पग पर अड़चनों का सामना करना पड़ेगा। प्रसङ्गवश इसी बीच अमेरिका से 'ग़दर' अख़बार निकलना प्रारम्भ हुआ। उस समय भागसिंह जी ने खुलकर रुपए-

पैसे से इस पत्र की सहायता की थी। इतना ही नहीं, वरन् संयुक्त-प्रान्त से निकलने पर भी 'ग़दर' अख़बार तथा उसकी नीति का प्रचार अधिकांशतया कैनाडा में ही हुआ था।

अभी इमिग्रेशन वालों से झगड़ा चल ही रहा था, कि कामागाटा मारू जहाज़ कैनाडा आ पहुँचा। इस जहाज़ वालों पर क्या-क्या अत्याचार हुए ? किन-किन मुसीबतों का सामना उन लोगों को करना पड़ा ? और उन वीरों को सताने के लिए किन-किन घृणित उपायों का प्रयोग किया, यह सब तो यहाँ पर नहीं दिया जा सकता, किन्तु जहाँ तक हमारे नायक से इसका सम्बन्ध है, उसका उल्लेख यहाँ पर किया जाता है। इमिग्रेशन विभाग वालों ने जब इस जहाज़ को कहीं पर भी ठहरने की आज्ञा न दी तो श्री० भागसिंह जी के प्रबन्ध से एक नया घाट ख़रीदा गया और वहीं पर इस जहाज़ को ठहराया गया। इसी बीच एक दूसरी चाल चली गई। जहाज़ के मालिक को अपनी ओर मिलाकर इस बात पर राज़ी किया गया कि वह जहाज़ का किराया क़िश्त पर न लेकर, एक साथ ही पेशगी ले ले। जहाज़ वाले बड़ी मुसीबत में फँस गए। पास में इतना रुपया तो था नहीं। अभी कुछ सामान भी न बिक पाया था, अतएव करें तो क्या करें ? किन्तु भागसिंह जी तथा उनके मित्रों ने मिल कर क़िश्त का रुपया अदा किया और जहाज़ का चार्टर अपने नाम पर लिखवा लिया।

यह सब प्रबन्ध कर चुकने के बाद साउथ ब्रिटिश कोलम्बिया में अपने किन्हीं साथियों से इसी बात पर सलाह करने गए थे कि वहीं पर हरनामसिंह और बलवन्तसिंह जी के साथ आप गिरफ्तार कर लिए गए, किन्तु बाद में आपको तथा बलवन्तसिंह जी को छोड़ दिया गया। उस समय जहाज़ वापस जाने के लिए तैयार था। बहुत से लोगों के पास खाने तक को रुपया नहीं रह गया था, इसलिए आपने आते ही उन लोगों की सहायता आदि का पूरा प्रबन्ध कर दिया।

जहाज़ की सहायता करने तथा स्वाधीनता का प्रचार करने के कारण आप इमिग्रेशन वालों की आँखों में बुरी तरह खटकने लगे। जोश में आकर कई बार उन लोगों ने कह भी डाला था कि इसे गोली से मरवा कर ही छोड़ेंगे। उस समय आपने इस बात को हँसकर टाल दिया था और लोगों ने भी इस पर कोई विशेष ध्यान न दिया। उन्होंने सोचा, यह सब कहने की बातें हैं, ऐसा करने के लिए कोई विशेष साहसी पुरुष चाहिए।

एक दिन की बात है, कि आप किसी सिक्ख का अन्तिम संस्कार कराकर आए, गुरुद्वारे में दीवान शुरु हुआ और आप गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ करने बैठे। सब काम शान्तिपूर्वक समाप्त हो गया और जब आप 'अरदास' के बाद मत्था टेकने के लिए झुके तो पीछे बैठे हुए बेलासिंह ने पिस्तौल चला दी। गोली पीठ को पार करती हुई फेफड़ों में आ रुकी। घातक को

पकड़ने के व्यर्थ प्रयास में भाई वतनसिंह भी मारे गए। इनका जीवन अन्यत्र दिया जा रहा है।

भागसिंह जी अस्पताल ले आए गए। ऑपरेशन होने पर भी आप पूर्णतया होश में रहे और बराबर लोगों को उत्साह देते रहे। जिस समय आपका लड़का आपके सामने लाया गया तो आपने कहा—"यह लड़का मेरा नहीं, वरन् क़ौम का है, इसे दरबार में ले जाओ। मेरे पास क्यों लाए हो ?" उस समय कितने ही मनुष्य आपके दर्शनों के लिए अस्पताल में मौजूद थे। अन्त में यह कहते हुए कि "मेरी तो इच्छा थी कि आज़ादी की लड़ाई में आमने-सामने दो-चार हाथ कर के प्राण देता, किन्तु भाग्य में बिस्तर पर पड़े-पड़े ही मरना लिखा था। ख़ैर, ईश्वर की यही इच्छा थी।" अपनी इहलीला समाप्त कर गए। मृत्यु के समय आपकी अवस्था ४४ वर्ष की थी।

अन्त में घातक को अदालत ने यह कहने पर छोड़ दिया था कि "मैंने तो सब कुछ इमिग्रेशन विभाग के अध्यक्षों के कहने पर ही किया था। मैं सरकार का एक वफ़ादार नौकर हूँ और यदि मुझे इस समय गिरफ़्तार न किया जाता तो मैं लड़ाई पर जाकर अपनी वफ़ादारी दिखाता" आदि। हाय रे ग़ुलामी!
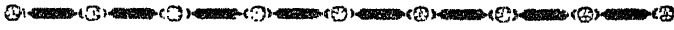
श्री० भाई वतनसिंह

वे वास्तव में क्या थे, इस बात को लोगों ने उनकी मृत्यु से पहले कभी न समझ पाया था। उनका साधारण-सा जीवन था और उन्हें कभी नेता कहलाने का भी सौभाग्य नहीं मिला। किन्तु फिर भी उनका हृदय देश-प्रेम से ख़ाली न था। वे केवल मरना जानते थे और वह भी एक सच्चे वीर की भाँति।

बाल्य-जीवन के सम्बन्ध में केवल इतना ही मालूम है, कि आप पटियाला राज्य के 'कुम्बड़वाल' नामक गाँव में पैदा हुए थे और पिता का नाम भाई भगेलसिंह जी था। आप में एक विशेष बात यह थी कि इन्हें भैंस पालने का बड़ा शौक़ था और इसी कारण कैनेडा में भी लोग इन्हें वतनसिंह मइयाँ वाला अर्थात् भैंस वाला कहा करते थे।

बाइस-तेइस वर्ष की आयु तक घर ही पर रहने के उपरान्त आप सेना में भर्ती हो गए। उस समय तक आपके जीवन का अधिकांश समय बर्मा में ही बीता था। फिर पाँच साल के बाद, नौकरी छोड़कर घर वापस चले आए और दस साल तक मकान पर ही रह कर खेती आदि का काम करते रहे। किन्तु उन्हें तो भारतीयों के सामने एक उदाहरण उपस्थित करना था, अतएव इस प्रकार घर पर कब तक रह सकते थे। घर के कामों से जी उकताने लगा और अन्त में आप हॉङ्गकॉङ्ग की ओर चल दिए।

यहाँ पर पाँच साल तक जेल-पुलिस में गार्ड का काम करने के बाद आप कैनाडा पहुँचे।

वैङ्कोवर तो पहुँच गए, पर अब जायँ तो किसके पास। एक तो अपरिचित देश, फिर किसी से भी जान-पहचान नहीं। बहुत खोज-ख़बर के बाद गुरुद्वारे का पता चला और आप वहीं जाकर ठहर गए। उस समय किसी और को तो क्या, वतन-सिंह जी स्वयं भी इस बात को न जानते थे कि एक दिन इसी गुरुद्वारे में मानव-समाज को वीरता का पाठ पढ़ाकर मुझे अपनी इह-लीला समाप्त करनी पड़ेगी। ख़ैर, कुछ दिन वहाँ ठहरने के बाद आप गुड़ीपोर्ट के लकड़ी के कारख़ाने में भर्ती हो गए। इन दिनों भागसिंह जी इसी कारख़ाने में काम करते थे।

स्वाधीनता की लहर अभी ज़ोरों पर न चली थी, इसलिए सिक्ख लोगों का ध्यान विशेषकर आपस में विद्या-प्रचार ही की ओर अधिक था। हमारे नायक भी जब कभी अवकाश पाते तो इन्हीं बातों की चर्चा किया करते।

सन् १९११ ई० में वतनसिंह जी फिर वैङ्कोवर गए। राइटपोर्ट पर काम करने के साथ-साथ सत्सङ्ग का अच्छा अवसर हाथ आया देख आपने नित्य ही गुरुद्वारा जाना आरम्भ कर दिया। एक साल तक आप गुरुद्वारा-कमेटी के मेम्बर भी रहे थे। आपकी कार्य-तत्परता से लोग आप को बहुत मानने लगे थे।

इसके बाद वही पुरानी कथा है। वही इमिग्रेशन वालों से झगड़ा, वही अत्याचार, वही आन्दोलन और वही भाई

भागसिंह तथा बलवन्तसिंह के मारने का षड्यन्त्र। उस समय लोग सैकड़ों की संख्या में भारत की ओर वापस आ रहे थे। कहते हैं कि यह षड्यन्त्र इसीलिए रचा गया था कि सिक्खों का कोई भी नेता भारत में वापस आकर यहाँ भी उसी प्रकार के विचारों का प्रचार न कर सके। ख़ैर, जो हो, उस दिन जब दीवान में बेलासिंह ने भाई भागसिंह जी पर गोली चलाई तो वतनसिंह जी भी उनके पास में ही बैठे थे। भागसिंह को घायल होते देख, आपने गरज कर घातक को ललकारा। बस अब क्या था, दूसरी गोली बलवन्तसिंह की ओर न जाकर, हमारे नायक के वक्षस्थल में समा गई। वीर का जोश चोट खाकर ही जागता है। आप सिंह की भाँति गरज कर उसकी ओर दौड़े। दूसरी गोली भी सीने के बीच में ही रह गई! किन्तु इससे क्या, वतनसिंह बढ़ते ही चले गए और अन्त को सात गोलियाँ लग चुकने के बाद आपने घातक की गर्दन पकड़ ही तो ली, परन्तु शक्ति अधिक क्षीण हो जाने के कारण बेलासिंह छुड़ाकर भाग गया और आप सदैव के लिए गहरी नींद में सो गए। जिस गुरुद्वारे में अभी थोड़ी देर पहले निस्तब्धता का राज्य था वही अब रणभूमि बन गया। चारों ओर हाहाकार मच गया। अभी एक भाई के विछोह का दुख भूला भी न था कि दो रत्न और छिन गए।

भाई वतनसिंह जी अब नहीं हैं पर पचास वर्ष की आयु में उन्होंने एक सच्चे वीर की भाँति प्राण देकर जो उदाहरण

इतिहास के पृष्ठों में अङ्कित किया है, वह सदैव के लिए अमिट रहेगा।

श्री० मेवासिंह

विपत्ति के आँगन में खेल कर भी जिन लोगों ने सदैव ही पीछे रह कर कार्य करने की चेष्टा की है—इसलिए नहीं कि वे डरते थे, किन्तु इसलिए कि आगे बढ़ कर वाहवाही लेने की इच्छा ही कभी उनमें उत्पन्न नहीं हुई—ऐसे लोगों के बाल्यकाल से ही यदि ज्योतिषी लोग यह जता दिया करें कि यह किसी दिन पगले विप्लवी बनकर अपना सर्वस्व लुटा देंगे, किसी दिन ये उन्मत्त होकर 'धरि मृत्यु साथे पञ्जा' नाचते-नाचते फाँसी के तख्ते पर जा खड़े होंगे, तो शायद उनका जीवन-वृतान्त पूरे तौर पर लिखा जा सके। किन्तु वे तो संसार के न जाने किस कोने से अचानक आकर मानव-समाज के चरणों पर एकाएक अपना सर्वस्व लुटाकर चले गए। उस दिन आश्चर्य से लोगों ने उनकी ओर देखा। भक्ति तथा श्रद्धा के फूल भी चढ़ाए। किन्तु फिर भी उनके विद्रोही जीवन की दो-चार घटनाओं को एकत्रित कर प्रकाशित करने की परवा किसी ने भी न की। आज यदि ऐसे आदर्शवादी का जीवन-वृतान्त लिखने बैठें तो लिख ही क्या सकते हैं?

अज्ञात विप्लवी हमारे नायक श्री० मेवासिंह का जन्म अमृतसर जिले के एक साधारण से गाँव 'लोपोके' में हुआ था। बस, वंश तथा बाल्य-जीवन का इतना ही ज्ञान पर्याप्त है। वे साधारण कृषक थे और खेती-बारी करते थे। कैनाडा आदि की ओर आए-दिन अनेकानेक लोगों को जाते देख आप भी वहीं चले गए थे। आपका ईश्वर-भक्ति की ओर विशेष झुकाव था।

कैनाडा में भारतवासियों पर किए गए अत्याचार, अन्याय तथा घृणित व्यवहार से आपके हृदय को एक विशेष चोट लगी। कामागाटा मारू के सम्बन्ध में जब श्री० भागसिंह जी और बलवन्तसिंह जी किन्हीं अन्य सहकारियों से कुछ मन्त्रणा करने दूर दक्षिण की ओर निकल गए थे और इमिग्रेशन विभाग वालों ने उन्हें पकड़कर 'सुमास' जेल में बन्द कर दिया था तब आप भी उनके साथ थे। परन्तु आपको केवल इतना कहने पर ही कि इधर यों ही चले आए थे, छोड़ दिया गया था। बाद में आप गुरु नानक माइनिङ्ग कम्पनी के हिस्सेदार भी बन गए थे।

दीवान हो रहा था। श्री० भागसिंह जी गुरु-ग्रन्थ साहब का पाठ कर रहे थे और श्री० वतनसिंह जी उन्हीं के पास बैठे थे। एकाएक सभा की निस्तब्धता भङ्ग करते हुए एक पिस्तौल की आवाज़ आई और देखते-देखते श्री० भागसिंह जी और श्री० वतनसिंह जी सदा के लिए धराशायी हो गए। देश-द्रोही बेलासिंह के इस घृणित कार्य को देखकर हृदय वेदना से

कराह उठा। उन्हें गुरु-ग्रन्थ साहब का पाठ करते समय गोली से मार दिया जाना असह्य हो उठा। अभियोग चलने पर क़ातिल ने बयान दिया कि इमिग्रेशन विभाग के अध्यक्षों ने ही मुझे ऐसा करने के लिए कहा था। ग़ुलाम भारतवासियों की दुर्दशा का रक्त-रञ्जित चित्र देख कर उनकी आँखों में आँसू आ गए क्योंकि वे पराधीन थे, इसलिए उनसे सब जगह घृणा की जाती थी, क्योंकि वे ग़ुलाम थे, इसीलिए उन पर सब तरह के अत्याचार ढाए जाते थे और क्योंकि वे पराए दास थे, इसीलिए उनके नेताओं को योंही मरवा दिया जाता। इन सब बातों से उनके हृदय पर एक गहरी चोट लगी। उन्होंने अपनी आन्तरिक वेदना को छिपाने के लिए ईश्वर-भजन की ओर विशेष ध्यान देना शुरू कर दिया। परन्तु इस पर भी आपने दो-एक बार बड़े वेदना भरे स्वर से कहा था, "यह अपमानित और पराधीनता का पद-पद पर ठुकराया जाने वाला जीवन अब असह्य हो उठा है।" उस समय उनके इन वाक्यों पर किसी ने ध्यान भी न दिया था।

वे 'विप्लव-यज्ञ' की प्रगाढ़ रचना के दिन थे। लोगों ने राइफ़ल तथा रिवॉलवर चलाने का अभ्यास शुरू कर दिया था। कहते हैं, हमारे नायक ने भी एक सौ रुपए की गोलियाँ फूँक डाली थीं। उनकी इस बात पर भी किसी ने कुछ विशेष ध्यान न दिया। एक दिन जाकर अपनी फ़ोटो खिंचवा आए। यही उनका अपने घर वालों के लिए अन्तिम अमूल्य उपहार था।
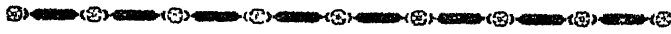
उस दिन मुक़दमे की पेशी थी। इमिग्रेशन विभाग के मुख्याधिकारी मि० हॉपकिन्सन (*Hopkinson*) भी पेश होने आए थे। सब कार्य शान्तिपूर्वक हो रहा था कि एकाएक गोली चली और इसके पहले कि फ़ायर करने वाले की ओर कोई ध्यान दे सकता, हॉपकिन्सन सदा के लिए धराशायी हो गए। निशाना अचूक बैठा। वह १००) सफल हो गया। जज लोग कुर्सियों के नीचे जा छिपे और वकील लोग गिरते-पड़ते बाहर की ओर भाग चले। हॉपकिन्सन को गिरता देख आपने अपना रिवॉलवर जज की मेज़ पर रख कर उच्च स्वर से कहा—"मैं भागना नहीं चाहता। आप लोग शान्त रहिए। मैं पागल नहीं हूँ और किसी पर गोली नहीं चलाऊँगा। मेरा कार्य सफल हो चुका।" इसके बाद पुलिस वालों को पुकार कर चुपचाप आत्म-समर्पण कर दिया। उथल-पुथल में चाहते तो भाग जाते, पर उस वीर विप्लवी की इच्छा अब और जीने की न थी। पतित, पराधीन तथा पददलित भारत में अभी तक प्राणों का कोई अंश शेष है, यही वे आत्म-बलिदान से सिद्ध करना चाहते थे। आज भी वे अपमान का प्रतिकार कर सकते हैं, आज भी वे राष्ट्रीय अपमान का बदला ले सकते हैं, यही जताने के लिए उन्होंने यह सब किया था।

गिरफ़्तारी के बाद बयान लेते समय जब आप से हॉपकिन्सन को मारने का कारण पूछा गया तो आपने प्रश्न किया—"क्या हॉपकिन्सन सचमुच मर गया?" उत्तर में "हाँ" सुनकर आप

बड़े ज़ोरों से हँस दिए। कहा—"आज मुझे वास्तविक आनन्द प्राप्त हुआ है।" पूछने पर आपने कहा—"हॉपकिन्सन को जान-बूझ कर मैंने क़त्ल किया है। यह बदला है, देश तथा धर्म के अपमान का; यह बदला है, हमारे दो अमूल्य रत्नों की हत्या का। मैं तो मि० रीड (हॉपकिन्सन के दूसरे साथी) को भी मारने के विचार से आया था, परन्तु यहाँ न होने के कारण वह बच गया।"

हॉपकिन्सन की स्त्री ने अपने पति की हत्या का समाचार सुन कर कहा था, कि मैं उस वीर के दर्शन करना चाहती हूँ, जिसने मेरे पति को भरी कचहरी में गोली से मारा है और इस धैर्य के साथ आत्म-समर्पण किया है।

इस घटना के बाद कैनाडा में भारतीयों को किसी ने घृणित शब्दों से सम्बोधित नहीं किया।

अभियोग चलने पर आपने वीरतापूर्वक सारा अपराध स्वीकार कर लिया। मृत्यु-दण्ड सुनाए जाने के बाद से तो आप पर एक नशा-सा छा गया। आनन्द की सीमा न रही। फाँसी के दिन तक आपका वज़न १३ पाउण्ड बढ़ गया था।

फाँसी के दिन जेल के बाहर तपस्वी के अन्तिम पुण्य-दर्शन के लिए कैनाडा-स्थित प्रवासी भारतीयों का मानव-समुद्र उमड़ आया था। इस समुद्र में गोरे लोगों की संख्या भी कुछ कम न थी। नियमानुसार मरने से पहले पादरी अथवा पुरोहित का मिलना आवश्यक था। अस्तु, भाई मितसिंह जी अन्दर गए।

ईश्वर-भजन के बाद आपने अपना अन्तिम सन्देश दिया। शब्द साधारण हैं, किन्तु भाव ऊँचे और देश-भक्तिपूर्ण हैं। आपने कहा था :

"बाहर जाकर सभी भारतवासियों से और विशेषकर राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं से कह देना कि इस ग़ुलामी, और पराधीनता के अभिशाप से बच निकलने के लिए जोरों से प्रयत्न करें। परन्तु कार्य तभी हो सकेगा, जब उनमें इलाक़ेबन्दी और मज़हबी असहनशीलता बिलकुल न रहे। न माझे, मालवे और दोआबे* के प्रश्न उठें और न हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख विभिन्न मज़हबों के प्रश्न उठें और जो मुझे प्यार करने वाले सम्बन्धी अथवा मित्र हैं, उनसे तो मेरा विशेष आग्रह है।"

बात करते-करते मितसिंह जी की आँखों में आँसू आ गए। इस पर आप बहुत नाराज़ हुए। आपने कहा—अच्छा मेरा साहस बढ़ाने आए थे, आप ही रोने लगे। जरा सोचिए तो सही, फिर हमारी क्या दशा होनी चाहिए। और ऐसी मृत्यु तो कहीं सौभाग्य से प्राप्त होती है, उस पर हर्ष और चाव न दिखाकर, इस तरह शोक करना तो एकदम अनुचित है।

---

* दोआब, सतलज और ब्यास के बीच का इलाक़ा है। मालवा सतलज के पूर्व (फ़ीरोज़पुर वग़ैरा) का प्रदेश है। माझा, रावी और ब्यास के बीच (लाहौर व अमृतसर) का भाग है। सिक्खों में इन इलाक़ों का कुछ झगड़ा बहुत दिनों से चला आता है।

अन्त को वही घड़ी आ गई। आह ! देखो तो वह पगला किस चाव से फाँसी के तख्ते की ओर बढ़ रहा है। भय और चिन्ता तो उसके पास तक नहीं है। आखिर यह शब्द गाते हुए "हरि-यश, रे मन ! गाय ले जो सङ्गी है तेरा" आप फाँसी के तख्ते पर जा खड़े हुए। इसके बाद क्या हुआ, सो पाठक स्वयं ही समझ लें। गुरु गोविन्दसिंह का अनुयायी 'सर धर तली' प्रेम की गली में प्रेम खेलने आया था, सर दे गया।

शव के स्वागत के लिए मानव-समुद्र पहले ही से बाहर हिलोरें ले रहा था, अतः बड़ी शान से जुलूस निकाला गया। आज इन्द्र देवता भी अपने पर क़ाबू न रख सके, खूब वर्षा होने लगी। किन्तु जुलूस कम न हुआ। यहाँ तक कि अङ्गरेज़-स्त्रियाँ भी उसका साथ न छोड़ सकीं। अन्तिम संस्कार के बाद एक सप्ताह तक गुरुद्वारे में उत्सव मनाया गया था।

श्री० काशीराम

आप उन्हीं अज्ञात् सप्तऋषियों में से एक हैं, जिन्हें न्याय-प्रिय सरकार ने फ़ीरोज़पुर ज़िले में एक गाँव के पास मारे जाने वाले थानेदार की हत्या के अपराध में सदा के लिए भारत की गोद से उठा लिया था और अन्त में वास्तविक अपराधी के मिल जाने पर केवल इतना कह कर कि "जो सात मनुष्य पहले फाँसी पर लटकाए गए थे, वे वास्तविक अपराधी न थे और

असल अपराधी तो यह है, जिसे हम आज फाँसी दे रहे हैं।"
अपने दायित्व से अलग हो गई थी। अस्तु—

पण्डित काशीराम जी का जन्म अम्बाला ज़िले के 'बड़ी मड़ौली' नामक गाँव में भादों सुदी द्वादशी, सम्वत् १९३८ में श्री० पण्डित गङ्गाराम जी के घर हुआ था। घर वालों ने दस वर्ष की ही अवस्था में आपकी शादी कर दी थी, किन्तु आज़ादी की शराब पीने वालों को .स्त्री-बच्चों का मोह रोक कर घर पर नहीं रख सकता। अस्तु, पटियाला से इन्ट्रेन्स पास करने के बाद आप घर से इस प्रकार बाहर हुए कि फिर १९१४ में कुछ घण्टों के लिए ही अपने गाँव में वापस आए। इसी विछोह में आपकी स्त्री का शरीरान्त भी हो गया था।

पढ़ाई समाप्त कर, कुछ दिन तार का काम सीखने के बाद, आप अम्बाला ज़िला-दफ़्तर में ३०) मासिक पर नौकर हो गए। बाद में कुछ दिन दिल्ली में ६०) मासिक पर नौकरी कर, आप हॉङ्गकॉङ्ग चले गए और अन्त में अमेरिका जाकर एक बारूद के कारखाने में २००) मासिक पर नौकर हो गए। किन्तु बाद में इसे भी .गुलामी कह कर छोड़ दिया और एक टापू की सोने की खान का ठेका ले लिया।

इसी बीच अमेरिका से भारत वापस आने की लहर चली और आप भी एक जत्थे के साथ २५ या २६ नवम्बर, सन् १९१४ को भारत आ गए। देश आने पर एक बार फिर उसी स्थान के देखने की इच्छा से, जहाँ की धूल में खेलकर आपका

बाल्यकाल बीता था, वे अपने गाँव पहुँचे। यह समाचार बिजली की भाँति सारे गाँव में फैल गया और आपसे मिलने के लिए एक अच्छी भीड़ जमा हो गई। आपने अवसर हाथ आया देख, वहीं पर ग़दर के सम्बन्ध में एक व्याख्यान दे डाला।

कुछ घण्टे मकान पर ठहरने के बाद, यह कह कर कि लाहौर नेशनल बैंक में मेरे तीस हज़ार रुपए जमा हैं, उन्हें लेने जाता हूँ, आप फिर घर से बाहर हुए। गाँव वालों के लिए आपका यह अन्तिम पुण्य-दर्शन था। वे फिर लौट कर वहाँ न आए।

लाहौर आने पर कुछ साथियों समेत फ़ीरोज़पुर गए। वहाँ पुलिस से मुठभेड़ हो गई। गोली चली और थानेदार मारा गया, बाद को जङ्गल में १३ साथियों में से ७ गिरफ़्तार हो गए। कुछ मारे गए। और शेष भाग गए इन सात में से एक हमारे नायक भी थे।

पाँच महीने तक फ़ीरोज़पुर में न्याय-नाटक के बाद आप सातों आदमी तितर-बितर कर दिए गए, किन्तु बाद में यह कह कर, कि मिश्री गाँव के पास होने वाले डाके, क़त्ल आदि सभी बातों का उत्तरदायित्व इन्हीं लोगों पर है, सब को फाँसी दे दी गई!

जिनके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व कौड़ी के समान लुटा दिया, और जिनके दुखों से कातर हो, रोती हुई वृद्धा माता की इकलौती गोद को सूनी कर उन्होंने संन्यासी का वेष धारण

किया था, उन्हीं गाँव वालों ने उनके फाँसी हो जाने पर यह कह कर .खुशी मनाई, कि सरकार बहादुर ने डाकुओं को फाँसी पर चढ़ा कर हम पर बड़ा एहसान किया। किन्तु विप्लवियों के जीवन में यह तो एक मामूली सी बात है। उनका तो उद्देश्य ही—*Unwept, unhonoured and unsung* जाना है। संसार उन्हें किस नाम से पुकारता है, इस पर विचार करने का तो अवकाश भी उन्हें नहीं मिलता और न वे कभी इसकी परवा ही करते हैं। वे संसार के सामने वाहवाही लेने के विचार से तो कभी इस मार्ग पर नहीं आते। वे तो केवल अपने आपको ही सन्तुष्ट देखना चाहते हैं।

पण्डित जी लाहौर सेन्ट्रल जेल में बन्द थे। पिता ने आकर रोना-पीटना शुरू कर दिया—"बेटा, क्या तुम्हें मेरी इस वृद्धावस्था पर तनिक भी तरस नहीं आता। तुम्हारी माँ तुम्हारे विछोह में अभी से पागल हो गई है। मैंने तो सोचा था कि बड़े होकर तुम कुछ सुख पहुँचाओगे, किन्तु नहीं जानता था कि तुम इतने निर्मोही हो। तुमने हमारी तनिक भी सुध न ली। अब हम शेष जीवन किसके सहारे पर व्यतीत करेंगे?"

तपस्वी ने एक लम्बी साँस ली और कहा—"पूज्यवर, इस व्यर्थ के माया-जाल से क्या होगा? इस संसार में, न कोई किसी का पुत्र है और न कोई किसी का पिता। यह सब मन की भावना-मात्र है, अतः इसके लिए व्यर्थ में अपने को दुखी न बनाएँ। रही बात खाने-पीने की, सो जिस सर्व-नियन्ता ने हमें

पैदा किया है, उसे हर समय, हर स्थान पर अपने सभी पुत्रों का ध्यान है। मेरे समवस्यक सभी भारतीयों को अपना ही पुत्र समझ कर एक उसी पर विश्वास कीजिए।"

भाई को आता देखकर आपने कहा—"खबरदार, आँखों में आँसू न लाना। मैंने कोई पाप नहीं किया है, और इस प्रकार मरने पर मुझे देशभक्तों के चरणों में स्थान मिलेगा। मैं इसी को अपना अहोभाग्य समझता हूँ।"

अन्त में घर वालों ने फिर भी न माना और आपकी अपील की, किन्तु उसके निर्णय के पहले ही आप फाँसी पर लटका दिए गए थे।

श्री० गन्धासिंह

लाहौर ज़िले के 'कबरमन' नामक गाँव में आपका जन्म हुआ था। उस समय लोग इन्हें भाई भगतसिंह के नाम से पुकारा करते थे। बाद में सिक्ख-धर्म की दीक्षा लेने पर आपका नाम भाई रामसिंह रक्खा गया, किन्तु प्रसिद्ध नाम आपका भाई गन्धासिंह पड़ा। आप छोटी अवस्था में ही अमेरिका चले गए थे। १९१४ और १५ में अमेरिका की ग़दर-पार्टी के आप एक प्रमुख नेता थे। और अन्त में जब पार्टी की ओर से भारत में आकर प्रचार करने की बात निश्चित हुई, तो सबसे पहले आप अपने एक और मित्र को साथ लेकर

भारत की ओर चल दिए। आपके भारत आने के कुछ ही दिनों बाद बजबज घाट पर गोली चल गई और बाहर से कलकत्ते का टिकट लेकर आने वाले यात्रियों पर कड़ा पहरा लगा दिया गया। अमेरिका से भारत आने वाले यात्रियों को अपने ही देश में उतरना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव-सा हो उठा। अतः परिस्थिति को बहुत भयानक रूप धारण करते देख, आप अपने मित्र के साथ झट हॉङ्गकॉङ्ग आगए और वहाँ से जो भारतीय कलकत्ते के टिकट पर भारत आने की तैयारी कर रहे थे, उनके टिकट बदलवा कर बम्बई और मद्रास के टिकट लेकर जाने को बाध्य किया। १९१४ और १५ में पञ्जाब के अन्तर्गत जो भी थोड़ी-बहुत विप्लव की योजना हो सकी थी, वह इन्हीं हमारे नायक द्वारा बचाए गए सिक्खों को लेकर ही हुई थी।

हॉङ्गकॉङ्ग से वापस आकर गन्धासिंह पूरी ताक़त से इधर-उधर घूम कर विप्लव का प्रचार करने लगे। गर्मी के दिनों में सारे दिन पैदल चलने के बाद भी वे थकते न थे। निराशा तो कभी उनके पास तक नहीं आई। शायद इन सब का कारण यही था कि उन्होंने कार्यक्षेत्र में आने के पूर्व ही मरने का पाठ भली प्रकार सीख लिया था। वे प्रायः कहा करते थे कि अमेरिका से चलते समय कई रातें मन को यही समझाने में बिताई थीं कि वहाँ जाकर फाँसी निश्चित है और जब बार-बार मना करने और समझाने पर भी मन ने अपना निश्चय नहीं छोड़ा तभी यहाँ का टिकट ख़रीदा था। ख़ैर, सारांश यह कि

वे उत्साह की एक जीती-जागती प्रतिमूर्ति थे और उनमें असीम साहस था।

एक दिन की बात है, कि आप अपने दस-पन्द्रह साथियों समेत फ़ीरोज़पुर के 'घलख़ुर्द' नामक गाँव के पास मार्ग में जा रहे थे कि पुलिस ने आ घेरा। सरकार बहादुर ने उन्हें स्वयं अपने हाथों से पाला था और शायद इसी बेहोशी में थानेदार साहब ने आपके एक साथी को गालियाँ देते हुए एक तमाचा लगा दिया। घर पर माँ-बाप ने कभी एक बात भी न कही थी। अस्तु, युवक इस चोट को सह न सका और उसकी आँखों में आँसू आ गए। एक स्वाधीन देश की जलवायु में पला हुआ और स्वाधीनता के लिए घर-बार पर लात मार कर गली-गली पागलों की भाँति घूमने वाला आत्माभिमानी भला इस अपमान को कब सहन कर सकता था? देखते-देखते गन्धासिंह की गोली का निशाना बन कर थानेदार साहब ज़मीन पर आ गिरे। साथ ही एक ज़ियातदार (तहसील-वसूल करने वाला) भी मारा गया। इस घटना के बाद आपके साथियों के तितर-बितर हो जाने के कारण कुछ आदमियों का जङ्गल में फिर पुलिस के साथ सामना हो गया। ये लोग तो मरने की दीक्षा लेकर ही घरों से बाहर हुए थे, इसलिए दोनों ओर से गोली चलने लगी। अन्त में गोली-बारूद के समाप्त हो जाने पर कुछ लोग तो वहीं पर मारे गए और बाक़ी सात मनुष्य पुलिस के हाथ आ गए। न्याय-नाटक में इन सातों को ही फाँसी का पुरस्कार

मिला और १९१४ के शीत-काल के दिनों में वे सातों साथी दूर—बहुत दूर—अपने पिता के पास इस नाटक का हवाला देने चले गए।

जिस देश पर दीवाने होकर उन्होंने गली-गली की धूल छानी और अन्त में जिसकी वेदी पर अपना सर्वस्व लुटा कर प्राणों तक की आहुति चढ़ा गए उसी देश के रहने वालों ने उनके नाम तो क्या, यह तक न जाना कि वे कब, कहाँ, क्यों और किस देश में वे विलीन हो गए।

दिन योंही ग़ुलामी में बसर होते हैं सारे।
एक आह तुम एसों के लिए भी नहीं भरते॥

हमारे नायक श्री० गन्धासिंह को अभी कुछ और दुनिया देखनी थी, अतः इस बार वे पुलिस के हाथ न आए। उन्होंने स्थान-स्थान पर जाकर फिर वही प्रचार-कार्य आरम्भ कर दिया। इस समय पुलिस पर आप का इतना रोब जम गया था कि गिरफ़्तारी का अवसर मिलने पर भी वे लोग आप पर हाथ नहीं छोड़ते थे।

खन्ना के पास एक गाँव में दीवान हो रहा था, वहीं पर ज्ञानी नत्थासिंह नामक एक मास्टर से आपकी मुलाक़ात हुई। यह व्यक्ति लुधियाना के खालसा हाई स्कूल में नौकर था। यह गन्धासिंह को अपने साथ लिवा ले गया। मार्ग में एक स्थान पर बहुत से आदमी खड़े थे। उनके बीच में पहुँचने पर देश-द्रोही नत्थासिंह ने आपको पीछे से पकड़ लिया। इतने में ही

और लोग भी आप पर टूट पड़े। अनायास कितने ही लोगों के बीच में पड़ जाने के कारण आप कुछ भी न कर सके। उस समय मास्टर ने कहा कि—"अब तुम गिरफ़्तार हो गए?" आप को गाँव लाया गया और हाथ पीछे बाँध कर एक कोठरी में बन्द कर दिया गया।

जिस वीर का नाम सुनकर पञ्जाब की पुलिस काँप उठती थी, जिसकी ओर आँख उठा कर देखने का साहस भी किसी को न हुआ और जिसके आतङ्क से कितनी ही बार स्वयं पुलिस वालों ने उसे हाथ में आता जान कर भी उस पर हाथ नहीं छोड़ा, उसी वीर को अपने एक भाई के विश्वासघात के कारण एक छोटी-सी कोठरी में हाथ बँधे हुए मुँह के बल धूल में लोटना पड़ा!

रात भर इसी प्रकार पड़े रहने के बाद दूसरे दिन प्रातःकाल पुलिस-कप्तान ने आकर कोठरी का दरवाज़ा खुलवाया। इस रात के बारे में जेल के अन्दर अपने और साथियों से गिरफ़्तारी का हाल बयान करते समय आपने कहा था—"उस रात मेरे हाथ फूल कर जङ्घा के समान हो गए थे और उस कष्ट के सामने फाँसी मुझे बिल्कुल आसान जान पड़ती थी।"

आप पर वही—थानेदार को मारने का—अपराध में अभियोग चलाया गया और फाँसी की सज़ा मिली। उस समय जज ने अपने फ़ैसले में लिखा था कि "जो सात आदमी पहले फाँसी पर चढ़ाए गए थे वे वास्तविक अपराधी न थे। असल

अपराधी तो यह है, जिसे हम आज फाँसी दे रहे हैं।" बलिहारी है ऐसे न्याय की!

सज़ा सुनाई जाने के बाद तो आपको .खुशी का ठिकाना न रहा। उस समय एक अङ्गरेज़ सार्जेण्ट ने अपने साथी से कहा था—"आज हमने गन्धासिंह के दर्शन किए हैं। वह बड़ा .खुश है और इस प्रकार सर हिला-हिला कर बातें करता है, मानों उस पर एक प्रकार का नशा-सा छाया हुआ हो।"

८ मार्च, १९१६ का दिन था। प्रातःकाल के पाँच बजे थे। नहाने के लिए पानी लाने वाले ने कहा—"क्या आपको पता है कि आज फाँसी दी जायगी?" आपने बिलकुल साधारण तौर पर उत्तर दिया—"फाँसी मेरे लिए कोई नई बात नहीं है। मैं जिस दिन अमेरिका से चला था, उसी दिन फाँसी लग चुकी थी।"

फाँसी हो चुकने के बाद एक वार्डर ने कहा—"मैंने अपनी तीस साल की नौकरी में कुल १२५ आदमियों को अपने ही हाथों फाँसी पर चढ़ाया। उनमें प्रायः सभी तरह के मनुष्य शामिल हैं, किन्तु जो साहस, जो हौसला और जो उत्साह मैंने गन्धासिंह में देखा, वह और किसी में भी न देखा था।" उस समय उनकी बहादुरी से प्रभावित होकर जेल-कर्मचारी भी रो पड़े थे।

श्री० करतार सिंह

रणचण्डी के उस परम भक्त बाग़ी करतारसिंह की आयु उस समय ४० वर्ष की भी न होने पाई थी, जब उन्होंने स्वतन्त्रता देवी की बलि-वेदी पर निज रक्ताञ्जलि भेंट कर दी। आँधी की तरह वे एकाएक कहीं से आए, आग भड़काई, सुसुप्त रणचण्डी को जगाने की चेष्टा की, विप्लव-यज्ञ रचा, और अन्त में स्वयं भी उसी में "स्वाहा" हो गए। वे क्या थे, किस लोक से एकाएक आ गए थे और फिर झट से किधर चले गए, हम कुछ भी समझ न सके। १९ वर्ष की छोटी अवस्था में ही उन्होंने इतने भारी कार्य कर दिए कि सोचने पर आश्चर्य होता है। इतना साहस, इतना आत्म-विश्वास, इतना आत्म-त्याग, इतनी तत्परता, इतनी लगन बहुत कम देखने को मिलेगी। भारतवर्ष में वास्तविक विप्लवी कहे जाने वाले बहुत कम व्यक्ति पैदा हुए हैं। परन्तु उन इने-गिने विप्लवियों में भी श्री० करतारसिंह बड़े मनस्वी थे। उनकी नस-नस में विप्लव समा गया था। उनके जीवन का एकमात्र आदर्श, उनकी एक- मात्र अभिलाषा, एकमात्र आशा जो भी थी, यही विप्लव था। इसी के लिए वे जिए और अन्त में इसी के लिए मर गए।

सन् १८९६ में आपका जन्म सराबा नामक गाँव (ज़िला लुधियाना, में हुआ था। आप माता-पिता के एकलौते पुत्र थे। बड़े लाड़-चाव से पालन-पोषण हो रहा था। अभी बिलकुल

छोटी अवस्था थी, कि पिता का देहान्त हो गया। परन्तु आपके दादा ने बड़े यत्न से आपको पाला। आपके पिता का नाम सरदार मङ्गलसिंह था। आपके एक चाचा तो संयुक्त-प्रान्त में पुलिस सब-इन्सपेक्टर थे और दूसरे उड़ीसा के मुहकमा जङ्गलात के किसी ऊँचे पद पर कार्य करते थे। करतारसिंह पहले तो अपने गाँव के ही प्राइमरी स्कूल में पढ़ते रहे, बाद में लुधियाना के खालसा-हाई स्कूल में दाखिल हुए। पढ़ने लिखने में बहुत तेज नहीं थे, किन्तु कुछ ऐसे बुरे भी न थे। शरारती बहुत थे। हर एक की जान पर छेड़खानी से आफ़त बनाए रहते। आपको सहपाठी "अफ़लातून" कहा करते थे। सभी लोग आपसे बहुत प्यार करते थे। स्कूल में आपका एक जुदा गुट था। खेलों में आप अगुआ थे। नेतागिरी के सभी गुण आप में विद्यमान थे। नवम् श्रेणी तक वहीं पढ़ कर फिर अपने चचा के पास उड़ीसा चले गए। वहाँ जाकर मैट्रीकुलेशन पास किया और कॉलेज में पढ़ने लगे। ये वही १९१०-११ के दिन थे। उधर आपको स्कूल-कॉलेज के कोर्स के सङ्कीर्ण दायरे से बाहर की बहुत-सी पुस्तकें पढ़ने का सुअवसर मिला। आन्दोलन के दिन थे। उसी वायुमण्डल में रह कर आपके देश तथा स्वातन्त्र्य-प्रेम के भाव और भी प्रबल हो उठे।

अमेरिका जाने की इच्छा हुई। घर वालों ने बहुत हुज्जत नहीं की। आपको अमेरिका भेज दिया गया। सन् १९१२ में आप सान्फ्रान्सिस्को (*San Fransisco*) बन्दर पर पहुँचे।

इमिग्रेशन विभाग वालों ने विशेष पूछताछ के लिए आपको रोक लिया।

ऑफ़िसर के पूछने पर आपने कहा—यहाँ पढ़ने के लिए आया हूँ।

ऑफ़िसर ने कहा—क्या हिन्दुस्तान में पढ़ने का स्थान तुम्हें न मिला?

उत्तर दिया—मैं उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिए ही कैलीफ़ोर्निया के विश्वविद्यालय में दाख़िल होने के विचार से आया हूँ।

"और यदि तुम्हें अमेरिका में न उतरने दिया जावे तो?"

इस प्रश्न का उत्तर करतारसिंह ने बहुत सुन्दर दिया। आपने कहा—"तो मैं समझूँगा कि बड़ा भारी अन्याय हुआ। विद्यार्थियों के रास्ते में ऐसी अड़चनें डालने से संसार की उन्नति रुक जायगी। कौन जानता है कि मैं यहाँ शिक्षा पाकर संसार की भलाई का बड़ा भारी कार्य करने में समर्थ न हो सकूँ। और उतरने की आज्ञा न मिलने पर संसार उससे वञ्चित नहीं रह जायगा?"

ऑफ़िसर महोदय ने इस उत्तर से प्रभावित होकर उतर जाने की आज्ञा दे दी।

स्वतन्त्र देश में जाकर क़दम-क़दम पर आपके सुकोमल हृदय पर आघात लगने लगे। *Damn Hindoo* और *Black Coolie* आदि शब्द उन उन्मत्त गोरे अमेरिकनों के मुँह से सुनते ही वे पागल-से हो उठे। उन्हें पद-पद पर देश का अभिमान अखरने

लगा। घर याद आने पर पराधीन, ज़ञ्जीरों से जकड़ा हुआ, अपमानित, लुटा हुआ, निःशक्त भारत आँखों के सामने आ जाता। वह कोमल हृदय धीरे-धीरे सख्त होने लगा और देश की स्वतन्त्रता के लिए जीवन अर्पण करने का निश्चय क्रमशः दृढ़ होता गया। उस समय के उस भावुक हृदय के वेग को हम क्या समझेंगे?

अब वे चैन से बैठ सकते, यह असम्भव था। न भाई! अब चुपचाप शान्ति से काम न चलेगा। देश कैसे स्वतन्त्र हो, यही एक मुख्य प्रश्न उनके सामने आ गया और अधिक सोचे बिना ही उन्होंने वहीं भारतीय मज़दूरों का सङ्गठन शुरू कर दिया, उनमें स्वातन्त्र्य प्रेम का भाव जाग्रत करने लगे। हर एक के पास घण्टों बैठ कर समझाते, इस अपमानित पराधीन जीवन से तो मृत्यु हज़ार दर्जे अच्छी है। कार्य आरम्भ होने पर कुछ और लोग भी उनके साथ आ मिले और मई, १९१२ में इन लोगों की एक सभा हुई। कोई ९ सज्जन रहे होंगे। सब ने तन-मन-धन देश की स्वतन्त्रता पर निछावर करने की प्रतिज्ञा की। इधर इन्हीं दिनों पञ्जाब के निर्वासित देश-भक्त सरदार भगवानसिंह वहीं पहुँच गए। धड़ाधड़ सभाएँ होने लगीं, उपदेश होने लगे। कार्य होता रहा। क्षेत्र तैयार होता गया।

फिर आपको सम्वाद-पत्र की आवश्यकता अनुभव हुई। 'ग़दर' नामक पत्र निकाला। उसका पहला अङ्क १ली नवम्बर, १९१३ को प्रकाशित हुआ था। उस पत्र के सम्पादकीय विभाग

में हमारे नायक करतारसिंह भी थे। आप ज़ोरों से लिखा करते। इसे सम्पादकगण स्वयं ही हैण्ड-प्रेस पर छापते भी थे। करतार-सिंह मतवाले विद्रोही युवक थे। हैण्ड-प्रेस चलाते-चलाते थक जाने पर वे यह पञ्जाबी गीत गाया करते :

सेवा देश दी जिंदड़िए बड़ी औखी, गल्लां करनियाँ ढेर सुखल्लियाने।
जिन्हाँ इस सेवा विच पैर पाया, उन्हाँ लख मुसीबताँ झल्लियाँने॥

अर्थात्—'अरे दिल, देश की सेवा बड़ी मुश्किल है, बातें बनाना बड़ा आसान है। जो लोग इस सेवा-मार्ग पर अग्रसर हुए, उन्हें लाखों विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं।'

करतारसिंह उस समय जिस चाव से मिहनत करते थे—कठिन परिश्रम करने पर भी वे जिस तरह हँसते-हँसाते रहते थे, उससे सभी का उत्साह दूना हो जाता था।

भारत को किस तरह स्वतन्त्र करवाना होगा, यह और किसी को पता हो अथवा न हो, किसी ने इसके सोचने में मग़ज़-पच्ची की हो अथवा नहीं, पर हमारे नायक ने तो ख़ूब सोच रक्खा था। इसी से तो उसी बीच में आप न्यूयॉर्क की हवाई जहाज़ों की कम्पनी में भर्ती हुए और वहाँ दत्तचित्त से हवाई जहाज़ चलाना, मरम्मत करना और बनाना सीखने लगे। शीघ्र ही इस कला में वे दक्ष हो गए। सितम्बर, १९१४ में कामागाटा मारू जहाज़ को नृशंस गोरेशाही के हाथों अकथनीय कष्ट सहन करने के बाद लौटना पड़ा था, तभी हमारे नायक करतार-सिंह, कोई एक विप्लवी मि० गुप्ता तथा एक अमेरिकन अनार-

किस्ट "जैक" को साथ लेकर हवाई जहाज़ पर जापान आए थे और कोब (*Kobe*) में बाबा गुरुदत्तसिंह जी से मिल कर सब बातचीत कर गए थे !

युगान्तर-आश्रम सान्फ्रान्सिस्को के ग़दर-प्रेस में "ग़दर" तथा उसके अतिरिक्त "ग़दर दी गूँज" इत्यादि अनेक पुस्तकें छपती और बँटती गईं। प्रचार ज़ोरों से होता गया। जोश बढ़ा। फ़रवरी, १९१४ में ही स्टॉकटन की सार्वजनिक सभा में तिरङ्गा झण्डा फहराया गया। तभी स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव के नाम पर शपथें ली गईं। उस सभा के प्रभावशाली वक्ताओं में तरुण करतार भी थे। घोर परिश्रम तथा गाढ़े पसीने की कमाई को देश की स्वतन्त्रता के लिए खर्च करने का निश्चय सभी श्रोताओं ने घोषित कर दिया। ऐसे ही दिन बीत रहे थे, एकाएक यूरोप में महाभारत छिड़ने का समाचार मिला। अब क्या था, आनन्द और उत्साह की सीमा न रही। एकाएक सभी गाने लगे :

चलो चल्लिए देशनूँ युद्ध करन ।
एहो आख़िरी वचन ते फ़र्मान हो गए ॥

अर्थात्—"चलो, देश को युद्ध करने चलें, यही है आख़िरी वचन और फ़र्मान।"

विद्रोही करतार ने देश को लौटने का प्रचार ज़ोरों से किया और फिर स्वयं भी "निपन मारू" जहाज़ द्वारा अमेरिका से चल दिए और १५-१६ सितम्बर, १९१४ को कोलम्बो पहुँच गए। उन

दिनों पञ्जाब तक पहुँचते न पहुँचते साधारणतया अमेरिका से आने वाले "भारत-रक्षा क़ानून" की गिरफ़्त में आ जाते थे। बहुत कम आदमी स्वतन्त्र रूप से पहुँच सकते थे। करतारसिंह सही-सलामत आ पहुँचे। बड़े ज़ोरों से कार्य शुरू हुआ। सङ्गठन की कमी थी, परन्तु जैसे-तैसे वह भी पूरा की गई। दिसम्बर, १९१४ में पिङ्गले—मराठा वीर—भी आ पहुँचा। उसी के प्रयत्न से बनारस-षड्यन्त्र के अभिनेता स्वर्गीय श्री० शचीन्द्रनाथ सान्याल तथा रासबिहारी पञ्जाब में आए। कार्य सङ्गठित होना शुरू हुआ। करतारसिंह हर जगह, हर समय मौजूद होते। आज मोगा में गुप्त समिति की मीटिङ्ग है, तो वहाँ पर आप विद्यमान हैं; कल लाहौर के कॉलेजों के विद्यार्थियों में प्रचार हो रहा है। परसों किसी डकैती के लिए शस्त्र लिए जा रहे हैं, अगले दिन फ़ीरोज़पुर-छावनी के सिपाहियों से जोड़-तोड़ हो रहा है। दूसरे रोज़ कलकत्ते शस्त्रों के लिए जा रहे हैं। कमी का प्रश्न उठने पर आपने किसी के यहाँ डकैती का प्रस्ताव किया। डाके का नाम सुनते ही विद्रोही वीर सन्न हो गए, परन्तु आपने कह दिया—"कोई डर नहीं है, भाई परमानन्द भी डकैती से सहमत हैं।" पूछ आने का भार आपको सौंपा गया। अगले दिन बिना मिले ही जाकर कह दिया—"पूछ आया हूँ। वे सहमत हैं।"

विद्रोह की तैयारी में केवल धनाभाव के कारण कुछ देर हो, यह वह सहन नहीं कर सकते थे। उस दिन वे लोग डकैती के लिए रब्बो नामक गाँव में गए थे। करतार अध्यक्ष थे। डकैती

हो रही थी। घर में एक अत्यन्त सुन्दर युवती भी थी। उसे देख कर एक पापात्मा का मन विचलित हो गया। उसने लड़की का हाथ पकड़ लिया। उस काम-लोलुप नर-पशु की आकृति देख, लड़की घबड़ा गई और उसने ज़ोर से चीत्कार कर दिया। तुरन्त तरुण करतार रिवॉल्वर ताने उसी स्थान पर आ पहुँचे। उस व्यक्ति के माथे पर पिस्तौल रख कर उसे निशस्त्र कर दिया और फिर क्रुद्ध सिंह की तरह गरज कर कहा—"पामर! तेरा अपराध बहुत भीषण है। इस समय तुम्हें मृत्यु दी जानी चाहिए। परन्तु विशेष परिस्थितियों के कारण तुम्हें क्षमा करने पर बाध्य हूँ। इसलिए तुरन्त इस युवती के पाँव पर सिर रख कर क्षमा-प्रार्थना करो कि हे बहिन! मुझ पापी को क्षमा करो और उधर माता के चरण पकड़ कर कहो, माता! मैं इस नीचता के लिए क्षमा चाहता हूँ। यदि ये तुझे क्षमा कर देंगी तो तुझे जीता छोड़ूँगा, वरना अभी गोली से उड़ा दूँगा।" उसने वैसा ही किया। बात कुछ बहुत बढ़ी तो थी ही नहीं। यह देख दोनों स्त्रियों की आँखें भर आईं। माँ ने प्यार से करतारसिंह को सम्बोधित कर कहा—"बेटा! ऐसे धर्मात्मा और सुशील युवक होकर तुम इस भीषण कार्य में किस तरह सम्मिलित हुए हो?" करतारसिंह का भी जी भर आया। कहा—"माँ रुपए के लोभ से नहीं, अपना सर्वस्व लगा कर ही डाके डालने चले थे। हम अङ्गरेज़ी सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने की तैयारी कर रहे हैं। शस्त्र आदि खरीदने के लिए चाहिए। वह कहाँ से लें? माँ! उसी

महान् कार्य के लिए आज यह नीच कर्म करने पर हम बाध्य हुए हैं।"

उस समय बड़ा दर्दनाक दृश्य था। माँ ने फिर कहा—"इस लड़की की शादी करनी है। उसके लिए रुपया चाहिए। कुछ देते जाओ तो बेहतर हो।" सभी धन उसके सामने रख दिया गया और कहा गया—"जितना चाहिए ले लीजिए!" कुछ धन लेकर शेष सभी उसने स्वयं बड़े चाव से करतार की झोली में डाल दिया और आशीर्वाद दिया कि जाओ बेटा, तुम्हें सफलता प्राप्त हो!

डकैती-जैसे भीषण कार्य में सम्मिलित होने पर भी करतार-सिंह का हृदय कितना भावुक, कितना पवित्र, कितना महान् था, यह उक्त घटना से स्पष्ट है।

बङ्गाल-दल के संसर्ग में आने से पहले ही आपने शस्त्रों के लिए लाहौर-छावनी की मेगज़ीन पर हमला करने की तैयारी कर ली थी। एक दिन ट्रेन में जाते हुए एक फ़ौजी सिपाही से भेंट हो गई। वह मेगज़ीन का इञ्चार्ज था। उसने चाबियाँ दे देने का वादा किया। २५ नवम्बर को आप कुछेक दुःसाहसी साथियों को लेकर वहाँ जा धमके; परन्तु एकाध दिन पहले उप-रोक्त सिपाही का किसी अन्य स्थान को तबादला हो जाने से सारा कार्य बिगड़ गया। परन्तु दिल छोड़ना, घबरा जाना ऐसे विप्लवियों के चरित्र में नहीं होता।

फ़रवरी में विद्रोह की तैयारी थी। पहले सप्ताह आप, पिङ्गले तथा दो-एक अन्य साथियों सहित आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ तथा मेरठ आदि गए और विद्रोह के लिए फ़ौजों से जोड़-तोड़ कर आए।

आख़िर वह दिन भी निकट आने लगा, जिसका विचार आते ही इन लोगों का हृदय हर्ष, चाव तथा भय आदि अनेक भावों से धड़कने लगते थे। २१ फ़रवरी, १९१५ समस्त भारत में विद्रोह मचाने का दिन निश्चित हुआ था। तैयारी इसी विचार से हो रही थी। परन्तु ठीक उसी समय उनके विशाल आशा-तरु की जड़ में बैठा एक चूहा उसे काट रहा था। तने के एक-दम खोखले हो जाने पर आँधी के एक ही थपेड़े से वह ज़मीन पर गिर जायगा, यह वे नहीं जानते थे। चार-पाँच रोज़ पहले सन्देह हो गया। कृपाल की कृपा से सब गोबर हो जायगा, इसी भय से करतार ने रासबिहारी से २१ के स्थान पर १९ फ़रवरी को ही विद्रोह खड़ा कर देने को कहा था। वैसा ही हो जाने पर भी कृपालसिंह को भेद मालूम हो गया। उस विराट् विप्लवायोजन में उस एक नर-पिशाच का अस्तित्व कितना भयानक परिणाम का कारण हुआ। रासबिहारी और करतारसिंह भी कोई यथोचित प्रबन्ध कर अपना भेद न छिपा सके, इसका कारण भारत-दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

पागल करतार ५०-६० व्यक्ति लेकर पूर्व निश्चय के अनुसार १९ फ़रवरी को फ़िरोज़पुर-छावनी में जा पहुँचे। आप—अभी

कुछेक घण्टे के बाद रणचण्डी का ताण्डव-नृत्य प्रारम्भ हो जायगा ! करतारसिंह अपने तिरङ्गे झण्डे अभी-अभी भारतभूमि में फहरा देंगे ! आज ही और अभी गुरु गोविन्द के अनुयायी करतार तथा उसके सहकारियों में बढ़-चढ़ के मरने-मारने की उत्कण्ठा पैदा हो जायगी।

करतारसिंह छावनी में घुस गए। अपने साथी फ़ौजी हवलदार से मिले। विद्रोह की बात कही। परन्तु कृपाल ने तो पहले ही सब कुछ बिगाड़ रक्खा था। भारतीय सैनिक निःशस्त्र कर दिए गए थे। धड़ाधड़ गिरफ़्तारियाँ हो रही थीं। हवलदार ने साफ़ इन्कार कर दिया। करतारसिंह का आग्रह व्यर्थ हुआ। निराश, हताश लौट आए। सब प्रयत्न, सब परिश्रम, एकदम व्यर्थ हो गया। पञ्जाब में गिरफ़्तारियों का बाज़ार गर्म हो गया। विपत्ति में पड़ते ही अनेक विप्लवी अक़्लमन्द बनने लगे। उन्हें अपने आदर्श में भ्रम दीखने लगा। आज वह पकड़ गया, कल वह फूट गया। ऐसी ही दशा में रासू बाबू हताश हो कर मुर्दे की नाईं लाहौर के एक मकान में पड़े थे। करतारसिंह भी आकर एक चारपाई पर दूसरी ओर मुँह करके लेट गए। वे एक दूसरे से कुछ बोले नहीं। परन्तु चुप ही चुप में एक दूसरे के हृदय में वे घुस कर सब समझ गए थे। उनकी उस समय की वेदना का अनुमान हम लोग क्या लगा सकेंगे ?

दरे तकबीर पर सर फोड़ना शेवा रहा अपना !
वसीले हाथ ही आए न क़िस्मत आज़माई के !!

निश्चय हुआ, सभी पश्चिमी सीमा से उस पार लाँघ कर विदेशों में चले जाएँ। रासू बाबू कलमा पढ़ने लगे। परन्तु उन्होंने एका-एक निश्चय बदल डाला। वे बनारस चले गए। परन्तु करतार-सिंह पश्चिम की ओर चल दिए। वे तीन व्यक्ति थे—श्री० करतारसिंह, श्री० जगतसिंह तथा श्री० हरिनामसिंह टुण्डा, ब्रिटिश-भारत की सीमा से पार निकल गए। शुष्क पहाड़ में जाते-जाते एक रमणीक स्थान आया। छोटी-सी सुन्दर नदी बह रही थी। उसी के किनारे बैठ गए। चने खोल कर चबाने लगे। कुछ जलपान हो चुकने के बाद करतारसिंह गाने लगे :

"बनी सिर शेराँ दे, की जाणा भज्ज के।"

भावुक करतार कवि भी थे। अमेरिका में उन्होंने यह कविता लिखी थी। मतलब है कि "शेरों के सर पर आ बनी है, अब भाग कर क्या जाएँगे?" सुरीली आवाज़ में यही एक पंक्ति गाई थी। झट से रुक गये और बोले—"क्यों जी जगतसिंह, क्या यह कविता दूसरों के लिए ही लिखी गई थी? क्या हम पर इसका कुछ भी दायित्व नहीं? आज हमारे साथी विपत्ति में फँसे पड़े हैं और हम अपना सर छुपाने की चिन्ता में व्यग्र हो रहे हैं?" एक दूसरे की ओर देखा। निश्चय हुआ, भारत लौट कर उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न किया जाय, फिर आगे नहीं गए—वहीं से लौट आए। जानते थे, मृत्यु मुँह फाड़े उनकी प्रतीक्षा में खड़ी है। परन्तु इससे क्या होता था। उनकी तो उत्कट इच्छा यही थी, कि कहीं कोई घमासान शुरू हो जाए,

लड़ते-लड़ते प्राण दे दें। सरगोधा के पास चक नम्बर ५ में गए। फिर से विद्रोह की चर्चा छेड़ दी। वहीं पकड़े गए। जञ्जीरों से जकड़ दिए गए। निर्भीक बन्दी विद्रोही करतारसिंह लाहौर स्टेशन पर लाए गए। पुलिस-कप्तान से कहा—"मि० टॉमकिन, कुछ खाने को तो ला दो!" ओह! कितना मस्तानापन था! उस सुन्दर मूर्त्ति को देख कर शत्रु-मित्र सभी मुग्ध हो जाते थे। गिरफ़्तारी के समय वे बड़े प्रसन्न थे—प्रायः कहा करते थे—"साहस से मर जाने पर मुझे 'बाग़ी' का ख़िताब देना। कोई याद करे तो 'बाग़ी' करतारसिंह कह कर याद करे।"

जेल में बन्द होने पर भी उस अशान्त हृदय को शान्ति न मिली। एक दिन लोहा काटने के यन्त्र मँगवा लिए। ६०-७० अभियुक्तों को इकट्ठा किया। निश्चय हुआ, चार-पाँच के अलावा—जोकि बिलकुल निर्बल तथा निर्दोष थे—सभी लोग उसी रात को भाग निकलें। बाहर से यह समाचार भी आ गया था कि लाहौर-छावनी मेगज़ीन से इञ्चार्ज महाशय सहायता के लिए तैयार हैं। निश्चय हुआ है कि ५०-६० व्यक्ति जेल से निकलते ही सीधे लाहौर-छावनी जाएँ। उन लोगों की सहायता से मेगज़ीन से सामान निकाल कर सभी को सशस्त्र कर दिया जाय और उसके बाद फिर से विद्रोह किया जाय। विचार था, जेल तोड़ कर क़ैदियों को निकाला जावे ताकि वे सभी लोग विप्लव की तैयारी में जुट जाएँ। परन्तु करतारसिंह के लिए उस निराशा और विफलता के युग में ऐसी आशा दुराशा-मात्र

थी। किसी एक साधारण क़ैदी को कुछ भेद मिल गया। सभी को कोठरियों में बन्द कर दिया गया। बेड़ियाँ पहना दी गईं तलाशी हुई, सब चीजें करतारसिंह की कोठरी में पानी की सुराही रखने वाले स्थान के नीचे खुदे हुए एक छेद में मिल गईं। सब प्रयत्न निष्फल हो गया।

अभियोग चला। उस समय करतारसिंह की आयु केवल साढ़े अठारह वर्ष की थी। सभी अभियुक्तों में से आप छोटी अवस्था के थे। परन्तु जज महोदय लिखते हैं:

He is one of the most important of these 61 accused; and has the largest dossier of them all. There is practically no Department of this Conspiracy in America, on the voyage, and in India in which this accused has not played his part.

एक दिन आपके बयान देने की बारी आई। आपने सब मान लिया। सब कुछ मानता देख कर जज महोदय लिखने से रुक गए। सारा दिन करतारसिंह बयान देते रहे। मुँह में क़लम दबाए जज देखते रहे, कुछ लिखा नहीं। बाद में इतना ही कहा—"करतारसिंह! आज तुम्हारे बयान नहीं लिखे गए। तुम सोच-समझ कर बयान दो। तुम जानते हो, तुम्हारे अपने ही बयानों का क्या नतीजा निकल सकता है?"

देखने वाले बताते हैं, जज के इन शब्दों पर उसने एक

मस्तानी अदा से केवल इतना कहा था—"फाँसी ही लगा दोगे न, और क्या ? हम उससे डरते नहीं हैं।"

उस दिन अदालत उठ गई। अगले दिन फिर करतारसिंह का बयान शुरू हुआ। जज लोगों की पहले दिन कुछ ऐसी धारणा थी कि करतारसिंह ऐसा बयान भाई परमानन्द के इशारे पर दे रहा है। परन्तु वे वैसविक तरुण हृदय के गाम्भीर्य को नहीं समझ पाए थे। करतारसिंह का बयान ज्यादा जोरदार, ज्यादा जोशीला तथा पहले दिन की तरह स्वीकृति-सूचक था।

अन्त में आपने कहा—"मेरे अपराध के लिए मुझे या तो आजीवन कारागार का दण्ड मिलेगा, या फाँसी ! परन्तु मैं तो फाँसी को ही श्रेय दूँगा ताकि शीघ्र ही फिर जन्म लेकर भारत-स्वतन्त्रता-युद्ध के लिए तैयार हो जाऊँ। जब तक भारत स्वतन्त्र न होगा, तब तक ऐसे ही बार-बार जन्म धारण कर फाँसी पर लटकता रहूँ, यही अभिलाषा है और यदि पुनर्जन्म में स्त्री बना तो भी अपने ऐसे विद्रोही पुत्रों को जन्म दूँगा।"

आपकी दृढ़ता ने जज लोगों को भी प्रभावित किया, परन्तु उन्होंने एक उदार शत्रु की तरह आपकी वीरता को वीरता न कह कर, ढिठाई के शब्द से याद किया। जज महोदय लिखते हैं :

He is a young man, no doubt; but he is certainly one of the worst of these conspirators; and is a thoroughly Callous Scoundrel, proud

of his exploits, to whom no mercy, whatever, can be or should be shown.

वीर और उदार शत्रु पराजित सैनिक से ऐसा व्यवहार नहीं किया करते। परन्तु यहाँ ऐसा ही हुआ। करतारसिंह को केवल गालियाँ ही मिली हों, सो ही नहीं, मृत्यु-दण्ड भी मिला। उन्हीं को ढूँढ़ते हुए पुलिस वालों के हाथ से पानी पीकर कई बार चम्पत हो जाने वाले वीर करतार आज विद्रोह—बग़ावत—के अपराध में मृत्युदण्ड के भागी बने। आपने वीरता-पूर्वक मुस्कराते हुए जज से कहा—"*Thank you !*"

करतार, तुम्हारे जीवन में कौन ऐसी विशेष घटना हो गई थी, जिससे तुम मृत्यु-देवी के ऐसे उपासक बन गए? करतार-सिंह फाँसी की कोठरी में बन्द हैं। दादा आकर पूछते हैं—करतारसिंह किन के लिए मर रहे हो? जो तुम्हें गालियाँ देते हैं? तुम्हारे मरने से देश का कुछ लाभ हो, सो भी तो नहीं दीखता?

करतारसिंह ने धीरे से पूछा—"पितामह, अमुक व्यक्ति कहाँ है?"

"प्लेग से मर गया।"

"अमुक कहाँ है?"

"हैज़े से मर गया।"

"तो क्या आप चाहते थे, कि करतारसिंह भी बिस्तर पर महीनों पड़ा रह कर, दर्द से कराहता हुआ, किसी रोग से
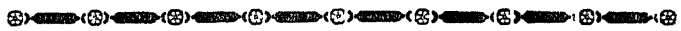
मरता! क्या उस मृत्यु से यह मृत्यु अच्छी नहीं?" दादा चुप हो गए।

आज दुनिया में फिर प्रश्न उठता है, उनके मरने से लाभ क्या हुआ? वे किस लिए मरे? उत्तर स्पष्ट है। मरने के लिए मरे। उनका आदर्श ही देश-सेवा में मरना था, इससे अधिक वे कुछ नहीं चाहते थे। मरना भी अज्ञात रह कर चाहते थे! उनका आदर्श था—*Unsung Unhonoured and unwept.*

" चमन ज़ारे 'मुहब्बत में उसी ने बाग़बानी की—
कि जिसने अपनी मेहनत को ही मेहनत का समर जाना!
नहीं होता है मोहताजे नुमायश फ़ैज़ शबनम का,
अँधेरी रात में मोती लुटा जाती है गुलशन में॥"

डेढ़ साल तक मुक़द्दमा चला। सम्भवतः वह १९१६ का नवम्बर ही था, जबकि उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया। वे उस दिन भी सदा की तरह प्रसन्न थे। उनका वज़न १० पाउण्ड बढ़ गया था। "भारतमाता की जय" कहते हुए वे फाँसी के तख़्ते पर चढ़ गए।
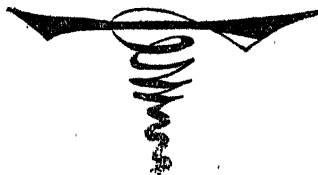
श्री० वी० जी० पिङ्गले

फटे हुए माता के अञ्चल को बढ़कर सीने वाले !
तुझे बधाई है ओ पागल ! मरकर भी जीने वाले !!

पूना के पहाड़ी प्रदेश में श्री० गणेश पिङ्गले के यहाँ जन्म पाकर, अभी उनका बचपन बीतने भी न पाया था, कि गुलामी के थपेड़े से वह भावुक हृदय कराह उठा। घर वालों ने इञ्जीनियरिङ्ग की शिक्षा पाने के लिए उन्हें अमेरिका भेज दिया, बस वहीं पर उन्होंने विप्लव-दल की दीक्षा ली और फिर भारत को वापस आ गए। उस बेचैन हृदय ने अब एक क्षण भी बेकार खोना गवारा न किया। भारत में आने पर घर न जाकर, पिङ्गले सीधे बङ्गाल पहुँचे और वहाँ के क्रान्तिकारियों को पञ्जाब के बलवे की सूचना देकर उनसे सम्बन्ध स्थापित किया। पञ्जाब तथा बङ्गाल के दलों के मिल जाने पर कार्य ज़ोरों से होने लगा। अधिक से अधिक तादाद में बम् बनाने की व्यवस्था की गई और सङ्गठन को काफ़ी विस्तार दिया गया।

रासबिहारी के दल से मिल कर पिङ्गले काशी पहुँचे। दो-तीन दिन वहाँ रहने के बाद कुछ लोगों ने उनसे पञ्जाब जाने का अनुरोध किया। अस्तु, अधिक से अधिक संख्या में बम् भेजने का कह कर पिङ्गले पञ्जाब पहुँचे और एक ही सप्ताह में वहाँ की सारी व्यवस्था जान कर फिर काशी वापस आ गए। इस बार वह रासबिहारी को पञ्जाब ले जाने के लिए ही आए

थे, किन्तु कारणवश उनके स्थान पर स्वर्गीय शचीन्द्रनाथ सान्याल को ही जाना पड़ा। एक साधारण से हिन्दुस्तानी के वेष में शचीन्द्र को साथ लेकर पिङ्गले अमृतसर के एक गुरुद्वारे में पहुँचे। इन्हें पञ्जाबी बोलने का अच्छा अभ्यास था। अस्तु, कुछ दिन वहाँ ठहर कर सङ्गठन को और भी दृढ़ बनाया गया। उस समय पिङ्गले तथा करतारसिंह ही पञ्जाब के आन्दोलन की जान थे। सब ठीक हो जाने पर रासबिहारी भी पञ्जाब आ गए। विप्लव का आयोजन ज़ोरों के साथ होने लगा। शचीन्द्र बाबू को बनारस का भार सौंपा गया। २१ फ़रवरी विप्लव का दिन था। किन्तु अभी तो भारत को कुछ और ठोकरें खानी थीं। अस्तु, लीलामय की इच्छा के विरुद्ध यह काम न हो सका, अर्थात् पुलिस के एक भेदिए ने सारे परिश्रम पर पानी फेर दिया। गिरफ़्तारियाँ शुरू हो जाने पर सारा दल छिन्न-भिन्न हो गया! आज तो जीवन-मरण के साथी थे, कल वे ही जेल में तिल-तिल कर प्राण देने लगे।

रासबिहारी के साथ बनारस वापस जाते समय पिङ्गले विप्लव का प्रचार करने के लिए फिर मेरठ-छावनी में घुस पड़े। एक मुसलमान हवलदार ने उन्हें बहुत कुछ आशा दिलाई और उन्हीं के साथ बनारस आया। रासबिहारी ने पिङ्गले को ऐसे समय में सिपाहियों के बीच जाने से बहुतेरा मना किया, किन्तु वे फिर भी निराश न हुए और अन्त में उन्हें भी अनुमति देनी पड़ी। पिङ्गले को दस बड़े-बड़े बम् देकर रवाना किया गया।

रासबिहारी का अनुमान सत्य निकला, देशद्रोही मुसल्मान हवलदार ने उन्हें मेरठ-छावनी में ही गिरफ्तार करवा दिया। राउलेट रिपोर्ट में पिङ्गले के पास वाले बमों के बारे में लिखा है:

One bomb was sufficient to annihilate half a regiment.

रासबिहारी ने बाद में अपनी डायरी के कुछ पृष्ठ देते हुए लिखा था—"यदि मैं जान पाता, कि पिङ्गले अब मुझे फिर न मिल सकेगा तो उसके लाख आग्रह करने पर भी उसे अपने पास से जाने न देता। उस सुदृढ़ गोरे शरीर वाले वीर के अभिमान भरे ये शब्द कि 'मैं एक वीर सैनिक की हैसियत से केवल कार्य करना जानता हूँ' अब भी कानों में गूँजते रहते हैं और उसकी तीव्र बुद्धि का परिचय देने वाली वे बड़ी-बड़ी आँखें भुलाने पर भी नहीं भूलतीं।"

अदालत से उन्हें फाँसी की सजा मिली। १६ नवम्बर का दिन था। प्रातःकाल और साथियों के साथ लाकर उन्हें फाँसी के तख्ते के पास खड़ा किया गया! पूछा—"कुछ कहना चाहते हो?" पिङ्गले ने कहा—"दो मिनट की छुट्टी भगवान् से प्रार्थना करने के लिए मिलनी चाहिए।" हथकड़ी खोल दी गई और उन्होंने हाथ जोड़कर कहा:

"भगवन्! तुम हमारे हृदयों को जानते हो। जिस पवित्र कार्य के लिए आज हम जीवन की बलि चढ़ा रहे हैं, उसकी

रक्षा का भार तुम पर है। भारत स्वाधीन हो, यही एक कामना है।"

इसके बाद स्वयं ही फाँसी की रस्सी गले में डाल ली और तख्ता खिंचते ही पहले ही झटके में उनके प्राण-पखेरू उड़ गए!

श्री० जगतसिंह

आपके जन्म, निवास-स्थान आदि का पता तो लग न सका, हाँ, इतना अवश्य मालूम है कि आए दिन बहुत से सिक्खों को अमेरिका जाते देख आप भी वहीं चले गए थे और ग़दर की बात छिड़ने पर देश में स्वाधीनता-समर में दो-दो हाथ करने की लालसा से फिर वापस आ गए थे। इनका शरीर बड़ा सुदृढ़ तथा बलिष्ट था और सिक्खों में भी इनके समान दैत्याकार शरीर वाला और कोई न था।

उस दिन कृपाल की कृपा से विप्लव का सारा प्रयास विफल हो जाने पर एक बार भाग्य-परीक्षा के तौर पर फिर से कार्य आरम्भ किया गया। रासबिहारी के सब साथी तो पकड़े जा चुके थे। पुलिस का आतङ्क अभी उसी भाँति जारी था। प्रत्येक पल पर विपत्ति की सम्भावना थी। अस्तु, किसी काम से जगतसिंह को दो और साथियों के साथ कहीं बाहर रवाना किया गया।

तीन सिक्खों को ताँगे पर जाते देख पुलिस ने आ घेरा और थाने में चलने को मजबूर करने लगे। वे वीर जानते थे कि थाने में जाना मौत के मुँह में जाना है और वहाँ जाकर नाम-धाम का ठीक-ठीक पता वे दे न सकेंगे। अतः अन्तिम बार भाग्य-परीक्षा करने का निश्चय कर इन तीनों ने ही गोली चलाना शुरू कर दिया।

कुछ देर तक गोली चलने के बाद इनमें से एक तो निकल गया और एक पुलिस के हाथ आ गया। तीसरे व्यक्ति जगत-सिंह जिस समय पुलिस के हाथ से बच कर एक पाइप पर पानी पीने के बाद हाथ पोंछ रहे थे तो पीछे से एक इनसे भी अधिक शक्तिशाली मुसलमान ने आकर इनके दोनों पैर इस मजबूती से पकड़ लिए कि ये फिर वहाँ से हिल भी न सके।

ज़मीन पर गिरते ही इन्हें भी गिरफ़्तार कर लिया गया। और लोगों के साथ अभियोग चलने पर इन्हें भी वही फाँसी की आज्ञा हुई और इस प्रकार ये भी अपना पार्ट पूरा कर विप्लव-नाटक के एक और दृश्य को समाप्त कर गए।

श्री० बलवन्तसिंह

वे बड़े ईश्वर-भक्त थे। धर्मनिष्ठा के कारण उन्हें सिक्खों का पुरोहित बना दिया गया था। शान्ति के परम उपासक बलवन्त का स्वभाव बड़ा मृदुल था। वे सुमधुर भाषी

थे। पहले-पहल वे ईश्वरोपासन की ओर लगे। फिर लोगों को उस ओर लाने की चेष्टा प्रारम्भ की। बाद में लोगों के कष्ट दूर करने के प्रयास में धीरे-धीरे गौराङ्ग महाप्रभुओं से मुठभेड़ होती गई और अन्त में फाँसी पर मुस्कराते हुए आपने प्राण त्याग किया।

श्री० बलवन्तसिंह का जन्म गाँव .खुर्दपुर ज़िला जालन्धर में १ली आश्विन, संवत् १९२९ विक्रमी शुक्रवार को हुआ था। आपके पिता का नाम सरदार बुद्धसिंह था। परिवार बड़ा धनाढ्य था। पिता को धन के अतिरिक्त स्वभाव तथा अन्य गुणों के कारण सभी मान तथा आदर की दृष्टि से देखते थे। आपको होश सँभालते ही आदमपुर के मिडिल स्कूल में शिक्षा के लिए दाख़िल करवा दिया गया। विद्यार्थी-जीवन में ही आपका विवाह हो गया। परन्तु विवाह के बाद शीघ्र ही धर्मपत्नी की मृत्यु हो गई। मिडिल पास किए बिना ही स्कूल छोड़कर वे फ़ौज में जा भरती हुए। पल्टन में आपका सन्त कर्मसिंह जी से संसर्ग हुआ। उनकी सङ्गति से आपका ईश्वर-भजन की ओर झुकाव हो गया। दस साल ज्यों-त्यों नौकरी की, फिर एकाएक नौकरी छोड़ अपने गाँव में रह कर ईश्वरोपासना शुरू कर दी। पल्टन की नौकरी में ही आपका दूसरा विवाह भी हुआ था। गाँव के पास एक गुफा थी। उसी में बन्द रह कर भगवद्भजन में तल्लीन रहने लगे। ग्यारह महीने वहीं रहने के बाद बाहर आते ही सन् १९०५ में कैनाडा जाने का निश्चय कर, उधर ही प्रस्थान कर दिया।

कैनेडा में जाकर आपने अपने दूसरे साथी श्री० भागसिंह जी से, जिन्हें एक देश-द्रोही ने बाद में गोली मार दी थी, मिल कर गुरुद्वारा बनाने का कार्य आरम्भ किया। वैङ्कोवर में ही उनके प्रयत्न से अमेरिका का सब से पहला गुरुद्वारा स्थापित हुआ। उस समय वहाँ गए हुए भारतवासियों में कोई सङ्गठन न था। उन्हें गोरे लोग तङ्ग किया करते थे, परन्तु हमारे नायक वहाँ गए तो उन्होंने इन सब त्रुटियों को दूर करने का भरसक प्रयत्न कय ।

उस समय वहाँ के प्रवासी हिन्दुओं तथा सिक्खों को मृतक संस्कार करने में बड़ी विपत्ति होती। मुर्दे जलाने की उन्हें आज्ञा न थी। ऐसी अवस्था में बेचारे उन लोगों को अनेकानेक कष्ट सहन करने पड़ते। कई बार उन्हें वर्षा में, बर्फ़ में, शव को जङ्गल में ले जाकर, कुछ लकड़ियाँ इकट्ठी कर, तेल डाल आग लगा कर भागना पड़ता। ऐसी अवस्था में भी कैनेडियन लोगों की गोली का निशाना बनने का डर रहता। श्री० बलवन्तसिंह जी ने यह असुविधा दूर करने का प्रबन्ध लिया। कुछ जमीन खरीद ली। दाह-संस्कार करने की आज्ञा भी प्राप्त कर ली। गुरुद्वारे में भारतीय मजदूरों का सङ्गठन भी करने लगे। उनमें सच्चरित्रता तथा ईश्वरोपासना का प्रचार किया करते। गुरुद्वारा बड़े प्रयत्न से बन पाया था, उन सब में आपका परिश्रम ही सबसे अधिक था, अतः सब ने मिल कर आपको ही ग्रन्थी बनाना निश्चित किया।

पहले तो आपने कुछ इन्कार किया, परन्तु बाद में स्वीकार कर लिया।

सिक्ख लोग बड़े हृष्ट-पुष्ट तथा परिश्रमी होते हैं। उनके कैनाडा में जाने से गोरे मज़दूरों की क़द्र कम हो गई। उधर अङ्गरेज़ मज़दूरों से उनका वेतन भी कहीं कम होता। उनके पहले दल के पहुँचते ही गोरे मज़दूरों ने दङ्गा-फ़िसाद शुरू कर दिया था। परन्तु योद्धा-वीर सिक्ख इन बातों से डरने वाले नहीं थे। इससे गोरे और भी चिढ़ उठे। और उधर गुरुद्वारा बनने से इनका सङ्गठन बढ़ने लगा। नवीन आगन्तुकों को हर प्रकार की सुविधा होने लगी। यह सब देखकर वहाँ की गोरी सरकार ने उनको निकालने के लिए यत्किञ्चित उपाय ढूँढ़ने शुरू किए। इमिग्रेशन विभाग वालों ने भारतीय मज़दूरों को बहुत-कुछ फुसला कर हण्डूरास नामक द्वीप में चले जाने पर राज़ी करने का प्रयत्न किया। उस द्वीप की बहुत तारीफ़ की गई। परन्तु भाई बलवन्तसिंह जी ख़ूब समझते थे कि यह सब धोखे की टट्टी है। आपने अपने किसी विश्वस्त सज्जन को वह स्थान देख आने के लिए भेजा। उन सज्जन का नाम था श्री० नागरसिंह। उन्हें वहाँ इमिग्रेशन विभाग वालों ने भारत में पाँच मुरब्बे ज़मीन और पाँच हज़ार डॉलर देने का लोभ देकर इस बात पर राज़ी करना चाहा कि वह भारतवासियों को हण्डूरास में आने पर राज़ी कर दें। उन्होंने आते ही सब भेद खोल दिया। इमिग्रेशन विभाग वाले भी खुल खेले। अब खुल्लमखुल्ला

युद्ध छिड़ गया। इमिग्रेशन विभाग ने औचित्यानौचित्य का विचार छोड़ दिया। ज्यों-ज्यों मामला बढ़ा त्यों-त्यों श्री० बलवन्तसिंह जी भी आगे बढ़ते गए।

प्रवासी भारतवासियों की इच्छा थी कि वे लोग भारत लौट कर अपने परिवारों को साथ ले जा सकें। बहुत दिनों तक खींचातानी हुई। आखिर एक सलाह सोची गई। श्री० बलवन्तसिंह, श्री० भागसिंह तथा भाई सुन्दरसिंह जी को भारत लौट कर अपने परिवार लाने के लिए भेजने का प्रस्ताव हुआ। वे तीनों सज्जन भारत को लौट आए।

१९११ में वे फिर सपरिवार रवाना हुए। हॉङ्गकॉङ्ग पहुँच कर टिकट न मिलने के कारण रुक जाना पड़ा। वहीं पड़े रह कर वह वैङ्कोवर-गुरुद्वारा वालों से पत्र-व्यवहार द्वारा सलाह करते रहे। आखिर तीनों सज्जन चल दिए। श्री० सुन्दरसिंह जी तो गए वैङ्कोवर को तथा शेष दोनों सज्जन तीनों परिवारों सहित सान्फ्रान्सिस्को रवाना हुए। भाई सुन्दरसिंह तो वैङ्कोवर पहुँच गए, परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका भी तो आखिर गोरों का देश था और इधर तो वे ही गुलाम भारतवासी थे, परिवारों सहित उन दोनों सज्जनों को वहाँ उतरने की आज्ञा न मिली। वे फिर हॉङ्गकॉङ्ग लौट आए। फिर बहुत दिन बाद बड़े यत्न से परिवारों के लिए वैङ्कोवर के टिकट मिले। वैङ्कोवर में उन दोनों सज्जनों को तो उतरने की आज्ञा मिल गई, परिवारों को उतरने की आज्ञा न मिली। बड़ा झञ्झट बढ़ा। आखिर

परिवारों को उतने दिनों तक उतरने की आज्ञा मिली, जितने दिनों में कि आशा की जा सकती थी कि इमिग्रेशन विभाग के केन्द्रीय कार्यालय ओटावा (*Ottava*) से अन्तिम आज्ञा आ जायगी। परिवार उतरे तो सही, पर ज़मानत पर। ज़मानत की अवधि पूरी हो जाने के दो दिन बाद इमिग्रेशन विभाग वाले परिवारों को लेने के लिए आए, परन्तु सिक्ख झगड़े के लिए तैयार हो गए। अफ़सर लोग ज़रा गरम हुए, परन्तु वीर योद्धाओं की लाल आँखें देख, अपना-सा मुँह लेकर लौट गए। लाल आँखों के पीछे कौन-सा बल था, कौन-सी दृढ़ता थी और कौन-सा निश्चय था जिससे कैनाडा की राजशक्ति और उनका इमिग्रेशन विभाग थर-थर काँप उठे, और उन परिवारों को वहीं रहने दिया गया—यह बातें आज ग़ुलाम भारतवासी नहीं समझ सकते। उनकी कूप-मण्डूकता, उनका सङ्कीर्ण दृष्टि-कोण नहीं समझ सकता, कि राष्ट्रों को बनाने में कैसे समय, कैसी घड़ियाँ उपस्थित हुआ करती हैं। स्वतन्त्र भारत अपने स्वातन्त्र्य संग्राम की इन अद्वितीय घटनाओं को याद किया करेगा। उस समय के इतिहास-लेखक ही इन सब बातों को ख़ूब विस्तार से और वास्तविक रूप में लिख सकने का सुअवसर पा सकेंगे। तब दफ़ा १२४—ए आदि विकराल दानव गला दबाए, आँखें निकाले उनकी साँस बन्द नहीं किए रहा करेंगे। वे परिवार तो वहीं रह गए, परन्तु शेष भारतीयों के परिवार लाने की समस्या वैसे की वैसी खड़ी रही। दो साल तक निरन्तर

झगड़ा किया, परन्तु परिणाम कुछ न निकला। आखिर तय पाया कि इङ्गलैण्ड की सरकार तथा जनता और भारत सरकार तथा जनता के सामने अपनी माँगें रक्खी जावें और उनकी सहायता से इस उलझन को सुलझाया जाय।

एक डेपूटेशन बनाया जो इङ्गलैण्ड भी गया और भारतवर्ष भी। उसके तीन सदस्यों में एक हमारे नायक श्री० बलवन्त-सिंह भी थे। इङ्गलैण्ड गए। सभी उच्च अधिकारियों से मिले। कहा गया—"मामला भारत सरकार द्वारा यहाँ पहुँचना चाहिए।" निराश हो भारत में आए। आन्दोलन शुरू किया। उस समय प्रमुख नेता लाला लाजपतराय जी ने भी सड़ा-सा उत्तर देकर उनसे पीछा छुड़ा लिया था। फिर क्या था? थोड़े से सज्जनों की सहायता मिली। सार्वजनिक सभाएँ की गईं। क्रोध था, आवेश था, घायल राष्ट्रीय भाव था, विवशता थी; और थी घोर निराशा। जले दिलों से जो कुछ निकला, कहा और फिर? सर माईकेल ओडायर अपने "*India As I knew it*" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—"*At this stage I sent a warning to the delegates that if this continued, I would be compelled io take serious action..............The delegates on this asked for an interview with me. I had a long talk with them and repeated my warning. Two of them were...and specious; the manner of the third seemed to be that of a dange-*

rous revolutionary. They wished to see the Viceroy and so sending them on to him, I particularly warned him about this man."

यह तीसरे सज्जन, जिन पर हमारे लाट ने इतना कुछ कह डाला है, यह वही हमारे नायक बलवन्त थे। उस भावुक हृयद् ने तों गहरे घाव खाए थे। आत्म-सम्मान का भाव बार-बार ठुकराया जा चुका था। उन्होंने धीरे-धीरे निश्चय कर लिया था कि भारत को हर सम्भव उपाय से स्वतन्त्र करवाना ही प्रत्येक भारतवासी का सर्व-प्रथम कर्त्तव्य है। ख़ैर—

डेपूटेशन हताश-निराश हो सन् १९१४ के आरम्भ में वापस लौट गया। इन्हीं दिनों भारतीय विद्रोही श्री० भगवानसिंह तथा श्री० बरकतुल्ला भी अमेरिका पहुँच गए। संयुक्त राज्य अमेरिका में इन दिनों हिन्दुस्तान-एसोसिएशन (*Hindusthan Association*) का कार्य जोरों पर होने लगा। ग़दर-दल, ग़दर-प्रेस, ग़दर-अखबार जारी हो गए। परन्तु उपरोक्त डेपूटेशन वाले सज्जनों का उस समय तक उनसे कोई सम्बन्ध न था। किन्तु उनको सर माईकेल ओडायर ने ग़दर-दल का ही प्रतिनिधि लिखा है। अस्तु—

उस समय तक भारतवर्ष के अभियोग अन्य जातियों के सामने नहीं रक्खे गए थे। परन्तु यह डेपूटेशन जापान और चीन के राजनीतिज्ञों से मिलता हुआ ही गया था, और उन्होंने भारत की ओर उन लोगों की सहानुभूति आकृष्ट करने का

भरसक प्रयत्न किया था। वैङ्कोवर लौट कर अपने निष्फल प्रयत्न का इतिहास सुनाते हुए श्री० बलवन्तसिंह जी ने एक बड़ी प्रभावशाली वक्तृता दी थी। ऐसी वक्तृताएँ राष्ट्रों के इतिहास में विशेष मान पाती हैं। गहरे मनन के बाद आपको चारों ओर से यही सुनाई देने लगा था, उनके अन्तस्तल से यही एक ध्वनि उठने लगी थी कि "सब रोगों की एकमात्र औषधि भारत की स्वतन्त्रता है।" आपने भाषण में अपना अनुभव तथा गहरे मनन से जो परिणाम निकाला था, सब कह सुनाया।

लोग इनकी सफ़ाई, शान्ति, वीरता, गम्भीरता और निर्भीकता को देख कर कहा करते थे कि बलवन्तसिंह सिक्खों के पादरी हैं अथवा सेनापति (*General*), यह निश्चय करना बड़ा कठिन है। अस्तु—

शीघ्र भविष्य में क्या किया जावे, यह तो कुछ निश्चय करने का अवसर नहीं मिला, कि एक और समस्या सामने आ खड़ी हुई—कामागाटा मारू जहाज़ आ पहुँचा। किनारे पर लगने की आज्ञा ही नहीं मिली, उलटे उन पर अनेक अत्याचार ढाए जाने लगे। जितने दिनों जहाज़ वहाँ रहा, उतने दिन सभी भारतीय दत्त-चित्त हो उसी की सहायता में लगे रहे। नेतृत्व फिर हमारे नायक के हाथ में था। आपने दिन-रात एक कर दिया। इतना परिश्रम और कोई कर पाता अथवा नहीं, सो नहीं कह सकते। किराए के किश्त की अदायगी में देर लगवा कर जो अड़चन गोरेशाही डालना चाहती थी, उसका भार भी आप पर पड़ा।

११ हज़ार डॉलर की आवश्यकता थी। सभा में ११ हज़ार डॉलर के लिए जो अपील आपने की थी, उसमें इतना दर्द और इतना प्रभाव था कि वर्णन नहीं किया जा सकता। ११ हज़ार डॉलर इकट्ठे हो गए। उनको आर्थिक आवश्यकताएँ पूरो करने के बाद आप और सलाह-मशिवरा करने के लिए दक्षिण की ओर बहुत दूर चले गए। अचानक वे अमेरिका की सीमा पर पहुँच गए। गोरी सरकार ने उन्हें पकड़ लिया। कहा—"अमेरिका से आए हो और चोरी से कैनेडा में प्रविष्ट हुए हो।" यह निराधार दोष भी एक लम्बे झगड़े का कारण हुआ, आखिर कुछ झगड़े के बाद मामला तय हुआ और आप वैङ्कोवर पहुँचे। कुछ दिन बाद निराश हो कर कामागाटा मारू जहाज़ भी लौटने पर विवश हो गया।

कामागाटा मारू के साथ भारत की जितनी आशाएँ सम्बद्ध थीं, सभी एकाएक मटियामेट कर दी गईं। भारत का व्यवसाय की ओर यही तो पहला प्रयत्न था। उसी में भारत-हितकारी शासकों ने पूरी तरह से ऐसा पीसने की कोशिश की कि फिर कोई ऐसी चेष्टा करने का दुःसाहस न कर सके। कैनेडा में जितने दिन जहाज़ ठहरा था, उतने दिन उनके साथ जो अमानुषिक व्यवहार हुए थे उनका रोमाञ्चकारी वर्णन लिखने का यह स्थान नहीं है, पर उनकी याद दिल को आग लगा देती है, पागल कर देती है, रुला-रुला जाती है। उन सब का उत्तरदायित्व इमिग्रेशन विभाग के वैङ्कोवर वाले मुख्य अध्यक्ष मि० हॉपकिन्सन पर ही था। ये लोग उन से बहुत नाराज़ थे। परन्तु

ज़रा और सुनिए। श्री० बलवन्तसिंह, श्री० भागसिंह ये दो ही सज्जन तो थे, जो पहले दिन से इमिग्रेशन विभाग वालों से वीरतापर्वंक लड़ते चले आए थे। कामागाटा मारू जहाज़ के मामले में भी सभी कार्य इन्हीं दो सज्जनों ने तो किया था। वे इमिग्रेशन विभाग की आँखों के काँटे हो रहे थे। एक देश-द्रोही भाड़े का टट्टू मिल गया। गुरुद्वारे में दीवान हो रहा था। विभीषण ने ईश्वर-भजन में तल्लीन श्री० भागसिंह और श्री० बलवन्तसिंह पर पिस्तौल से फ़ायर कर दिया। श्री० भागसिंह जी तो वहीं स्वर्गलोक सिधार गए, परन्तु श्री० बलवन्तसिंह बच गए। गोली उनके न लगकर एक और देशभक्त श्री० वतन-सिंह के जा लगी। वे भी वहीं शहीद हो गए। यह हत्यारा उपस्थित लोगों के पञ्जे से बच गया। कैनाडा-सरकार का क़ानून भी उसे कुछ दण्ड न दे सका। वह आज भी जीता है। आज वह पञ्जाब-सरकार का लाड़ला बना हुआ है। उसने यह सब काण्ड क्यों किया और इसमें उसे क्या भलाई दीख पड़ी, यह सब वही जाने!

इसी प्रकार की सरगर्मी से कितने ही महीने गुज़र गए। सन् १९१४ का अन्तिम पक्ष आ गया। महायुद्ध छिड़ चुका था। अमेरिका-स्थित भारतीय सब देश में वापस आने की तैयारी करने लगे। फिर हमारे नायक वहाँ कैसे ठहर सकते थे। सपरिवार प्रस्थान कर दिया। आप शङ्घाई पहुँचे, वहीं आपके घर एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। वहाँ कार्य के सम्बन्ध

में आपको अपना घर लौटने का इरादा बदलना पड़ा। परिवार तो श्री० करतारसिंह के साथ भारत को भेज दिया और आप वहीं ठहर गए। वहाँ जो सब कार्य करने को था, करते हुए आप १९१५ में बेङ्कॉक (*Bangkok*) पहुँचे।

उन दिनों सुदूर-पूर्व में जो विद्रोह के प्रयत्न हो रहे थे, उन्हीं के सङ्गठन तथा नियन्त्रण में आपको कार्य करने के लिए ठहरना पड़ा था। उन सब विफल-आयोजनों का रोमाञ्चकारी इतिहास लिखने का यह स्थान नहीं। सप्ताह भर सिङ्गापुर में जो रणचण्डी का ताण्डव-नृत्य हुआ था, उसमें साम्राज्यवादी जापान तथा फ्रान्स की सर्व शस्त्र-सुसज्जित सेनाओं की सहायता से अङ्गरेज़ विजयी हुए। भारत का स्वतन्त्रता-प्रयत्न निष्फल हो गया। *Eastern Plot* ख़त्म हो गया। ऐसी ही अवस्था में श्री० बलवन्तसिंह जी बेङ्कॉक पहुँचे थे। दुर्भाग्यवश आप बीमार हो गए। दशा नाज़ुक हो गई, अस्पताल जाना पड़ा। नासमझ डॉक्टर ने ऑपरेशन कर डाला और वह भी बिना क्लोरोफ़ॉर्म सुँघाए ही। आपका कष्ट और निर्बलता बढ़ गई। अभी चलने-फिरने योग्य भी न हुए थे कि अस्पताल वालों ने उन्हें चले जाने को कहा। चलने-फिरने की अयोग्यता की बात पर भी ध्यान नहीं दिया ग अस्पताल से बाहर निकाल दिया गया। इतना उतावलापन क्यों किया गया, सो भी सुन लीजिए। बाहर पुलिस गिरफ़्तार करने के लिए खड़ी थी। द्वार से बाहर निकलते न निकलते आपको गिरफ़्तार कर लिया

गया। वहाँ रहने वाले भारतवासियों के ज़मानत-अमानत के सब प्रयत्न विफल हो गए। स्याम की "स्वतन्त्र सरकार" ने श्री० बलवन्तसिंह जी तथा उनके अन्य साथियों को चुपचाप भारत की अङ्गरेज़-सरकार के सुपुर्द कर दिया। सो क्यों? इसका भी एकमात्र कारण यही है कि भारत ग़ुलाम है। ग़ुलाम-जाति के लिए कौन ख़ाहमख़ाह की बला सिर पर लेता है। ख़ैर!

श्री० बलवन्तसिंह जी को सिङ्गापुर लाया गया। संसार भर की धमकियाँ तथा लोभ देकर आपको सब भेद कह देने के लिए राज़ी करने के प्रयत्न किए गए, परन्तु उनके पास मौन के सिवा क्या धरा था? आख़िर १९१६ में आपको लाहौर-षड्यन्त्र के दूसरे अभियोग में शामिल किया गया। अपराध वही था, जिसमें निष्फलता होने पर मृत्यु-दण्ड ही मिला करता है। आप पर विद्रोह का दोष लगाया गया। २४ दिन नाटक हुआ। बेलासिंह जैण्ड आदि कई एक गवाह आपके विरुद्ध पेश हुए। नाटक दुःखान्त था। अभियुक्त को साम्राज्य की बलि-वेदी पर क़ुर्बान करने का निश्चय हुआ। मृत्यु-दण्ड सुनते ही देवता सहम गए। इस देवता को मृत्युदण्ड! राक्षसों-दानवों में भीषण अट्टहास मच गया होगा!

कालकोठरी में बन्द हैं, सिक्ख होने पर टोपी नहीं पहन सकते। कम्बल ही सर पर लपेट लिया है। बदनाम करने के लिए किसी ने शरारत की—कम्बल के किसी एक कोने में अफ़ीम बाँध दी और कहा गया कि आप आत्महत्या करना

चाहते हैं। आपने अत्यन्त शान्ति से उत्तर दिया—"मृत्यु सामने खड़ी है। उसके आलिङ्गन के लिए तैयार हो चुका हूँ। आत्म-हत्या कर मैं मृत्यु-सुन्दरी को कुरूपा नहीं बनाऊँगा। विद्रोह के अपराध में मृत्यु-दण्ड पाने में गर्व अनुभव करता हूँ। फाँसी के तख्ते पर ही वीरतापूर्वक प्राण दूँगा।" पूछताछ करने पर भेद खुल गया। कुछ नम्बरदार क़ैदियों तथा वॉर्डर को कुछ सज़ाएँ हुईं। सभी ने आपकी देशभक्ति तथा निर्भीकता की दाद दी।

सन् १९१६ के दिन थे। भारतवर्ष में कालेपानी और फाँसियों का जोर था। समस्त उत्तर भारत में एकाएक खलबली मच गई थी। अन्दर ही अन्दर एक विराट् गुप्त-विप्लव का आयोजन हो गया था, यह भारत की जनता न जानती थी। नेतागण उन लोगों की ओर ताकने तक का साहस न करते थे। बहुत से लोग समझते थे कि सरकार ने योंही देश को भयभीत करने के लिए ऐसे-ऐसे भीषण अभियोग चला दिए हैं। जो भी हो, उस विराट् आयोजन के निष्फल हो जाने पर भी उसकी सुन्दर-स्मृति बाक़ी है। वह सुन्दर है, इसलिए कि आदर्शवादी युवकों के पवित्र रक्त से लिखी गई है। बाक़ी है इसलिए, कि क़ुर्बानियाँ कभी व्यर्थ नहीं जाया करतीं! इसी वर्ष में (मार्च) चैत्र की १८ तारीख को श्री० बलवन्तसिंह जी की धर्मपत्नी भेंट के लिए गईं। पुस्तकें तथा वस्त्र देकर बताया गया—"कल १७ चैत्र को उन्हें फाँसी दे दी गई।" उनकी धर्मपत्नी कलेजा थाम

कर रह गईं।

श्री० बलवन्त की फाँसी के दिन के समाचार बाद में मिले। आपने प्रातःकाल स्नान किया तथा अपने छः और साथियों सहित (जिन्हें उसी दिन फाँसी मिली थी) भारत-माता को अन्तिम नमस्कार किया। भारत-स्वतन्त्रता का गान गाया। हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर जा खड़े हुए। फिर क्या हुआ? क्या पूछते हो? वही जल्लाद, वही रस्सी। ओह! वही फाँसी और वही प्राण-त्याग।

आज बलवन्त इस संसार में नहीं, उनका नाम शेष है। उनका देश है, उनका विप्लव है। जब कभी उनकी हार्दिक इच्छा पूरी होगी—भारत स्वतन्त्र होगा—तो वे आनन्द और हर्ष से पुलकित हो उठेंगे।

डॉक्टर मथुरासिंह

बावजूद सब से अधिक विपत्तियाँ सहन करने के, सब से अधिक गणना में अपने नर-रत्नों को स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर बलिदान देने के, आज पञ्जाब राजनीतिक क्षेत्र में फिसड्डी (*Politically backward*) प्रान्त कहलाता है। बङ्गाल में श्री० खुदीराम बसु फाँसी पर लटके। उन्हें इतना उठाया गया कि आज उनका नाम उस प्रान्त के कोने-कोने में सुनाई देता है। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में उनका नाम

सुविख्यात है। परन्तु पञ्जाब में कितने रत्न देश के लिए जीवन-दान दे गए, कितने ही हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ गए, कितने ही लड़ते-लड़ते छाती में गोली खाकर शहीद हो गए, परन्तु उन्हें कौन जानता है? और कहीं की तो बात ही क्या कहें, पञ्जाब प्रान्त में ही उन्हें कितने लोग जानते हैं? कोई साधारण वैप्लविक योंही फाँसी पर लटक गया हो और उसे लोग योंही भूल गए हों, सो भी तो नहीं। जिन लोगों ने अथक परिश्रम से, अदम्य उत्साह से तथा अतुल साहस से भारतोत्थान के लिए ऐसे-ऐसे यत्न किए जिन्हें आज सुन-सुन कर अवाक् रह जाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं! यदि ऐसे रत्न किसी और देश में जन्म धारण किए होते तो आज उनकी वॉशिङ्गटन, गेरिबॉल्डी, तथा विलियम वॉलुटिस की भाँति पूजा होती। परन्तु उनका एक अक्षम्य अपराध यह था, कि वे भारत में पैदा हुए थे। इसी का दण्ड यह है, कि आज उनको विस्मृति के अन्धकार में फेंक दिया गया है। न उनके कार्य की चर्चा है, न उनके त्याग की, न उनके बलिदान की ख्याति है, न उनके साहस की। परन्तु ऐसी कृतघ्नता दिखाने वाले देश की उन्नति कैसे होगी?

कट्टर आदर्शवादी डॉक्टर मथुरासिंह जी का स्थान वास्तव में बहुत ऊँचा है। आपका जन्म सन् १८८३ ईसवी में ढुढिचाल नामक गाँव, ज़िला झेलम (पञ्जाब) में हुआ था। आपके पिता का नाम सरदार हरिसिंह था। आपने पहले अपने गाँव में ही

शिक्षा पाई तत्पश्चात् आप चकवाल के हाई स्कूल में पढ़ने लगे। आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। आप सदैव अपने सहपाठियों में सब से अच्छे रहते थे। वहाँ पर मैट्रिक पास करने के बाद आप प्राइवेट तौर पर डॉक्टरी का कार्य सीखने लगे। मेसर्स जगतसिंह एण्ड ब्रदर्स की दुकान रावलपिण्डी में आज भी मौजूद है। वहीं पर आपने यह कार्य सीखना शुरू किया। बड़ी चेष्टा से आप सब कार्य करते। तीन-चार वर्ष में ही आप इस कार्य में प्रवीण हो गए। फिर आपने अपनी दुकान अलग खोल ली। वह दुकान नौशेरा छावनी में थी, आज भी वह चल रही है। आप सभी देशों से चिकित्सा सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ मँगवाया करते थे। विशेष शिक्षा ग्रहण करने के लिए आपने अमेरिका जाने का विचार किया। दुकान का झन्झट अभी तय भी न हो पाया था कि आपकी सुपत्नी तथा सुपुत्री का देहान्त हो गया। परन्तु इससे क्या होता था? आपने उधर प्रस्थान कर दिया। १९१३ में आप चले थे। कुछ अधिक धन पास न होने के कारण आपको शङ्घाई में ही रुक जाना पड़ा। वहीं पर आपने चिकित्सा-कार्य शुरू कर दिया, जिसमें आपको बहुत सफलता हुई। परन्तु आपका इरादा कैनेडा जाने का था; आप कुछ और भारतीयों के साथ उधर गए। परन्तु वहाँ पर बहुत दिक़्क़तें पेश आईं। पहले केवल आप तथा एक और सज्जन को वहाँ उतरने की आज्ञा मिली, दूसरे लोगों को नहीं। इस पर आपने वहाँ उतरना उचित न समझा। परन्तु साथियों के आग्रह करने पर आप उतरे तो सही, परन्तु वहाँ पर

इमिग्रेशन विभाग से अन्य साथियों के लिए झगड़ा शुरू कर दिया। अभियोग तक चला। परन्तु क़ानून और कोर्ट शक्तिशाली लोगों के लिए होते हैं न कि पराधीन देश वालों के लिए। वहाँ से आपको तथा अन्य भारतीय यात्रियों को वापस लौटा दिया गया। बहाना वही, कि कैनाडा में किसी जहाज़ द्वारा सीधे नहीं आए। आप शङ्घाई लौट आए। आकर भारतीय लोगों में अपनी दीन-हीन दशा की मार्मिक कथा सुनाई और श्री० बाबा गुरुदत्त सिंह जी को एक अपना जहाज़ बनाने की सलाह दी, जो सीधा कैनाडा जावे। इसी सलाह पर बाबा जी ने कामागाटा मारू जहाज़ किराए पर ले लिया और उसका नाम गुरु नानक जहाज़ रक्खा। आपको इधर पञ्जाब आना पड़ा। जहाज़ जल्दी से तैयार हो गया, अतः आप निश्चित दिन पर वहाँ न पहुँच सके। सिङ्गापुर से ३५ के लगभग अन्य साथियों सहित दूसरे जहाज़ से चले, ताकि शङ्घाई तक कामगाटा मारू से मिल कर उस पर सवार हों। हॉङ्गकॉङ्ग पहुँचने पर पता चला कि जहाज़ वहाँ से भी चल चुका है। इसलिए आप वहीं पर ठहर गए। अब तक आप भारत-स्वतन्त्रता के लिए जीवन अर्पण करने का निश्चय कर चुके थे।

हॉङ्गकॉङ्ग में आपने प्रचार-कार्य शुरू कर दिया। अमेरिका से ग़दर-पार्टी का "ग़दर" अख़बार आता था। आप भी वहीं पर वैसा ही गुप्त अख़बार छपवाकर लोगों में बाँटने लगे। उधर कामागाटा मारू जहाज़ पर जो-जो अत्याचार होने लगे उन सब

के समाचार आपको मिल रहे थे। जब मालूम हुआ कि कामागाटा मारू जहाज़ को वापस आना ही पड़ेगा तब आपने बड़े ज़ोरों से प्रचार शुरू किया। उस समय कैण्टन में एक सिक्ख पुलिस-इन्स्पेक्टर महाशय इन सभी आन्दोलनों को दबाने की बहुत चेष्टा कर रहे थे। आपने उनसे मिल कर जो बात-चीत की तो वे महाशय भी इनकी सहायता करने लगे। आप किसी कार्यवश शङ्घाई गए। जाते समय सब से कह गए कि अब कामागाटा मारू जहाज़ में सवार होकर भारत को लौट चलना चाहिए। परन्तु उनका यह निश्चय जान, सरकार ने जहाज़ को शङ्घाई में न ठहरने दिया। उसके दो-एक रोज़ बाद वे सभी लोग दूसरे जहाज़ों द्वारा भारत में लौट आए, कामगाटा मारू जहाज़ अभी हुगली में ही खड़ा था कि आप लोग कलकत्ते पहुँच गए। वहाँ पर सरकार ने आपको पञ्जाब के टिकट देकर गाड़ी पर चढ़ा दिया। अमृतसर पहुँचते न पहुँचते बजबज की घटना हो गई। सब समाचार मिला। क्रोध से विह्वल-से हो उठे। प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक उठी। परन्तु डॉक्टर जी ने अपने अन्य साथियों को समझा-बुझा कर कुछ शान्त किया और उन्हें प्रचार-कार्य के लिए उद्यत किया तथा स्वयं सङ्गठन कार्य शुरू कर दिया। उधर इस विराट् चेष्टा में आपको बम् बनाने का कार्य सौंपा गया था, आप उसमें थे भी बड़े निपुण। अमेरिका से सकड़ों मतवाले योद्धा विप्लव-अग्नि भड़काने के लिए आने लगे। झट से सारा प्रबन्ध हो गया। विप्लव-दल का इतना वृहत् सङ्गठन खड़ा हो गया कि

समस्त भारत में एक साथ विद्रोह खड़ा कर देने का विचार उठा और तिथि तक निश्चित हो गई। देखते-देखते सब प्रयत्न, सब आयोजन विफल हो गए। कुपाल की नीचता से सब किया-धरा बीच में ही रह गया। पकड़-धकड़ शुरू हो गई। परन्तु आप पकड़े न गए। एक बार एक सरकारी जासूस द्वारा आप से कहलाया गया कि यदि वे सरकारी गवाह बन जायँ तो उन्हें क्षमा के साथ ही साथ बहुत भारी पुरस्कार भी दिया जायगा। तब आपने उस प्रस्ताव को बिलकुल उपेक्षा से ठुकरा दिया। फिर एक बार एक ख़ुफ़िया ऑफ़िसर आपके पास तक आ पहुँचा। परन्तु वह ख़ूब जानता था कि डॉक्टर साहब बड़े निर्भीक क्रान्तिकारी हैं। अतः उसे उनको अकेले गिरफ़्तार करने का साहस न हुआ। उलटा वह उनसे कहने लगा कि सरकार ने आपके लिए क्षमा प्रदान की है तथा पुरस्कार देने का वचन दिया है, यही कहने के लिए आया हूँ। आप भी ख़ूब समझते थे कि वह उस समय उन्हें पकड़ने का साहस न कर सकने कारण ही ऐसी बातें करता था। इसलिए आपने कुछ रज़ामन्दी दिखाई और उससे पीछा छुड़ा कर बच निकले। इस तरह आपने समझा कि अब देश में बचकर रहना एकदम असम्भव है। इसलिए आपने काबुल की ओर प्रस्थान कर दिया। वज़ीराबाद स्टेशन पर पुलिस ने पकड़ लिया, परन्तु वहाँ पर आपने कुछ घूस दे दी और बच निकले। आप कोहाट की ओर रवाना हो गए। पुलिस को भी समाचार मिल गया। कोहाट स्टेशन पर पुलिस का बड़ा भारी दस्ता पहरे

पर लगा दिया गया। उसी ट्रेन में बहुत-सी पुलिस भी चढ़ा दी गई। मार्ग में एकाएक सब डिब्बों की तलाशी भी ले डाली गई। परन्तु आप न पकड़े जा सके। कुछ दिन वहीं पर ठहरने के पश्चात् आप काबुल जा पहुँचे। वहाँ शीघ्र ही आप बहुत प्रसिद्ध हो गए। आपकी योग्यता देख कर आपको काबुल का चीफ़ मेडीकल ऑफ़िसर नियुक्त कर दिया गया।

भारत के भीतर राज्यक्रान्ति की सब चेष्टा विफल हो चुकी थी तो क्या, बाहर तो अभी बड़े ज़ोरों से प्रयत्न हो ही रहा था। काबुल में उस समय "भारत की अस्थायी सरकार" (*Provisional Government of India*) बनी हुई थी, जो जर्मनी कमेटी से सहयोग करती हुई भारत-स्वतन्त्रता के प्रयत्न में लगी हुई थी! उस समय अरब, मिश्र, मैसोपोटेमिया और ईरान आदि सभी प्रदेशों में भारतीय वैप्लविक—जिनमें हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख भी सम्मिलित थे—भारत में क्रान्ति की चेष्टा कर रहे थे। उसी सब प्रयास में डॉक्टर साहब फिर से जुट गए। उसी के सम्बन्ध में आपको जर्मनी जाना पड़ा। कुछ दिनों बाद आप फिर लौट आए। ईरान तक तो आपको बहुत बार जाना पड़ा। फिर निश्चय हुआ कि अस्थाई सरकार की ओर से एक स्वर्ण-पत्र रूस के ज़ार के पास इस आशय का भेजा जाय कि वह भारत-क्रान्ति की सहायता करे। अब की बड़ी शान से प्रस्थान किया गया। कई सेवक तथा सामान से लदे हुए कई ऊँट आपके साथ थे। परन्तु उस समय कोई नीच

पुरुष आपकी यात्रा का सब समाचार अङ्गरेज़-सरकार को दे रहा था; यह वह नहीं जानते थे। ताशक़न्द नगर में आपको गिरफ़्तार कर लिया गया। ईरान में लाकर शिनाख्त की गई। अभियोग चला। बहुत लोगों ने यत्न किया कि आपको भारत-सरकार के सुपुर्द न किया जाय, परन्तु अब तक अन्य सभी प्रयत्नों में जो विफलता हुई थी, तो अब क्यों सफलता होती?

लाहौर में लाए गए। इधर उन दिनों में ओडायरशाही का ज़ोर था। कुछ दिन न्याय-नाटक हुआ। मृत्यु-दण्ड सुनाया गया। आपने अत्यन्त आनन्द प्रदर्शित करते हुए सुना। आपके छोटे भैया मुलाक़ात के लिए गए। आपने पूछा—"क्यों भाई, मेरे मरने की तुम्हें चिन्ता तो नहीं?" बालक ने रो दिया। आपने क्रोध-मिश्रित उत्साह-वर्द्धक स्वर से कहा—"वाह जी! यह समय आनन्द मनाने का है। क्या सिक्ख लोग भी देश के लिए मरते समय रोया करते हैं? मुझे तो अत्यन्त आनन्द है कि मैं भारतीय विप्लव को सफल बनाने के लिए, जो मुझसे हो सका, कर चुका हूँ। मैं बड़ी शान्ति से फाँसी के तख़्ते पर प्राण-त्याग करूँगा।" इस तरह आपने उसका उत्साह बढ़ाया।

फिर? फिर २७ मार्च, १९१७ का दिन आ पहुँचा। उस दिन फिर वही नाटक प्रारम्भ हुआ। उस दिन के नाटक में एक ही दृश्य हुआ करता है; और वह भी कुछेक मिनट का। ये पगले लोग न जाने कहाँ से आगए, जिन्हें न मृत्यु का भय था, न

जीने को चाह; कार्यक्षेत्र में हँसे, युद्ध-क्षेत्र में हँसे, फाँसी के तख्ते पर भी मुस्करा दिए। उनकी महिमा अपरम्पार है।

हों फ़रिश्ते भी फ़िदा जिन पर, यह वह इन्सान हैं!

श्री० बन्तासिंह

इस नए-गुज़रे ज़माने में भी, जबकि भारतवासियों का अधः-पतन चरम-सीमा को पहुँचा जा रहा है, कुछेक दुःसाहसी वीर ऐसे पैदा हुए, जिन्होंने उस सुन्दर अतीत की मधुर-स्मृति को पुनर्जीवित कर दिया। वे लोग कुछ ऐसे निर्मम और निर्भय होकर जीवन बिता गए कि फिर से आशा होने लगी है, कि इस कायरता के युग में भी ऐसे व्यक्ति जन्म धारण कर सकते हैं, जो देश के लिए अपना अस्तित्व तक मिटा सकते हैं। इसीसे तो इस पतित देश के पुनरुत्थान की आशा बँधती है! ऐसे वीर अधिकतर वैप्लविक समाज या क्रान्तिकारी दलों में ही मिलते हैं।

बङ्गाल के श्री० यतीन्द्रनाथ मुकर्जी और श्री० नलिनी बागची संयुक्त प्रान्त के श्री० गेंदालाल दीक्षित, पञ्जाब के करतार सिंह, तथा बब्बर अकाली-शहीद उन्हीं लोगों में गिने जाने लायक़ हैं। श्री० बन्तासिंह जी सगवाल भी ऐसे ही क्रान्तिकारी थे। पञ्जाब पुलिस आपका नाम सुनते ही भय से काँप उठती थी। जिस तरह श्री० यतीन्द्रनाथ मुकर्जी को *Terror of Bengal Police* कहा जाता था, ठीक वैसे ही आपको *Terror of Punjab Police* समझा जाता था।

आपका जन्म १८९० ईसवी में सगवाल नामक गाँव, ज़िला जालन्धर में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री० बूटासिंह था। पाँच वर्ष की आयु में आप स्कूल में दाख़िल किए गए। पढ़ने में बहुत चतुर थे। सातवीं-आठवीं दोनों श्रेणियाँ एक ही वर्ष में पास कर ली थीं। जब आप जालन्धर के डी० ए० वी० हाई स्कूल में पढ़ते थे तब, यानी १९०४-५ में काँगड़ा में भारी भूकम्प हुआ था, जिससे बहुत हानि हुई थी। आप भी अपने सहपाठियों का एक गुट लेकर धर्मशाला में पीड़ितों की सहायता के लिए गए थे। आपकी कार्य-कुशलता और तत्परता देख कर सभी आप पर मुग्ध हो गए थे।

उन दिनों में ही आपने अपना एक जत्था सङ्गठित कर लिया था, जिसका नेतृत्व आपके ही हाथ में था। उसका उद्देश्य दीन-दुखियों की सहायता करना था। इस दल की सहायता से आप लोक-सेवा का बहुत कार्य किया करते थे। स्कूल की शिक्षा समाप्त कर चुकने के बाद आपने विदेश के लिये प्रस्थान किया। पहले-पहल आप चीन गए और फिर वहाँ से अमेरिका चले गए।

अमेरिका-वास का आप पर बहुत प्रभाव हुआ। पद-पद पर अपनी गुलामी का अनुभव होता गया। अस्तु, आपने भारत लौट कर देश को स्वतन्त्र करने का इरादा किया।

आपने स्वदेश लौट कर अपने गाँव में एक स्कूल खोला और एक पञ्चायत बनाई। सभी लोग आपका बहुत मान करते थे। इससे आपको ही पञ्चायत का सञ्चालक भी बना दिया गया।

गाँव के सब लोग उस पञ्चायत द्वारा किए गए निर्णयों को सहर्ष शिरोधार्य करते थे। एक बार तो यहाँ तक नौबत आ गई कि आपने चीफ़-कोर्ट के फ़ैसले तक को बदल डाला और दोनों पक्ष के लोगों ने आपके निर्णय के आगे सहर्ष सर झुका दिया। बात साधारण न थी, अफ़सरों के कानों तक पहुँची। बहुत पेच-ताव खाए, बहुत दाँत कटकटाए। उधर आपका घर अमेरिका से लौटे हुए हिन्दुस्तानियों का केन्द्र भी बना हुआ था। यह रिपोर्ट भी पहुँची। अच्छा अवसर मिला। एक दिन अचानक आपके घर पर पुलिस ने छापा मारा। परन्तु आप घर में नहीं थे। आपके बहुत से काग़ज़ात पुलिस उठा ले गई। उनमें आपके लिखे हुए कई-एक ट्रैक्ट भी थे। उन्हें देखकर आप पर वॉरण्ट निकाला गया। परन्तु आप पकड़े न जा सके। बाद में आपको गिरफ़्तार करवाने के लिए पुरस्कार भी घोषित किया गया था।

एक दिन आप अपने साथी श्री० सज्जनसिंह फ़ीरोज़पुरी के साथ लाहौर के अनारकली बाज़ार में होने वाली एक गुप्त मीटिंग में सम्मिलित होने के लिए जा रहे थे। अनारकली में जाते-जाते एक सब-इन्स्पेक्टर से मुठभेड़ हो गई। वह आपकी तलाशी लेने का आग्रह करने लगा। आपने बड़े सहज भाव से उसे समझाने की चेष्टा की कि शरीफ़ आदमी इस तरह व्यवहार नहीं किया करते। आप जाइए। हमारी तलाशी लेने का कोई कारण नहीं है। परन्तु वे सब इन्स्पेक्टर साहब भला कब

पीछा छोड़ने वाले थे। जब उसने एक न सुनी, तो आपने कहा—"अच्छा तो ले, तलाशी ही ले ले।" वह तलाशी लेने के लिए जो आगे बढ़ा, तो आपने धीरे से अपना पिस्तौल निकाल, यह कहते हुए कि "तलाशी न लेते तो अच्छा था, हमारे पास तो यही है, सो ले" उस पर फ़ायर कर दिया। सब-इन्स्पेक्टर तो अपनी धुन में मस्त धराशायी हो गया, परन्तु आप भाग निकले। अभी भागे ही थे, कि आपके साथी के पाँव में ठोकर लग गई और वह गिर गया। आपने पिस्तौल के ज़ोर से पुलिस और जन-समूह को पीछे रोक रक्खा और उसे उठाकर खड़ा कर दिया। परन्तु चोट अधिक लगने के कारण वह भाग न सका, इसलिए श्री० बन्तासिंह जी भाग निकले। यह दिन-दोपहर का घटना है।

आप बचकर निकल गए और मियाँमीर स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ पर पहले ही से पुलिस प्रतीक्षा में थी। परन्तु आप किसी प्रकार ट्रेन पर सवार हो ही गए। उसी गाड़ी में, उसी डिब्बे में, बहुत से पुलिस के सिपाही सवार हो गए। आपने भो ताड़ लिया। परन्तु अब क्या हो सकता था। अटारी स्टेशन पर जब ट्रेन ठहरने ही वाली थी कि आप ट्रेन से कूद गए। पुलिस वाले हाथ मलते ही रह गए। वहाँ से आप (दोआबे) जालन्धर पहुँचे।

उस समय ग़दर-पार्टी के तत्कालीन प्रमुख कार्यकर्त्ता भाई प्यार सिंह को नङ्गल-कलाँ, ज़िला होशियारपुर के ज़ैलदार

चन्दासिंह ने पकड़वा दिया था। आपने मिलकर फ़ैसला किया कि अब इन देशद्रोहियों को दण्ड देना चाहिए। आपने भाई बूटासिंह और भाई ज़िवन्दसिंह को साथ लिया और चन्दासिंह को उसके घर में जाकर मार डाला। तत्पश्चात् आप अपने कार्य में जुटे रहे। उसी सिलसिले में आपने अमृतसर ज़िले में एक पुल भी डाईनामेट से उड़ा दिया था।

उसके बाद भो पुलिस से कई बार मुठभेड़ हुई, परन्तु आपका कुछ ऐसा रोब छा गया था कि आपको देखते ही पुलिस वाले अपना-अपना सिर छुपाने की चिन्ता में नौ-दो ग्यारह हो जाते। एक बार पुलिस के घुड़सवारों ने आपका पीछा किया। आप साठ मील तक उनके आगे-आगे भागते चले गए। पाठकों को यह बात कुछ अस्वाभाविक मालूम होगी, परन्तु उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि ये अमेरिका की ग़दर-पार्टी के कार्यकर्त्ता बड़े विचित्र थे। पञ्जाबी जाटों के शरीर बहुत सुन्दर तथा सुदृढ़ होते हैं और फिर ये लोग तो अमेरिका से ख़ास तौर पर दौड़ने का अभ्यास करके आए थे। उनमें भी श्री० बन्तासिंह बड़े सुदृढ़ तथा शक्तिशाली थे। बङ्गाल के प्रसिद्ध वैप्लविक श्री० नलिनी बागची भी गोहाटी में जब पुलिस से दो-दो हाथ कर के बच गए थे, तो वे भी एक बार ८० मील तक चले थे। दुस्साहसी लोगों के लिए कुछ भी असम्भव नहीं। उस दिन आपके पाँव छलनी हो गए, तबीयत ख़राब हो गई, अतः आप अपने घर चले गए और बहुत

दिनों तक वहीं विश्राम किया।

आपको कुछ ऐसा विश्वास-सा हो गया था कि वे किसी अपने सम्बन्धी के विश्वासघात से ही पकड़े जायँगे परन्तु स्वास्थ्य के अधिक बिगड़ जाने के कारण आप कुछ कर न सके! लाहौर-षड्यन्त्र का मुख्य केस उन दिनों चल रहा था। दूसरे बड़े भारी केस के लिए चारों ओर धर-पकड़ हो रही थी। दल का सब प्रबन्ध तहस-नहस हो चुका था। ऐसी अवस्था में आत्म-निर्भरता के अतिरिक्त और कोई सहारा शेष न था। इसलिए आप को रुग्णावस्था में अपने ही घर जाना पड़ा। बहुत दिनों तक वहीं सुरक्षित रहे। परन्तु बाद में एक सम्बन्धी उन्हें आग्रह करके अपने घर ले गया, ताकि उनकी चिकित्सा कुछ और तनदेही से की जा सके। वे उसका आग्रह टाल न सके। वहाँ पर जाकर टिकने के बाद शीघ्र ही उसी रिश्तेदार ने पुलिस को बुला लिया। होशियारपुर के सुपरिन्टेण्डेण्ट बड़ी भारी संख्या में सशस्त्र सैनिकों को लेकर वहाँ पहुँचे।

पुलिस ने चारों ओर से घेर लिया। उस छोटी कोठरी का द्वार खोलते ही सामने पुलिस खड़ी देखकर आप खिलखिला कर हँस पड़े और अपने सम्बन्धी से कहने लगे—"भाई! पुलिस को बुलाना था, तो मुझे एकदम निशस्त्र क्यों कर दिया था? पिस्तौल-रिवॉल्वर नहीं तो एक लाठी या डण्डा ही रहने देते। एक वीर सैनिक की भाँति लड़ता-लड़ता प्राण तो दे सकता।"

इस पर पुलिस-अध्यक्ष ने कहा—"वाह जनाब! बड़े वीर

बने फिरते हो। हम लोग क्या सभी कायर और बुज़दिल ही हैं?"

आपने मुस्करा कर कहा—"बहुत .खूब! इस समय मुझे निशस्त्र एक कोठरी में बन्द देख कर आप लोग गिरफ़्तार करने के लिए आगे बढ़ने का साहस कर रहे हैं। ज़रा बाहर निकल जाने दो तो फिर देखूँ कौन पकड़ सकता है?"

उस वीर सैनिक की यह इच्छा भी, कि सैनिक की भाँति लड़ता हुआ प्राण दे, पूर्ण न हुई। आप गिरफ़्तार करके होशियारपुर लाए गए। वहाँ डिप्टी-कमिश्नर की अदालत में पेश किए गए। कोई एक घण्टा तक डिप्टी-कमिश्नर से बातचीत होती रही। वह आपकी योग्यता और वीरता तथा धीरता देखकर मुग्ध-सा हो गया। इधर आपकी गिरफ़्तारी की खबर दोआबे भर में आग की तरह फैल गई। लोग सैकड़ों की संख्या में आपके दर्शनों के लिए जमा होने लगे। कचहरी का हाता खचाखच भर गया था। आप जब बाहर निकले तो लोग दर्शनों के लिए टूट पड़े। ऐसी दशा में अपने उन भाइयों से कुछ कहे बिना आगे न जा सके। आपने डिप्टी-कमिश्नर से कुछ कहने की आज्ञा माँगी। वे इन्कार न कर सके। आपने उस उमड़ते हुए जन-समुद्र को शान्त होने के लिए कह कर एक छोटा-सा भाषण दिया और कहा:

"प्यारे भाइयो! आज हमें इस तरह बेड़ियों और ज़ञ्जीरों से कसा हुआ देखकर आप लोग निराश न हों। हमारी निश्चित मृत्यु सामने देख कर आप लोग घबराएँ नहीं। हमें पूर्ण विश्वास

है कि हमारे बलिदान व्यर्थ न जावेंगे। वह दिन शीघ्र आ रहा है, जबकि भारत पूर्णतया स्वतन्त्र हो जाएगा और अकड़बाज़ गोरे लोग आपके पाँव पर गिरेंगे × × × आप सब लोगों को स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर प्राण देने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।"

आपको वहाँ से लाहौर ले आए। श्री० बलवन्तसिंह जी के साथ ही आप पर भी अभियोग चला। यों तो सदैव ग़ुलाम देशों में न्याय-नाटक हुआ करता है, पर उन दिनों पञ्जाब में ओडायरशाही की तूती बोलती थी। ग़ज़ब का न्याय था, कोई अपील भी न हो सकती थी। कुछ ही दिनों में सब कुछ हो चुका। आपको मृत्यु-दण्ड सुनाया गया। आपने प्रसन्नतापूर्वक कहा—"हे परमात्मा! तुझे कोटिशः धन्यवाद है, जो तूने मुझे देश-सेवा में जीवन बलिदान करने का सुअवसर प्रदान किया है।" फाँसी का हुक्म सुनकर आपको असीम आनन्द हुआ, और उस दिन से फाँसी लगने के दिन तक आपका वज़न ११ पाउण्ड बढ़ गया था!

आख़िर एक दिन आपको प्रातःकाल उसी फाँसी के तख़्ते पर ला खड़ा किया गया। आप उस समय सदा की तरह प्रसन्न-चित्त थे। तख़्ता खिंचा। रस्सी में गला फँसाया ही जा चुका था। एक हलके झटके से ही प्राण निकल गए और इस तरह पञ्जाब का एक और नर-रत्न भारत-स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर प्राणोत्सर्ग कर गया!!

रङ्गासिंह

सन् १९१४-१५ में भारत की स्वाधीनता के व्यर्थ-प्रयास में लाहौर-सेन्ट्रल जेल की बलि-वेदी पर अपने नश्वर शरीर की आहुति देने वाले सैकड़ों नर-रत्नों में से आप भी एक थे। जालन्धर ज़िले के 'खुर्दपुर' नामक गाँव में श्री० गुरुदत्तसिंह जी के घर सन् १८८५ के लगभग आपका जन्म हुआ था। कुछ दिन स्कूल में विद्याध्ययन करने के बाद आपने सैनिक शिक्षा पाने की इच्छा से फ़ौज में नौकरी कर ली। ३० नम्बर के रिसाले में २३ वर्ष की आयु तक नौकरी करने के बाद, सन् १९०८ में आप अमेरिका चले गए।

इसके बाद वही पुरानी कथा है। ग़दर-पार्टी बनी, अख़बार निकला, प्रचार हुआ और आपके विचारों ने पलटा खाया। सन् १९१४ में, जबकि बहुत से सिक्ख अमेरिका से भारत को वापस आ रहे थे, तो आप भी युद्ध में अङ्गरेज़ों से दो-दो हाथ करने की लालसा से देश को वापस चले आए।

६ वर्ष तक बाहर रहने के बाद, २१ दिसम्बर, सन् १९१४ को आपने फिर भारत की भूमि पर पैर रक्खा और लगभग एक मास तक मकान पर ठहर कर घर का सारा प्रबन्ध आदि ठीक किया और फिर गाँव-गाँव जाकर ग़दर का प्रचार-कार्य करने लगे।

कहते हैं, कि जब १९ फ़रवरी के विप्लव की बात खुल गई और बहुत से नेता गिरफ़्तार कर लाहौर-सेन्ट्रल जेल में बन्द कर दिए गए थे, तो जेल पर हमला कर उन्हें छुड़ाने के लिए

कपूरथला-राज्य की मैगज़ीन लूट कर अस्त्र-शस्त्र लाने की बात निश्चय की गई थी। उस समय अगुआ लोगों में रङ्गासिंह भी थे। बाद को पर्याप्त शक्ति के न होने के कारण निश्चय किया गया कि पहले बाला के पुल पर तैनात किए गए पुलिस के आदमियों को मार कर उनकी बन्दूक़ें आदि छीन ली जायँ और फिर उनको लेकर मैगज़ीन पर हमला किया जाय। अस्तु,

एकत्रित मनुष्यों में से कुछ को इस काम के लिए चुना गया, जिनमें हमारे नायक भी थे। जब सिपाहियों को चौकन्ना देखकर उस समय उन पर हमला स्थगित कर दिया गया तो आप बहुत नाराज़ हुए। आपने कहा—"यदि इसी प्रकार अपनी शक्ति को कम समझकर हम हर एक काम को छोड़ते रहेंगे, तो कुछ भी न हो सकेगा। हमें तो इन्हीं थोड़े-बहुत आदमियों को लेकर सामना करना है।" बाद में इसी पुल पर हमला कर ये लोग चार आदमियों को मार कर उनकी बन्दूक़ें आदि छीन ले गए थे।

अन्त में जब २६ जून, सन् १९१५ को आप एक शरबत वाले की दूकान पर सो रहे थे तो पुलिस ने भेद मिल जाने पर अचानक हमला कर दिया। गिरफ़्तार हो जाने पर सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र करने के अपराध में अभियोग चला और अदालत से फाँसी की सज़ा मिली। इस प्रकार लाहौर-सेन्ट्रल जेल के वियोगान्त नाटक के एक और दृश्य के बाद उस पर सदा के लिए पर्दा पड़ गया।

श्री० वीरसिंह

आपका जन्म बहोवाल, ज़िला होशियारपुर में हुआ था। आप के पिता का नाम सरदार बूटासिंह था। आप सन् १९०६ में कैनाडा चले गए थे।

एक तो स्वाधीन देश, फिर आन्दोलन की तेज़ी अस्तु, आप भी इस लहर से ख़ाली न रहे। विचार-प्रवाह तो चल ही चुका था। इन्हीं दिनों कामागाटा मारू की घटना, डेपूटेशन की सफ-लता तथा युद्ध के छिड़ जाने के कारण चारों ओर से ग़दर की ही आवाज़ सुनाई देने लगी। गाढ़ी कमाई के रुपए को ग़दर के काम में देकर लोगों ने भारत की ओर आना प्रारम्भ कर दिया। उस समय शायद ही कोई ऐसा बचा हो जिसने इस कार्य में भाग न लिया हो। प्रायः सभी जगह यही सुनने में आता था कि चलो, देश चल कर आज़ादी के लिए युद्ध करें। अस्तु, इन्हीं सब बातों से प्रभावित होकर आप भी भारत वापस आए। और इधर-उधर घूम कर ग़दर का प्रचार शुरू कर दिया।

६ जून, सन् १९१५ का दिन था। आप चिट्टी गाँव में एक कुएँ पर स्नान कर रहे थे कि पुलिस ने आ घेरा। गिरफ़्तार कर आप लाहौर लाए गए और दूसरे केस में १०० आदमियों के साथ आप पर अभियोग चलाया गया। आप पर मैगज़ीन पर हमला करने तथा डाके डालने का अपराध लगाकर मौत की सज़ा दी गई।

उक्त १०० अभियुक्तों में से आपके अतिरिक्त पाँच को फाँसी और ४२ को आजन्म कालेपानी का दण्ड दिया गया था; साथ ही उनकी सारी सम्पत्ति भी ज़ब्त कर ली गई। भारत के स्वतन्त्रता इतिहास में लाहौर-सेन्ट्रल जेल का भी एक विशेष स्थान रहेगा।

श्री० उत्तमसिंह

आपने ही हाथों विप्लव-यज्ञ रच कर अन्त में उस पर अपनी ही आहुति देने वाले अनेक मस्त पागलों में से उत्तमसिंह भी एक थे। लुधियाना ज़िले के हंस नामक गाँव में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम श्री० जीतसिंह था। आपका दूसरा नाम श्री० राघोसिंह भी था।

कहाँ और कितनी शिक्षा पाने के बाद, किस आयु तक देश में रहकर, आप कब अमेरिका चले गए थे, इन सभी बातों का अनुसन्धान अभी तक किया ही न गया। हाँ, इतना अवश्य पता चला है, कि अमेरिका में ग़दर-पार्टी के आप एक अच्छे कार्यकर्त्ता थे, और उसी पार्टी के निश्चयानुसार, सन् १९१४ के दिसम्बर मास में अपने कुछ और साथियों के साथ आप भारत में ग़दर का प्रचार करने के उद्देश्य से वापस आ गए थे। आते समय भी मार्ग में सेनाओं के अन्दर तथा अन्य भारतीयों में ग़दर का प्रचार करते आए थे।

स्मरणीय करतारसिंह से आपकी पहले ही से जान-पहचान थी। भारत में आकर गन्धासिंह, बूटासिंह, अर्जुनसिंह, पिङ्गले

से भी आप मिले और बहुत जोरों से कार्य आरम्भ कर दिया।

इन पागलों के पागलपन में भी एक स्फूर्ति है। उसमें भी एक नवीनता की झलक है। अस्तु, इसी नवीन उत्साह से प्रेरित होकर उस दिन जब १९ फ़रवरी, सन् १९१५ को केवल ५० आदमियों को साथ लेकर तरुण करतार ने ब्रिटिश-भारत की सब से मज़बूत छावनी फ़ीरोज़पुर पर हमला करने का साहस किया था, तो आप भी उनके साथ थे। परिस्थिति प्रतिकूल हो जाने से उन्हें उस दिन सफलता भले ही न मिली हो, किन्तु उनका साहस, उनका उत्साह, उनकी लगन और आत्म-विश्वास आदि का अनुमान इस बात से पूरी तौर पर किया जा सकता है।

१९ फ़रवरी के विराट् आयोजन के विफल हो जाने पर चारों ओर धड़-पकड़ शुरू हो गई। उत्तमसिंह के नाम भी वॉरण्ट जारी किया गया, किन्तु उस समय आप पुलिस के हाथ न आ सके। अपने प्रगाढ़ परिश्रम से बनाए हुए भवन को इस प्रकार नष्ट होते देख, वे हताश न हुए। उस समय कुछ-एक को छोड़कर, प्रायः सभी नेता गिरफ़्तार हो चुके थे, अतः आपने उन्हें जेल से निकालने की इच्छा से नए सिरे से अस्त्र-शस्त्र संग्रह करना आरम्भ कर दिया। पहले कपूरथला-राज्य के मैगज़ीन को लूटने का विचार था, किन्तु बाद में बाला के पुल पर तैनात ७५० कारतूस समेत १५ सिपाहियों की पन्द्रहों रायफ़लें, केवल ७-८ पिस्तौलधारी विप्लवियों ने छीन ली थीं।

इस कार्य के सङ्गठन में भी उत्तमसिंह का ही अधिक हाथ था। आप बम् बनाना भी जानते थे और एक बार और कुछ न मिलने पर आपने पीतल के लोटों से ही बम् बनाने का काम लिया था।

अभी जेल पर हमला करने की आयोजना हो ही रही थी कि १९ सितम्बर, सन् १९१५ को, जब आप एक और साथी के साथ फ़रीदपुर-राज्य के माना-बघवाना नामक गाँव के पास एक साधू की कुटिया में ठहरे थे, गिरफ़्तार कर लिए गए। उस समय आपने कहा—"मुझे दुख है तो केवल इस बात का, कि मेरे हाथ में कोई रिवॉल्वर या पिस्तौल आदि न थी।" पकड़े जाने पर दोनों ने एक साथ ही राष्ट्रीय गीत गाने शुरू कर दिए। लाहौर के तीसरे षड्यन्त्र में अदालत से आपको फाँसी की सजा मिली और कुछ दिनों के बाद उस विराट् यज्ञ की एक और आहुति समाप्त हो गई।

डॉक्टर अरुड़सिंह

देश-प्रेम में मतवाले होकर जलती हुई शमा की पहली ही लपट पर एक मस्त परवाने की भाँति वे अपना सब कुछ स्वाहा कर गए। उनके लिए तो—

ज़िन्दगी नाक़िस थी आख़िर, कर लिया मद्फ़न पसन्द।
सुना था यह, राहते-कामिल, इसी मञ्ज़िल में है!

डॉक्टर साहब का जन्म जालन्धर जिले के सगवाल नामक गाँव में हुआ था। शहीद भाई बन्तासिंह भी इसी गाँव के थे और ये दोनों एक ही साथ काम किया करते थे। इन में खोज-खबर करने का एक विशेष गुण था। प्रायः थाने में जाकर वहाँ के भी भेद ले आया करते थे। चालीस कोस चलने पर भी आप थकते न थे। इनकी काली, भरी हुई, दाढ़ी तथा मोटी आँखें देखकर प्रायः सभी लोग डर जाया करते थे। किन्तु आप स्वभाव के बड़े सरल तथा भावुक थे। आपका रहन-सहन बिलकुल सादा था। आप पञ्जाब से बाहर रहकर काम करना पसन्द नहीं करते थे। यहाँ तक की जिन दिनों पुलिस बुरी तरह आपकी तलाश कर रही थी तब भी आप पञ्जाब में ही गाँव-गाँव घूम कर प्रचार करते रहे और कई बार पुलिस के हाथ आकर भी निकल गए। आप नित्य ही प्रातःकाल प्रार्थना किया करते थे कि हे प्रभु! मेरी मृत्यु गोली लग कर या फाँसी पर लटक कर एक वीर की भाँति हो।

एक अमेरिकन से आपका बहुत घनिष्ट सम्बन्ध था। उन्हें आप अपना गुरु कहा करते थे। एक बार पता लगा कि वे लाहौर के सेन्ट्रल जेल में गिरफ्तार कर रक्खे गए हैं। बस, पुलिस की कड़ी निगाह होते हुए भी, आप वहाँ जा पहुँचे और जेल के अन्दर जाकर उनसे मिले और सारा भेद लेकर वापस चले आए। एक ओर तो स्थान-स्थान पर आपके फ़ोटो लगे हैं और गिरफ़्तारी पर इनाम बढ़ा जा रहा है, उधर दूसरी

ओर आप सरकार से जेल-जैसी जगह पर जाकर वहीं का सारा भेद ले रहे हैं !

जब लाहौर-जेल में आपका आना-जाना काफ़ी बढ़ चुका था तो किसी एक भेदिए ने पुलिस को इस बात का पता दे दिया। एक दिन जेल के दरवाज़े पर खड़े थे कि एक पुलिस अफ़सर ने सवाल किया—

"तुम कौन हो ?"

"मैं अरुड़सिंह हूँ।"

"कौन अरुड़सिंह ?"

"जिसको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते तुम थक गए हो !"

अफ़सर को विश्वास न हुआ और वह घूम कर चल दिया। उस समय आपके दिल में न जाने क्या आई कि फिर उसे बुलाकर स्वयं अपने को गिरफ़्तार करवा दिया।

अभियोग चलने पर आपने सब बातें स्वीकार कर लीं। पुलिस-अफ़सर सुक्खासिंह ने जब आप से कोई चुभने वाली बात कही तब आपने डपट कर कहा—"कायर ! तेरे जैसों को मैं बटेर समझता रहा हूँ। यदि चाहता तो एक पल में गर्दन मरोड़ कर छुटकारा पा जाता, किन्तु कायरों के ख़ून से हाथ रँगना मैं पाप समझता हूँ।" एक और अवसर पर थानेदार के यह पूछने पर कि क्या तुम मुझे और भी कभी मिले थे, आपने उत्तर दिया—"मिलना तो क्या, तुम्हारे सारे कामों को रिपोर्ट मेरी डायरी में दर्ज है।" अन्त में अदालत से आप को

फाँसी की सज़ा मिली। जेल में आप और साथियों को कहानियाँ सुनाया करते थे और फाँसी के दिन तक काफ़ी मोटे हो गए थे।

बेफ़िक्री तथा मस्तानेपन के तो आप साक्षात् अवतार थे। जिस मौत का नाम सुन कर लोग काँप उठते हैं उसी को सामने देखकर भी आपके मस्तानेपन में अन्तर न आया। जिस दिन प्रातःकाल आपको फाँसी लगनी थी उस दिन आप एक गहरी नींद में सो रहे थे। अफ़सर ने आकर जगाया। कहा-चलो, तुम्हें फाँसी दी जायगी—आपने खड़े होकर ऊँचे स्वर से "बन्देमातरम्" की ध्वनि की और हँसते हुए फाँसी के तख्ते की ओर चल दिए। इसके बाद वहीं फाँसी का तख्ता, वही जल्लाद, वही रस्सी और वही अन्तिम झटका, और बस × × ×

बाबू हरिनामसिंह

रवि बाबू ने गुरु गोविन्दसिंह के समय के सिक्खों पर एक कविता लिखी थी। उसमें आपने कहा था—"जिन लोगों ने किसी का क़र्ज़ नहीं उठा रक्खा और मृत्यु जिनके चरणों की दासी है, ऐसे निर्भय और निर्मम सिक्ख उठे हैं।"

इन्हीं निर्भय और निर्मम नर-रत्नों में से हमारे नायक हरिनामसिंह भी हैं। आपका जन्म ज़िला होशियारपुर के साहरी नामक गाँव में हुआ था। पिता का नाम श्री० लाभसिंह था। पढ़ने-लिखने में आप बहुत चतुर थे, किन्तु हाई क्लास में

पहुँचते ही एकदम स्कूल छोड़ कर सेना में जा भरती हुए। वहाँ पर आपका अलग जत्था था, जिसमें शब्द-कीर्त्तन हुआ करता था। साधारणतया आप कहा करते थे—"हमारा भी क्या जीवन है? हम इतने पतित हो गए हैं कि दस या ग्यारह रुपए के लिए मारे-मारे फिरते हैं और अपनी तथा दूसरी गुलाम जातियों की ज़ञ्जीरें जकड़ने में सहायता करते हैं। इस नौकरी से तो भूखों मरना अच्छा है। और इस जीवन से तो मृत्यु अच्छी है। इत्यादि।" आपके एक-दो मित्र हँस कर पूछते—"क्यों जी अगर आपका ऐसा मनोभाव है तो नौकरी छोड़ क्यों नहीं देते?" तो आप मुस्करा कर-उत्तर देते—"जानते तो हो कि रुपए के लिए नौकरी नहीं करता हूँ। घर में सम्पत्ति है, वहीं रह कर आराम से गुज़र सकती है। परन्तु × × ×"

भला ऐसे विचारों का युवक कब तक नौकरी कर सकता था। डेढ़ वर्ष के बाद नौकरी छोड़ कर घर चले आए। सेना में श्री० बलवन्तसिंह जी से आपका बहुत स्नेह था। विचार भी एक ही जैसे थे और नौकरी भी एक ही साथ छोड़ी।

कुछ दिन घर रहने के बाद आप बर्मा पहुँचे और फिर वहाँ से हाङ्काङ्ग जाकर ट्राम-कम्पनो में नौकर हो गए। वहाँ पर बहुत से भारतीय, जो कैनाडा और अमेरिका जाने के लिए घर से आते थे, उन्हें इमिग्रशन विभाग वाले निराश कर घर लौटा देते। उन बेचारों के पास खाने तक को कुछ न बचता था। उस समय हरिनामसिंह जी अपने पास से सहायता देकर उनका

ढाढ़स बँधाते थे।

धीरे-धीरे उन्हें पता चला कि अमेरिका में लोग बड़े मजे में रहते हैं और वहाँ के वायु मण्डल में रह कर साधारण से साधारण भारतीय भी भारत को स्वतन्त्र करवाने की चिन्ता करने लगता है। अस्तु, स्वतन्त्रता-पाठ सीखने का उपयुक्त स्थान समझ कर आपने हाँङ्गकाँङ्ग-स्थित भारतीयों को अमेरिका जाने के लिए प्रोत्साहित करना शुरू कर दिया। आवश्यकता पड़ने पर आप उनकी सहायता भी कर देते थे।

अन्त में १ली दिसम्बर, सन् १९०७ को, जबकि आपकी आयु बीस वर्ष से कम ही थी, आपने भी अमेरिका के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर एक वर्ष तक विक्टोरिया नगर में रहने के बाद, भारतवर्ष में स्कूल आदि शिक्षा-कार्य में व्यय करने के लिए, धन एकत्रित कर भेजने लगे।

१ ली जनवरी, सन् १९०८ को आप कैनाडा से संयुक्त-प्रदेश चले गए और वहाँ सीएटल नगर के एक स्कूल में पढ़ने लगे। तीन वर्ष बड़े यत्न से विद्योपार्जन होता रहा। इन्हीं दिनों कैनाडा-स्थित भारतीयों ने डेढ़ लाख रुपए की पूँजी से एक इण्डियन ट्रेडिङ्ग कम्पनी खोली और सुविधा के लिए एक अङ्गरेज़ मैनेजर भी रख लिया। कम्पनी के हिस्सेदारों में हमारे नायक भी थे। कार्य ख़ूब चल निकला। कम्पनी की एकदम ऐसी उन्नति गोरे पूँजीदारों से देखी न गई। उन्होंने उस अङ्गरेज़ को अपनी तरफ़ मिला लिया और उसने बेईमानी प्रारम्भ कर

दी। हरिनामसिंह उसकी चालाकी ताड़ गए और उस पर देख-रेख रखने लगे। झगड़ा बढ़ने पर वे गोरे लोगों की आँखों में बेतरह खटकने लगे। आपको फँसाने की चेष्टा होने लगी। परन्तु आपके एक अङ्गरेज़-मित्र रैमिस्बर्ग (*Ramisburg*), जोकि वहाँ मैजिस्ट्रेट थे, यह हालत देख उन्हें अपने साथ ले गए। यह महाशय संयुक्त-प्रदेश के रहने वाले थे और इन्हीं के यहाँ रह कर आपने तीन वर्ष तक शिक्षा पाई थी।

कुछ दिन बाद आप फिर कैनाडा चले गये और वहाँ से एक "दि हिन्दुस्तान" (*The Hindustan*) नामक अङ्गरेज़ी पत्र निकालना शुरू कर दिया। आप बड़े ओजस्वी लेखक थे। कैनाडा वासी भारतीयों पर आपका विशेष प्रभाव था। सरकार को यह अच्छा न लगा और उन पर बम् बनाने और सिखाने, विद्रोह-प्रचार आदि का दोष लगा कर ४८ घण्टे के अन्दर कैनाडा से निकल जाने की आज्ञा दी गई। बड़ी विकट परिस्थिति थी। तुरन्त रैमिस्बर्ग को तार दिया गया। उन्होंने कैनाडा-सरकार को तार दिया कि उन्हें निर्वासित न किया जाय, मैं उन्हें साथ ले आने के लिए आ रहा हूँ और अपना प्राइवेट बोट लेकर उन्हें साथ ही ले आए। कुछ दिन के बाद आपको फिर कैनाडा जाने की आज्ञा मिल गई। २० मार्च, १९११ से आप संयुक्त-प्रदेश में बर्कले यूनिवर्सिटी में पढ़ने लगे। ग़दर अख़बार में भी आप हर तरह से सहायता करते थे।

इधर दो सज्जन भाई गुरुदत्तसिंह और भाई दलीपसिंह

एक बम्-केस में पकड़े गए उधर कामागाटा मारू जहाज़ बन्दरगाह पर आ पहुँचा। हरिनामसिंह अपने अन्य साथियों सहित बाबा गुरुदत्तसिंह तथा अन्य यात्रियों से सलाह करने गए और वहीं पकड़े गए। शेष साथी तो छोड़ दिए गए, पर आपको न छोड़ा गया। इन्हें फिर देश-निकाले की आज्ञा हुई। कुछ दिन के झगड़े के बाद यह जानकर कि इस बार कोई सफलता न होगी, आप भारत की ओर आने वाले एक जहाज़ पर सवार हो गए और चीन, जापान तथा स्याम आदि में ग़दर-पार्टी का कार्य करते हुए आप बर्मा पहुँचे। यह सन १९१५ के दिन थे। सिङ्गापुर के विद्रोह-दमन के बाद बहुत से ग़दर-नेता बर्मा पहुँच गए थे। इरादा था कि अक्टूबर, १९१५ में बकरीद के दिन विद्रोह खड़ा किया जाय और बकरों की जगह गोरे शासकों की क़ुर्बानी दी जाए, परन्तु बाद में २५ दिसम्बर का दिन निश्चय किया गया। इन्हीं सब चेष्टाओं में दिन-रात जुटे रह कर वे घोर परिश्रम कर रहे थे कि एक दिन आप एकाएक माण्डले में गिरफ़्तार कर लिए गए। अभियोग चला और आप को मृत्यु-दण्ड दिया गया। अभी जेल में ही बन्द थे और फाँसी नहीं दी गई थी कि आप जेल से भाग गए। किन्तु शीघ्र ही पकड़-कर फाँसी पर लटका दिए गए।

आपके आग्रह से आपकी धर्मपत्नी ने आप ही के छोटे भाई से विवाह कर लिया था। बाबू हरिनामसिंह बड़े स्वतन्त्र-प्रकृति और दृढ़-चित्त के आदमी थे। आप साधारणतया "हिन्दी

हैं हम वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा" और "मरना भला है उसका जो अपने लिए जिए।" आदि पद्य गाते रहते थे।

श्री० भागसिंह, श्री० हरिनामसिंह और श्री० बलवन्तसिंह इन तीनों सज्जनों में अगाध प्रेम था। तीनों का रहन-सहन, खान-पान, काम-काज एक साथ ही होता था। उस समय ग़दर-अन्दोलन के ये तीनों ही प्राण थे। एक-एक कर उन तीनों ने ही भारत को स्वतन्त्र करवाने के लिए बारी-बारी से आत्म-दान दे दिया। देश के लिए वे जिए और देश ही के लिए वे मर भी गए। प्रेम का कितना सुन्दर दृष्टान्त है!

श्री० सोहनलाल पाठक

सन् १९१५ की बात है। अमेरिका की ग़दर-पार्टी की ओर से प्रायः सभी देश में ग़दर-प्रचार के लिए आदमी भेजे जा रहे थे। अस्तु, पाठक जी भी इसी पार्टी की ओर से बर्मा में प्रचार-कार्य करने के लिए भेजे गए। सन् १९१५ के आरम्भ में ही आप बैङ्कॉक आए और कुछ दिन वहाँ पर ग़दर का कार्य करने के बाद रङ्गून आ पहुँचे। यहाँ पर सङ्गठित रूप से अपना केन्द्र बना कर सोहनलाल ने उस दिन की व्यर्थ आशा से, जबकि सारे भारत में एक साथ ही एक बार फिर रणचण्डी का ताण्डव-नृत्य प्रारम्भ हो जायगा, सेनाओं में विप्लव का प्रचार-कार्य ज़ोरों के साथ आरम्भ कर दिया।

२१ फ़रवरी आई और निकल गई। भेद खुल जाने से उस दिन बलवा न हो सका और चारों ओर धर-पकड़ होने लगी। किन्तु विप्लवियों के जीवन में यह कोई नई बात न थी। उनका तो जीवन ही असफलताओं का जीवन है। वे तो "कर्मण्ये-वाधिकारस्ते" का ही पाठ लेकर इस क्षेत्र में आए थे। अस्तु, सोहनलाल इतने पर भी हताश न हुए। उन्होंने नए उत्साह से फिर विप्लव की आयोजना आरम्भ कर दी।

एक दिन अगस्त, १९१४ में, जबकि वे मेमियो के तोपखाने में ग़दर का प्रचार कर रहे थे, एक जमादार ने उन्हें गिरफ़्तार करवा दिया। तीन पिस्तौलें तथा २७० कारतूसें पास होते हुए भी न जाने सोहनलाल ने उस समय उनका प्रयोग क्यों नहीं किया।

पाठक जी जेल में बन्द थे। अधिकारियों के आने पर और क़ैदियों ने तो झुक-झुक कर सलाम करना प्रारम्भ कर दिया. किन्तु आप की मस्ती कुछ और ही ढङ्ग की थी। बोले—"जब मैं अङ्गरेज़ों को, राज्य को, अन्यायी और अत्याचारी मानता हूँ, तो उनकी जेल के नियम ही क्यों मानूँ।"

अधिकारियों के आने पर खड़ा होना भी शायद उनके प्रोग्राम के बाहर था। हाँ, एक बात अवश्य थी, वे कभी किसी के साथ असभ्यता का व्यहार न करते थे। यदि कोई उनसे खड़े होकर बात करता तो आप भी उससे खड़े होकर ही बात करते थे। एक बार बर्मा के लॉर्ड महोदय जेल देखने आए। जेलर ने सोहनलाल से प्रार्थना की कि उनके आने पर खड़े

होकर स्वागत कर लेना। जब आप इस पर राज़ी न हुए तो जेलर ने एक और चाल चली। जिस समय लॉर्ड महोदय जेल में आए तो जेलर पहले ही से पाठक जी के पास जाकर खड़े-खड़े उनसे बातें करने लगा। आप भी खड़े होकर उनसे बातें करने लगे और लॉर्ड के आने पर उन्हें फिर से खड़ा न होना पड़ा। अपनी दो घण्टे की बातचीत में लॉर्ड ने आपसे बहुतेरा अनुरोध किया कि तुम माफ़ी माँग कर प्राण-दण्ड से बरी हो जाओ, किन्तु आपने एक न मानी।

अन्त में फाँसी के दिन एक अङ्गरेज़-मैजिस्ट्रेट ने आकर फिर आपसे माफ़ी माँग लेने का अनुरोध किया। मृत्यु मुँह फैलाए सामने खड़ी है। फाँसी का तख्ता तथा रस्सी का फन्दा ठीक हो चुका है। ऐसे समय में जेल के सभी कर्मचारी सोहन-लाल के मुँह की ओर देखकर उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर की निस्तब्धता के बाद उस पागल पुजारी ने मुस्कराते हुए कहा :

"क्षमा माँगनी हो तो अङ्गरेज़ मुझसे क्षमा माँगें। मैंने कोई अपराध नहीं किया। असली अपराधी तो वे ही हैं। हाँ, यदि मुझे बिलकुल ही छोड़ने का वचन दो तो तुम्हारी बात पर विचार कर सकता हूँ।"

उत्तर मिला—यह तो अधिकार से बाहर की बात है।

"तो फिर अब देर क्यों करते हो? तुम अपना कर्त्तव्य पूरा करो और मुझे अपना कर्त्तव्य करने दो।"

देखते-देखते तख्ता खिंचा और रस्सीकेझटके के साथ ही यह दृश्य भी समाप्त हो गया !

देशभक्त सूफ़ी अम्बाप्रसाद

आज भारतवर्ष में कितने लोग उनका नाम जानते हैं ? कितने उनकी स्मृति में शोकातुर हो कर आँसू बहाते हैं ? कृतघ्न भारत ने कितने ही ऐसे रत्न खो दिए और क्षण भर के लिए भी अनुभव न किया ।

वे सच्चे देशभक्त थे, उनके हृदय में देश के लिए दर्द था । वे भारत की प्रतिष्ठा देखना चाहते थे, भारत को उन्नति के शिखर पर पहुँचाना चाहते थे । तो भी आज भारत के बहुत कम लोग उनका नाम जानते हैं । उनकी क़दर भी की, तो ईरान ने ! आज वहाँ 'सूफ़ी' का नाम सर्व-प्रिय हो रहा है ।

सूफ़ी जी का जन्म १८५८ ई० में मुरादाबाद में हुआ था । आपका दाहिना हाथ जन्म से ही कटा था । आप हँसी में कहा करते थे—"अरे भाई ! हमने सत्तावन में अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध किया । हाथ कट गया ! मृत्यु हो गई । पुनर्जन्म हुआ, हाथ कटे का कटा आ गया !"

आपने मुरादाबाद, बरेली और जालन्धर आदि कई शहरों में शिक्षा पाई । एफ़० ए० पास करने के पश्चात् आपने वकालत ढ़ी, परन्तु की नहीं । आप उर्दू के प्रभावशाली लेखक थे ।

आपने वही काम सम्भाला।

सन् १८९० ई० में आपने मुरादाबाद से 'जाम्युल इलूम' नामक उर्दू साप्ताहिक पत्र निकाला। इसका प्रत्येक शब्द इनकी आन्तरिक अवस्था का परिचय देता था। वे हास्यरस के प्रसिद्ध लेखक थे। परन्तु उनमें गम्भीरता भी कम न थी। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर पक्षपाती थे। और शासकों की कड़ी आलोचना किया करते थे।

सन् १८९७ में आपको राजद्रोह के अपराध में डेढ़ वर्ष का कारागार मिला। जब ९९ में छूटकर आए तो यू० पी० के कुछ छोटे-छोटे राज्यों पर अङ्गरेज़ लोग हस्तक्षेप कर रहे थे। सूफ़ी जी ने वहाँ के अफ़सरों तथा रेजिडेण्टों का ख़ूब भण्डाफोड़ किया। आप पर मिथ्या दोषारोपण का अभियोग चलाया गया और सारी जायदाद ज़ब्त कर, छः साल का कारागार दिया गया। जेल में उन्हें अकथनीय कष्ट सहन करने पड़े, परन्तु वे कभी विचलित नहीं हुए।

सूफ़ी जी जेल में बीमार पड़े। एक ग़लीज़ कोठरी में बन्द थे। उन्हें औषधि नहीं दी जाती थी। यहाँ तक कि पानी आदि का भी ठीक प्रबन्ध न था। जेलर आता और हँसता हुआ प्रश्न करता—सूफ़ी, अभी तक तुम ज़िन्दा हो?" ख़ैर! ज्यों-त्यों कर जेल कटी और १९०६ के अन्त में आप बाहर आए।

"सूफ़ी जी का निज़ाम-हैदराबाद से घनिष्ट सम्बन्ध था। जेल से छूटते ही आप वहाँ गए। निज़ाम ने उनके लिए अच्छा-सा मकान

बनवाया। मकान बन जाने पर उन्होंने सूफ़ी जी से कहा—"आप के लिए मकान तैयार हो गया है।" आपने उत्तर दिया—"हम भी तैयार हो गए हैं।" आपने वस्त्र आदि उठाए और पञ्जाब की ओर चल दिए। वहाँ जाकर आप 'हिन्दुस्तान' अखबार में कार्य करने लगे। सुनते हैं, आपकी चतुरता, वाक्-पटुता और समझदारी देख कर सरकार की ओर से १०००) मासिक जासूस-विभाग से पेश किए गए थे, परन्तु आपने उनकी अपेक्षा जेल और दरिद्रता को ही श्रेष्ठ समझा। बाद को 'हिन्दुस्तान' सम्पादक से भी आपकी न बनी और आपने वहाँ से भी त्याग-पत्र दे दिया।

उन्हीं दिनों सरदार अजीतसिंह ने 'भारतमाता-सोसाइटी' की नींव डाली और पञ्जाब के 'न्यूकॉलोनी बिल' के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। सूफ़ी जी का भी मेल उनसे बढ़ने लगा। उधर वे भी इनकी ओर आकर्षित होने लगे।

सन् १९०७ में पञ्जाब में फिर धर-पकड़ आरम्भ हुई, तो सरदार अजीतसिंह के भाई सरदार किशनसिंह और भारतमाता-सोसाइटी के मन्त्री महता आनन्दकिशोर सूफ़ी जी के साथ नैपाल चल दिए। वहाँ नैपाल रोड के गवर्नर श्री० जङ्गबहादुर जी से आपका परिचय हो गया। वे इनसे बहुत अच्छी तरह पेश आए। बाद को श्री० जङ्गबहादुर जी सूफ़ी जी को आश्रय देने के कारण ही पदच्युत किए गए। उनकी सम्पत्ति भी ज़ब्त कर ली गई। ख़ैर, सूफ़ी जी वहाँ पकड़े गए और लाहौर लाए गए। लाला पिण्डीदास जी के पत्र

'इण्डिया' में प्रकशित आपके लेखों के सम्बन्ध में ही आप पर अभियोग चलाया गया। परन्तु निर्दोष होने पर बाद में आपको छोड़ दिया गया।

तत्पश्चात् सरदार अजीतसिंह भी छूट कर आ गए। और सन् १९०८ में 'भारतमाता बुक-सोसाइटी' की नींव डाली गई। इसका अधिकतर कार्य सूफ़ी जी हो किया करते थे। आपने 'बाग़ी मसीह' या 'विद्रोही ईसा' नामक एक पुस्तक प्रकाशित करवाई जो बाद को ज़ब्त कर ली गई!

इसी वर्ष लोकमान्य तिलक पर अभियोग चलाया गया और उन्हें भी ६ वर्ष का कारागार मिला। तब 'देशभक्त मण्डल' के सभी सदस्य साधु बन कर पर्वतों की ओर यात्रा करने के लिए निकल पड़े। पर्वतों के ऊपर जा रहे थे। एक भक्त भी साथ आया। साधु बैठे तो उस भक्त ने सूफ़ी जी के चरणों पर शीश नवा कर नमस्कार किया। बड़ा जैण्टलमैन था। ख़ूब सूट-बूट पहने था। सूफ़ी जी के चरणों पर शीश रक्खा और पूछने लगा—"बाबा जी, आप कहाँ रहते हैं?"

सूफ़ी जी ने कठोर स्वर में उत्तर दिया—रहते हैं तुम्हारे सिर में!

"साधु जी, आप नाराज़ क्यों हो गए?"

"अरे बेवक़ूफ़! तूने मुझे क्यों नमस्कार किया?" इतने और साधु भी तो थे इनको प्रणाम क्यों न किया?"

"मैं आपको ही बड़ा साधु समझा था।"

"अच्छा .ख़ैर ! जाओ, खाने-पीने की वस्तुएँ लाओ।"

वह कुछ देर बाद अच्छे-अच्छे पदार्थ लेकर आया। खा-पीकर सूफ़ी जी ने उसे फिर बुलाया और कहने लगे—"क्यों बे, हमारा पीछा छोड़ेगा या नहीं ?"

"भला मैं आपसे क्या कहता हूँ जी ?"

"चालाकी को छोड़। आया है जासूसी करने ! जा-जा अपने बाप से कह देना कि सूफ़ी पहाड़ में ग़दर करने जा रहे हैं।"

वह चरणों पर गिर पड़ा—"हुज़ूर, पेट के ख़ातिर सब कुछ करना पड़ता है।"

आपने सन् ९१०९ में 'पेशवा' अख़बार निकाला। उन्हीं दिनों बङ्गाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन ने जोर पकड़ा। सरकार को चिन्ता हुई कि कहीं यह आग पञ्जाब का भी दहन न कर डाले। अस्तु, दमन-चक्र चलना आरम्भ हुआ। तब सूफ़ी जी सरदार अजीतसिंह और ज्याउलहक़ ईरान चले गए। वहाँ पहुँच कर ज्याउलहक़ की सलाह बदल गई। उसने चाहा इन्हें पकड़वा दूँ तो कुछ इनाम भी मिलेगा और सजा भी न होगी। परन्तु सूफ़ी जी ताड़ गए। उन्होंने उसे आगे भेज दिया। वह वहाँ रिपोर्ट करने गया; स्वयं ही पकड़ा गया और यह दोनों बच निकले।

ईरान में वे कैसे रहे, क्या हुआ, यह बातें तो किसी अवसर पर ही खुलेंगी ; परन्तु जो कुछ सुनने में आया, उसी का उल्लेख इस स्थान पर किया जाता है। ईरान में अङ्गरेजों ने उनकी बहुत खोज की और उन्हें कई प्रकार के कष्ट सहन करने पड़े। कहा

जाता है, कि वे एक स्थान पर घेर लिए गए। वहाँ से निकलना असम्भव-सा हो गया। वहीं व्यापारियों का एक क़ाफ़िला ठहरा हुआ था। ऊँटों पर बहुत से सन्दूक़ लदे थे। उनमें वस्त्र आदि भरे थे। एक ऊँट के दोनों सन्दूक़ों में सूफ़ी जी तथा अजीतसिंह को बन्द किया गया और वहाँ से बचा कर निकाला गया।

फिर किसी अमीर के घर ठहरे। पता चल गया और वह घर घेर लिया गया। उसी समय उन दोनों को बुरक़ा पहना, जनाने में बिठा दिया गया। सब तलाशी ली गई और अन्त में स्त्रियों की भी तलाशी ली जाने लगी। एक-दो स्त्रियों के बुरक़े उठाए भी गए, परन्तु मुसलमान लोग लड़ने-मरने को तैयार हो गए और फिर अन्य किसी स्त्री का बुरक़ा नहीं उतारने दिया गया। इस तरह वे दोनों यहाँ से भी बचे।

पीछे उन्होंने वहाँ से 'आबेहयात' नामक पत्र निकाला और राष्ट्रीय आन्दोलन में भी भाग लेने लगे। सरदार साहब के टर्की चले जाने पर वहाँ का सारा कार्य इन्हीं के सर आ पड़ा और फिर ये वहाँ पर 'आक़ा सूफ़ी' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सन् १९१५ में जिस समय ईरान में अङ्गरेज़ों ने बिलकुल प्रभुत्व जमाना चाहा तो फिर कुछ उथल-पुथल मची थी। शीराज़ पर घेरा डाला गया। उस समय सूफ़ी जी ने बाएँ हाथ से रिवॉल्वर चला कर मुक़ाबला किया था, परन्तु अन्त में आप अङ्गरेज़ों के हाथ आ गए। उन्हें कोर्ट मार्शल किया गया। फ़ैसला हुआ, कल गोली से उड़ा दिए जाओगे। सूफ़ी कोठरी में बन्द

थे। प्रातः समय देखा। वे समाधि की अवस्था में थे, परन्तु उनके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। उनके जनाज़े के साथ असंख्य ईरानी गए और उन्होंने बहुत शोक मनाया। कई दिन तक नगर में उदासी-सी छाई रही। सूफ़ी जी की क़ब्र बनाई गई। अभी तक हर वर्ष उनकी क़ब्र पर उत्सव मनाया जाता है। लोग उनका नाम सुनते ही श्रद्धा से सर झुका लेते हैं। वे पैर से भी लेखनी पकड़ कर अच्छी तरह लिख सकते थे। उस दिन एक महाशय कह रहे थे कि मुझे उन्होंने पैर से ही लिख कर एक नुस्खा दिया था।

एक और विचित्र कहानी उनके मित्रों ने सुनाई थी। पता नहीं वह कहाँ तक सच है, परन्तु बहुत सम्भव है वह सच हो। कहते हैं कि जब भोपाल या किसी और स्टेट में रेज़िडेण्ट कुछ ख़राबी कर रहे थे और उसके हड़प जाने की चिन्ता में थे तो वहाँ का भेद प्रकाशित करने के लिये 'अमृत बाज़ार पत्रिका' की ओर से सूफ़ी जी वहाँ भेजे गए। यह बात १८९० के लगभग की है।

एक पागल-सा मनुष्य रेज़िडेण्ट के बैरे के पास नौकरी की खोज में आया और अन्त में केवल भोजन पर ही रख लिया गया। वह पागल बर्तन साफ़ करता तो मिट्टी में लथपथ हो जाता। मुँह पर मिट्टी पोत लेता। वह सौदा खरीदने में बड़ा चतुर था। अस्तु, चीज़ें ख़रीदने उसे ही भेजा जाता था।

उधर 'अमृत बाज़ार पत्रिका' में रेज़िडेण्ट के विरुद्ध धड़ाधड़

लेख निकलने लगे। अन्त को वह इतना बदनाम हुआ कि पदच्युत कर दिया गया। जिस समय वह स्टेट से बाहर पहुँच गया तो एक काला-सा मनुष्य हैट लगाए पतलून-बूट पहने उसकी ओर आया। उसे देखकर रेजिडेण्ट चकित-सा रह गया। यह तो वही है जो मेरे बर्तन साफ़ किया करता था। आज पागल नहीं है। उसने आते ही अङ्गरेज़ी में बातचीत शुरू की। उसे देख वह काँपने लगा। अन्त में उसने कहा—तुम्हें इनाम तो दिया जा चुका है, अब तुम मेरे पास क्यों आए हो ?

"आपने कहा था, जो मनुष्य उस गुप्तचर को, जिसने कि आपका भेद खोला है, पकड़वाए, उसे आप कुछ इनाम देंगे।"

"हाँ, कहा तो था। क्या तुमने उसे पकड़ा ?"

"हाँ, हाँ ! इनाम दीजिए। वह व्यक्ति मैं स्वयं ही हूँ ?"

वह थरथर काँपने लगा। बोला—"यदि राज्य के अन्दर ही मुझे तेरा पता चल जाता तो बोटी-बोटी उड़वा देता।" खैर, उसने इन्हें एक सोने की घड़ी दी और कहा—"यदि तुम स्वीकार करो तो जासूस-विभाग से १०००) मासिक वेतन दिलवा सकता हूँ।" परन्तु सूफ़ी जी ने कहा—"अगर वेतन ही लेना होता तो तुम्हारे बर्तन क्यों साफ़ करता ?"

आज सूफ़ी जी इस लोक में नहीं हैं। पर ऐसे देशभक्त का स्मरण भी स्फूर्तिदायक होता है। भगवान् उनकी आत्मा को चिर-शान्ति दें।

भाई रामसिंह

पिण्ड तुलेताँ, ज़िला जालन्धर में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम श्री० जीवनसिंह था। छोटी उमर में ही १९०७ या आठ में आप कैनाडा चले गए थे। यहाँ पर इन्हें व्योपार आदि में अच्छी सफलता हुई और ये वहाँ के भारत-वासियों में वे सब से अधिक धनवान् गिने जाने लगे। किन्तु इतने पर भी आपका स्वभाव बड़ा सरल था और ये अपने धन को देश तथा जाति का धन कहा करते थे। दान देने में आप बड़े सिद्ध-हस्त थे। दीवान के लङ्गर आदि का खर्च इन्हीं के रुपए से चला करता था।

सन् १९१४ में कैनाडा-स्थित भारतीयों को बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कामागाटा मारू की घटना, व्यापार का मन्द पड़ जाना, गुरुद्वारे में दो नेताओं का मारा जाना आदि बातों ने परिस्थिति को एकदम बदल दिया। ग़ुलामी की अधिक ठोकरें न सह सकने के कारण लोग देश की ओर वापस आने लगे। रामसिंह जी भी इसी विचार से कैनाडा से यूनाईटेड स्टेट्स आए। यहाँ आने पर लोगों ने भारत न आकर आपसे वहीं ठहर कर कार्य करने का आग्रह किया।

उन दिनों ग़दर-पार्टी का कार्य-भार पं० रामचन्द्र नामक व्यक्ति के हाथ में था। इन्होंने नियमों आदि को एक ओर रख, पार्टी पर अपना ही व्यक्तित्व जमा रक्खा था। सारा काम इन्हीं

की इच्छा-मात्र पर निर्भर था। इनको सदा यही चिन्ता रहती कि कोई अच्छा काम करने वाला अमेरिका में न ठहरने पाए। अस्तु, इसी विचार से रामसिंह को भी वहाँ से निकालने की आपने एक चाल चली। एक जूते में एक काग़ज़ सीकर रामसिंह को देते हुए कहा—"इसे भारत में अमुक व्यक्ति के पास ले जाना है। यह इतना ज़रुरी है, कि आपके सिवा और किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता।" अस्तु, आप भारत चल दिए। आते समय मनिल्ला में कुछ और पुराने कार्यकर्त्ताओं से भेंट हुई। उन्होंने रामचन्द्र का असली स्वरूप बता कर यह भी कहा इस समय भारत जाना मृत्यु के मुँह में जाना है। बूट खोलने पर उसमें साधारण छपे काग़ज़ के सिवा और कुछ न निकला। अस्तु आप चीन-जापान होते हुए फिर अमेरिका वापस चले गए।

इस समय रामचन्द्र तथा अन्य लोगों में काफी झगड़ा बढ़ गया था। बहुत प्रयत्न करने के बाद भी झगड़ा मिटने की कोई आशा न देख, आपने सन् १९१६ में कैलिफोर्निया के सैक्रोमेण्ट नामक शहर में एक मीटिङ्ग की और नए अधिकारी चुन कर पार्टी का काम आरम्भ कर दिया। रामचन्द्र ने इसे अनियमित कहकर एक और सभा बुलाई, किन्तु इसने भी उसी रामसिंह वाली कमेटी को ही सर्वोपरि मानकर उसमें तीन आदमी और बढ़ा दिए। और यह भी निश्चय किया कि ७ दिन के अन्दर ही पुराने लोग इस नई कमेटी को सारे काम का चार्ज दे दें और यदि ऐसा न हो तो कमेटी बलपूर्वक सब चीज़ों पर अधिकार कर ले।

किन्तु इतने पर भी चार्ज न मिला। प्रेस पर अधिकार करते समय वे लोग पुलिस को बुला लाए। पुलिस के आने पर रामसिंह ने सब हाल बयान किया, आखिर वह एक स्वाधीन देश की पुलिस थी। अस्तु, उन लोगों ने स्वयं ताला तोड़ कर प्रेस पर नई कमेटी का अधिकार करा दिया।

इसके बाद चारों ओर घूम-घूम कर आपने सङ्गठन का कार्य भी समाप्त किया। उस समय लोगों ने आप को सेन्ट्रल-कमेटी का प्रधान बनाना चाहा, किन्तु यह कहकर कि मैंने ही इसे बनाया है, और मैं ही इसका मुखिया बन बैठूँ, यह ठीक नहीं; आपने उक्त पद को स्वीकार न किया। किन्तु फिर भी आपका सारा समय उसी कार्य में व्यतीत होता रहा।

इसी बीच अमेरिका ने भी महायुद्ध में भाग लेने का एलान कर दिया और साथ ही ग़दर-पार्टी के ख़ास-ख़ास कार्यकर्त्ताओं को भी गिरफ़्तार कर लिया गया। कहा गया था कि इन लोगों के कारण ही ब्रिटिश के प्रति अमेरिका की निष्पक्षता में अन्तर आ गया था। ख़ैर, जो भी हो, रामसिंह जी इसी अपराध में गिरफ़्तार हुए। कुछ ही दिनों बाद पं० रामचन्द्र भी पकड़े गए। उस समय आपने पण्डित जी से कहा कि बाहर हमारा जो भी मतभेद रहा हो, यहाँ पर हमें एक साथ मिल कर ही चलना ठीक होगा। किन्तु वे इस पर राज़ी न हुए और अन्त में यही बात अधिक ज़ोर पकड़ गई। अभियोग चलने पर समाचार-पत्रों ने इस बात को लेकर कि रामचन्द्र की पार्टी ने ऐसा कहा और दूसरी

पार्टी ने ऐसा कहा, ख़ूब लेख आदि लिखना आरम्भ कर दिया। पार्टी की बदनामी होते देख, रामसिंह ने एक बार फिर प्रयत्न किया कि पार्टीबन्दी दूर हो जाय और सब लोगों का अभियोग एक ही साथ चले, किन्तु इस बार भी सफलता न हुई।

केस जूरी को सौंपा गया और जिस समय जज लोग दोपहर को खाना खाने गए तो रामसिंह ने अदालत में ही रिवॉल्वर निकाल कर रामचन्द्र पर फ़ायर कर दिया। जिस समय रामचन्द्र को गिरता देख आपने हाथ नीचा कर लिया था, सामने बैठे हुए कोतवाल ने रामसिंह पर गोली चला दी। इस प्रकार अमेरिका की बीच अदालत में होने वाले एक और शहीदी अभिनय का दृश्य समाप्त हुआ।

इस बात की तह में कुछ भी रहा हो, किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि रामसिंह ने यह काम ग़दर-पार्टी की बदनामी न सह सकने के कारण ही किया था।

श्री० भानसिंह

फाँसी पर चढ़ कर प्राण देने वाले विप्लवी यदि देश के लिए गौरव की वस्तु हैं, तो उन लोगों का महत्व भी किसी तरह कम नहीं, जो आततायियों द्वारा निरन्तर अकथनीय यातनाएँ सहन करते हुए, तिल-तिल कर प्राण देते हैं। उनका नाम जन-साधारण नहीं जान पाते, उनका गुप्त-कार्य ही

महत्वपूर्ण होता है और उन्हीं का बलिदान अधिक महिमामय हुआ करता है

ऐसे ही हमारे नायक श्री० भानसिंह भी थे। आपका जन्म 'सुनेत' नामक गाँव, ज़िला लुधियाना में हुआ था। पहले आप एक रिसाले में भरती हुए थे, किन्तु बाद में नौकरी छोड़ कर अमेरिका चले गए थे। कैलीफ़ोर्निया में रहकर, सन् १९११ के सभी राजनैतिक कार्यों में आप बढ़-चढ़ कर भाग लेने लगे थे।

शेष वही पुरानी कथा है। ग़दर दल बना, ग़दर अख़बार निकला, सङ्गठन हुआ और अन्त में महायुद्ध के छिड़ते ही लोग देश को लौटने लगे। सब से प्रथम कोरिया तथा तोशामारू जहाज़ आ गए थे। उन्हीं में आप भी चल दिए। आते ही इमिग्रैन्ट्स ऑर्डिनेन्स (*Imigrants Ordinance*) के शिकार बन गए। मार्ग में आप ग़दर का प्रचार करते आए थे। अस्तु—

२९ अक्टूबर, १९१४ को आप कलकत्ते पहुँचते ही पकड़ लिए गए। नवम्बर के अन्त तक मॉण्टगुमरी-जेल में बन्द रक्खे जाने के बाद एक दिन आप छोड़ दिए गए। इस पर कुछ साथी आप पर सन्देह करने लगे, किन्तु आपने अपनी तत्परता से फिर सब पर अपना विश्वास जमा लिया। कार्य जारी रहा और अन्त में बना-बनाया खेल बिगड़ गया। विप्लव-आयोजन के विफल होते ही चारों ओर गिरफ़्तारियों का बाज़ार

गर्म हो उठा। हमारे नायक पर डकैती अथवा हत्या का कोई दोष सिद्ध न होने पर भी, उन्हें आजन्म कालेपानी का दण्ड मिला।

आप अण्डमन लाए गए। यहाँ के जेलर तथा अन्य अधिकारियों को अपनी हृदय-हीनता पर विशेष गर्व था और परिणाम-स्वरूप क़ैदियों और अधिकारियों में सदैव ही झगड़ा चला करता था। एक बार कोई उत्सव था। उस दिन मिठाई बँटी। राजनैतिक क़ैदियों को भी पेश की गई। कुछेक सज्जन मिठाई खा आए। श्री० भानसिंह जी ने उन्हें आड़े-हाथों लिया, बहुत नाराज़ हुए। विप्लव-पन्थियों के गम्भीर प्रेम के कारण ही वे इस प्रकार अपने सहकारियों पर क्रुद्ध हुए थे और उन्होंने चुपचाप सब सहार लिया था। सभी ने क्षमा चाही। इस बात का अधिकारियों को पता लगा। आपको किसी अधिकारी ने कोई गाली दे दी। आप यह सहार न सके। उस दिन कोठरी में बन्द होने के कारण सब कुछ चुपचाप सहना पड़ा। अगले दिन से आपने काम करने से इन्कार कर दिया। इस पर जेलर ने ६ महीने के लिए डण्डा-बेड़ी पहनाकर काल-कोठरी में बन्द कर दिया। साथ ही आधी ख़ुराक की सज़ा भी दे दी। आधी ख़ुराक वाले को पानी भी पर्याप्त नहीं दिया जाता था। उस ग्रीष्म जलवायु वाले द्वीप में यह दण्ड कितना असह्य होता है, यह हम लोग क्या अनुभव करेंगे?

न जाने किस नशे में मस्त होकर ये विप्लवी इन सब

अकथनीय कष्टों को हँसी-ख़ुशी सहार लेते हैं। किस उच्च भावना से इस योग्य हो पाते हैं कि अपने जीवन का कोई आराम भी उन्हें प्रलोभित कर पथ-भ्रष्ट नहीं कर पाता। ४० वर्ष से अधिक आयु वाले भानसिंह उस ग्रीष्म-ऋतु में अल्प जल के दण्ड को भी हँसी ख़ुशी सहार गए। उस वीर को प्रेम का नशा पागल बनाए रहता था। एक दिन आपने गाना शुरू कर दिया—"मित्र प्यारे नू[1] हाल मुरीदाँ दा[2] कहना!" जेलर ने चुप रहने की आज्ञा दी। परन्तु ईश्वर-भजन से भी वञ्चित करने का अधिकार उसे किसने दिया? भानसिंह अब उसकी आज्ञाएँ क्यों मानने लगे! उन्होंने अपना अलाप जारी रक्खा। आप दूसरी मञ्ज़िल की कोठरी में बन्द थे। अब उन्हें तीसरी मञ्ज़िल की कोठरी में बन्द किया गया। कोठरी क्या थी, एक ख़ासा तङ्ग सन्दूक़ था। ढाई वर्ग फ़ीट की कोठरी ही क्या हो सकती है? किन्तु अलाप फिर भी बन्द न हुआ। निर्दय अधिकारियों ने इस बार आपको बुरी तरह पीटा। हड्डियाँ तोड़ डालीं। परन्तु इससे क्या होता था? राजनैतिक क़ैदियों के साथ किए जाने वाले यह अमानुषिक अत्याचार उनके लिए असह्य थे और उन्हीं के हाथों प्राण त्याग कर वे एक प्रभावशाली आन्दोलन खड़ा करना चाहते थे।

गान का शब्द बन्द न होता देख, अधिकारी फिर मारने गए। इस बार शेष दल को भी पता चल गया। रोटी खाने का

१—को २—का

समय था। सभी उस कोठरी की ओर भागे। परन्तु बारकों के द्वार बन्द कर दिए गए और भीतर उस नर-रत्न को बुरी तरह पीटा गया। आज वह शेर पिञ्जरे में बन्द था, जञ्जीरों से जकड़ा हुआ था। सब सहन करना पड़ा। जो वीर बड़े उत्साह से देश के स्वातन्त्र्य-संग्राम में भाग लेने के विचार से आया था, वही आज निष्फल हो, बन्दी बनकर, इस तरह पिट रहा था! उस समय उनके हृदय पर क्या गुजरती होगी, यह हम लोग क्या समझेंगे? अन्त में उन्हें वही आधी ख़ुराक, काल-कोठरी और डण्डा-बेड़ी की सज़ा मिली। अन्य क़ैदियों ने भी कार्य छोड़ दिया और उन्हें भी वही सज़ा दी गई।

भानसिंह जी को बुरी तरह पीटा गया था। दशा नाज़ुक हो गई थी। मुँह में पानी न जाता था। बचने की कुछ भी आशा न थी। जेल के अन्दर उनकी मृत्यु न हो, इसलिए उन्हें बाहर के अस्पताल में भेज दिया गया, वहाँ कुछेक दिन के बाद श्री० भानसिंह जी 'अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर दूर अपने 'मित्र प्यारे' के पास 'मरीदाँ दा हाल' कहने चले गए।

श्री० यतीन्द्रनाथ मुकर्जी

बङ्गाल के पबना नामक स्थान में एक बङ्गाली ब्राह्मण-परिवार में उनका जन्म हुआ था। बाल्यकाल से ही शारीरिक व्यायाम, दौड़-धूप तथा कुश्ती आदि की ओर उनकी विशेष

रुचि थी। घोड़े की सवारी भी वे अच्छी तरह जानते थे। उनका एक अपना घोड़ा था जिसे वह बहुत प्यार करते थे। उनके जीवन की अनेक घटनाओं के साथ इस घोड़े का भी बहुत सम्बन्ध है।

पढ़ने-लिखने की ओर आपकी कुछ अधिक रुचि न थी। अस्तु, मैट्रिक पास करने के बाद कुछ दिन कॉलेज में पढ़ कर उन्होंने ३०) मासिक पर एक ऑफ़िस में नौकरी कर ली। सेनानायक के प्रायः सभी गुण उनमें विद्यमान थे। उनको देख कर ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् ने उन्हें मनुष्यों का नेता बनाकर ही यहाँ भेजा था। उनका शरीर बहुत सुन्दर तथा सुडौल था और वे स्वभाव से ही बड़े निर्भीक थे।

जिस समय पूर्व बङ्गाल की अनुशीलन समिति और चन्द्रनगर का रासबिहारी का दल मिलकर भारत में विप्लव की आयोजना कर रहा था, ठीक उसी समय बङ्गाल के एक दूसरे कोने में यतीन्द्रनाथ की अध्यक्षता में एक और दल भी काम कर रहा था। उस समय इस दल का उपरोक्त दोनों दलों से कोई सम्बन्ध न था।

पञ्जाब में २१ फ़रवरी, सन् १९१५ को विप्लव होने की बात सुन कर आप बनारस आए और रासबिहारी से मिले। उस समय रासबिहारी के पास धन की कमी थी। आपने इस कमी को पूरा करने का भार अपने सिर लिया। कहते हैं, कि एक ही महीने में उन्होंने इतना रुपया एकत्रित कर लिया था जिससे

कई वर्ष तक ग़दर का कार्य निर्विघ्न रूप से चल सकता था।

एक दिन आप कलकत्ते के एक मकान में अपने कुछ और साथियों के साथ ठहरे हुए थे कि एक व्यक्ति ने, जिस पर ये लोग सन्देह करते थे, उन्हें पहचान लिया। अस्तु, एक युवक ने उसके गोली मार दी। इस घटना के कारण सब को मकान छोड़ कर भागना पड़ा। जिस व्यक्ति के गोली लगी थी उसने अपने मरते समय के इज़हार (*Dying Declaration*) में यतीन्द्र को ही अपनी हत्या का अपराधी बतलाया। एक तो योंही पुलिस बुरी तौर से आपकी तालाश में थी, तिस पर इस घटना ने रही-सही कमी भी पूरी कर दी। यतीन्द्र के सिर फाँसी का परवाना लटकने लगा।

परिस्थिति भयानक होते देख उनके साथियों ने उनसे विदेश चले जाने का आग्रह किया। उस समय उस भावुक वीर ने करुणा-भरे स्वर में कहा—"भाई! हम लोग जीवन-मरण में एक दूसरे का साथ देने की शपथ लेकर ही घरों से बाहर हुए थे। अस्तु, बाक़ी साथियों को विपत्ति के मुख में छोड़कर मैं अकेला विदेश न जा सकूँगा। वहाँ जाकर सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने की अपेक्षा मुझे तुम लोगों के साथ भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर मरने में ही विशेष आनन्द है। कलकत्ते में अब और अधिक ठहरना निरापद न जानकर, बालेश्वर के निकट एक स्थान पर नया केन्द्र स्थापित किया गया और यतीन्द्र चार आदमियों के साथ वहीं पर रहकर विप्लव का कार्य करने लगे।
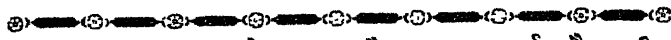
इसी बीच कलकत्ते में कुछ और धर-पकड़ हुई और यतीन्द्र के इस नए स्थान का पता भी पुलिस को लग गया। जिस समय यतीन्द्र को इस बात का पता लगा तो उनके दो साथी बारह मील दूर एक जङ्गल में थे। यदि वे चाहते तो उस समय अपने प्राणों की रक्षा कर सकते थे, किन्तु असाध्य साधन ही उनके जीवन का व्रत था अस्तु, दो साथियों सहित उन दोनों को लेने के लिए चल दिये। अँधेरी रात में पहाड़ों के ऊँचे-नीचे रास्ते से होकर बारह मील जङ्गल में जाकर फिर वापस आना उन्हीं के साहस की बात थी।

पुलिस वालों ने गाँवों में चारों ओर कह रक्खा था कि जङ्गल में कुछ भयानक डाकुओं का एक दल छिपा है और उसके पकड़वाने में उन्हें सहायता करनी पड़ेगी। मार्ग में भी स्थान-स्थान पर पुलिस की चौकियाँ बिठला दी गई थीं।

यतीन्द्र के अपने साथियों तक पहुँचते न पहुँचते दिन निकल आया और वे बस्ती के बीच से होकर बालेश्वर की ओर चल दिए। दिन-रात चलते रहने के कारण दो दिन से कुछ खाने को न मिला था, तिस पर ग्रीष्म की दोपहरी और भी परेशान कर रही थी। मार्ग में एक नदी के किनारे पहुँचकर मल्लाह से कुछ चावल पका देने को कहा! किन्तु हिन्दू-धर्म का पोषक, ब्राह्मण-भक्त माँझी ब्राह्मण को अपने हाथ का भात खिलाकर अपने लिए नरक का द्वार खोलने पर किसी भाँति भी राजी न हुआ। उसके निकट ब्राह्मण की प्राण-रक्षा का कोई भी मूल्य न था।

यतीन्द्र के इस ओर आने का समाचार भी पुलिस से छिपा न रहा। जिस समय वे एक गाँव से दूसरे गाँव में भागते फिर रहे थे तो एक दिन सन्ध्या समय बालेश्वर के पास जङ्गल में अपने चारों साथियों सहित घिर गए। युद्ध का सारा सामान साथ लेकर जिला-मैजिस्ट्रेट तथा पुलिस-सुपरिन्टेण्डेण्ट जङ्गल के दोनों ओर से सर्चलाइट छोड़ते हुए उनका पीछा करने लगे। इस लुका-छिपी में सारी रात समाप्त हो गई। प्रातःकाल होने पर बचने की कोई भी सम्भावना न देख, उन लोगों ने सामने-सामने लड़कर प्राण देना ही ठीक समझा।

निश्चय करने भर की देर थी। एक ओर युद्ध के सारे सामान से सुसज्जित हजार से भी अधिक गाँव वाले तथा पुलिस के लोग थे और दूसरी ओर थे भूख, प्यास, अनिद्रा और मार्ग के थकान से परेशान केवल पाँच विसवी! दोनों ओर से गोली चलने लगी। वायुमण्डल बारूद के धुएँ से भर गया। ये लोग ऊँची-नीची जमीन पर लेटकर गोलियाँ चलाने लगे। किन्तु भूख-प्यास से व्याकुल पाँच विसवी कब तक पुलिस का सामना कर सकते थे। प्रायः सभी लोग घायल हो चुके थे कि एक गोली ने चित्तप्रिय को सदा के लिए धराशायी बना दिया यतीन्द्र भी बुरी तरह घायल हो चुके थे। गोलियाँ भी समाप्त होने पर थीं। अस्तु, अपने जीने की और अधिक आशा न देख, उन्होंने आग्रह कर शेष तीनों साथियों से आत्म-समर्पण करा दिया।

यतीन्द्र अवसन्न होकर गिर पड़े, प्यास से उनका गला सूखने

लगा। ख़ून से तर-बतर बालक मनोरञ्जन पास में पड़ा था। यतीन्द्र के क्षीण स्वर से "पानी" का शब्द सुन कर मनोरञ्जन पास के सरोवर से चादर भिगोने चल दिया। यह देखकर पुलिस अफ़सर की आँखों में भी आँसू आ गए। उसने मनोरञ्जन से बैठने के लिए कहा और स्वयं अपनी टोपी में पानी लाकर यतीन्द्र के मुख में डालने लगा। बाद में कटक के अस्पताल में पहुँच कर रणचण्डी के परम उपासक वीर यतीन्द्र ने भी अपने प्राण त्याग दिये। उस समय पुलिस-कमिश्नर मि० टेगार्ट ने कहा था :

"Though I had to do my duty, but I have a great respect for him. He was the only Bengali who gave his life while fighting face to face with the police."

यह घटना ९ सितम्बर १९१५ की है।

अन्त में मनोरञ्जन तथा नीरेन्द्र को भी फाँसी की सज़ा हुई और ज्योतिष को आजन्म कारागार का दण्ड दिया गया बाद में जेल के कष्टों से वे पागल हो गये और कुछ दिन बहरमपुर के पागलखाने में रहने के बाद वे भी अपने उन्हीं चारों साथियों के पास चले गए।

श्री० नलिनी वाक्च्य

पञ्जाब का विराट् विपल्वायोजन विफल हो जाने के बाद भी विप्लवी एकदम निराश नहीं हुए। जो लोग उस समय

की धर-पकड़ से बच गये थे, उन्होंने फिर नये सिरे से उस महान् यज्ञ की आयोजना प्रारम्भ कर दी। बिहार में सङ्गठन की कमी थी। अस्तु, बीरभूमि के श्री० नलिनी वाक्च्य को भागलपुर के कॉलेज में पढ़ने के लिए भेजा गया। यहाँ आकर नलिनी एक पूरे बिहारी बन गए। सर के लम्बे-लम्बे बाल कटा कर उन्होंने टोपी पहननी शुरू कर दी। एक मोटे कपड़े का कुर्ता तथा फेटेदार धोती बाँधकर वे उस कॉलेज में अपने दिन बिताने लगे। इतना सब करने पर भी आप पुलिस की निगाह से बच न सके और विवश हो उन्हें कॉलेज छोड़कर फिर बङ्गाल वापस जाना पड़ा। सन् १९१७ के दिन थे। बङ्गाल में उस समय भी चारों ओर धर-पकड़ जारी थी। अस्तु, यहाँ पर भी अधिक समय तक उनका ठहरना न हो सका। परिस्थिति अधिक भयानक होते देख, कुछ दिनों के लिये कार्य को स्थगित कर, चुने-चुने कार्यकर्त्ताओं को किसी सुरक्षित स्थान पर रख देने की बात निश्चित की गई। नलिनी अपने चार साथियों को साथ लेकर गोहटी में एक किराये के मकान में रहने लगे। सोते समय रिवॉल्वर भरकर तकिए के नीचे रख लेते और बारी-बारी एक आदमी खिड़की में बैठकर पहरा दिया करता।

अभी अधिक दिन न बीते थे, कि किसी ने पुलिस को पता दे दिया कि अमुक मकान में कुछ बङ्गाली-युवक रह रहे हैं। बस, दूसरे ही दिन प्रातःकाल मकान घेर लिया गया। पहरे वाले युवक ने चुपके से और साथियों को जगा दिया, और सब लोग नीचे

आकर पुलिस पर गोलियाँ बरसाने लगे। पुलिस को इस प्रकार के आक्रमण का लेशमात्र भी ध्यान न था। अस्तु, सब के सब तितर-बितर हो गए और ये लोग भागकर पास की पहाड़ी पर जा पहुँचे।

तीसरे पहर का समय था। एकदम हज़ारों सशस्त्र सिपाहियों से पहाड़ी घिर गई। एक बार फिर बन्दूक़ तथा पिस्तौलों की बाढ़ से आकाश गूँज उठा। किन्तु इतनी सेना के सामने ये इने-गिने युवक कब तक ठहर सकते थे। अस्तु, दो को छोड़कर शेष सभी वहीं पर मारे गए। बचे हुए दोनों युवक किसी प्रकार आँख बचाकर निकल गए।

सात दिन पहाड़ी पर बिना खाए-पिए घूमते रहने से नलिनी के अङ्ग शिथिल होने लगे थे कि इसी बीच एक पहाड़ी कीड़ा भी इनके चिपक गया। नलिनी वहाँ से पैदल ही फिर बिहार पहुँचे; किन्तु वहाँ पर पहले ही से आपकी तलाश हो रही थी। अस्तु, बिहार से भी आप को भागना पड़ा।

बङ्गाल में हावड़ा-स्टेशन पर पहुँच कर आपको कोई भी साथी न मिला। शरीर बिलकुल कमज़ोर हो चुका था। दो सप्ताह से खाना तो क्या, अन्न के दर्शन भी न हो पाए थे। पहाड़ी कीड़ा अब भी उसी भाँति चिपका था। अस्तु, उसके विष के कारण आपको ज्वर भी आने लगा। पास में भरा हुआ रिवॉल्वर है। चलने की शक्ति नहीं। पैसे के नाते बिलकुल सफ़ाया है। अब

करें तो क्या करें ? निराश हो, नलिनी क़िले के मैदान में एक वृक्ष के नीचे पड़ रहा।

दो दिन इसी प्रकार और बीत जाने पर संयोगवश उनका एक साथी उधर से आ निकला। विष के अधिक फैल जाने से उनके अब चेचक भी निकल आई थी। साथी उनको यह दशा देखकर रो पड़ा। घर पर उठा तो ले गया, किन्तु अब इलाज कैसे हो। नलिनी को बाहर ले जाना मौत को निमन्त्रण देना था। अस्तु, साथी ने उनके शरीर पर हल्दी मिलाकर मट्ठे की मालिश करनी शुरू कर दी और छांछ ही उन्हें पीने को देने लगा।

भगवान् की लीला बड़ी विचित्र है ! नलिनी इसी से चङ्गा होने लगा। और जिस दिन दोनों ने एक साथ बैठ कर भोजन किया तो उसी साथी के शब्दों में उसके आनन्द की सीमा न रही। स्वस्थ हो जाने पर दोनों फिर काम पर निकले। संयोगवश घर से बाहर होते ही उक्त साथी गिरफ़्तार हो गया।

हमारे नायक ने हावड़ा में एक मकान किराए पर लिया और उसी में वे तारिणी मजूमदार के साथ रहने लगे। अभी चैन से बैठने भी न पाए थे कि फिर पुलिस के घेरे में आगए। दोनों साथियों ने बाहर आकर फिर सामना करना शुरू कर दिया। कुछ देर तक दोनों ओर से गोली चलने के बाद तारिणी वीर-गति को प्राप्त हुआ। नलिनी के भी गोली लग चुकी थी, किन्तु उसके अरमान अभी पूरे नहीं हुए थे। अफ़सर ने सामने

आकर कहा—"आत्म-समर्पण कर दो।" उत्तर में नलिनी के रिवॉल्वर की गोली से साहब की टोपी नीचे जा गिरी। इस बार एक धड़ाके की आवाज़ के साथ ही नलिनी भी ज़मीन पर आ गिरा।

वीर के गिरते ही उसे गिरफ़्तार कर लिया गया। पास में ही घोड़ा-गाड़ी खड़ी थी, नलिनी झूमता हुआ उसी में सवार हो गया।

अस्पताल के कमरे में नलिनी एक खाट पर पड़ा है। चारों ओर पुलिस-अफ़सरों का जमाव है।

"नाम क्या है ? कहाँ के रहने वाले हो ? पिता क्या करते हैं ? तुम्हें मरने से पहले अन्तिम बयान (*Dying Declaration*) देना होगा" आदि बातों के कहे जाने पर वीर ने धीरेसे कहाः

"*Don't disturb me please. Let me die peacefully.*"

अर्थात् —"तङ्ग न करो, कृपा कर मुझे शान्ति से मरने दो।"

Unhonoured, unsung और *unwept* जाने का कितना ज्वलन्त उदाहरण है। जीवन भर सङ्कटों के साथ खेल कर अन्त समय भी उसकी यही इच्छा है कि कोई उसे न जाने कि वह कौन था और कैसे मर गया। वह अपने मूल्य को छिपा कर *Unknown and unlamented* ही जाना चाहता था।

अस्तु, १५ जून, १९१८ को माँ का एक और पागल पुजारी उसकी गोद से सदा के लिए छिन गया।

श्री० ऊधमसिंह

अमृतसर ज़िले के कसैल नामक गाँव में ऊधमसिंह का जन्म हुआ था। विप्लव-पन्थी प्रायः जीवन के अन्तिम समय में ही संसार के समाने आते हैं। अस्तु, ऊधमसिंह के बाल्यकाल की बातें जानी न जा सकीं। केवल इतना ही पता है कि व्यवसाय के सम्बन्ध में वे अमेरिका चले गये थे और वहीं पर जब "ग़दर" अख़बार द्वारा भारत के स्वाधीनता-युद्ध की घोषणा की गई तो आप भी उसी में शामिल हो गए। सन् १९१४ में महायुद्ध के छिड़ते ही अमेरिका-निवासी भारतीयों ने देश को वापस आना शुरू कर दिया। एक दिन अमेरिका के आने वाले एक जहाज़ के भारतीय तट पर लगते ही उसके ३५० भारतीय यात्रियों में से सब के सब गिरफ़्तार कर लिए गए। भारत में जन्म लेकर वहीं के अन्न-जल से पले हुए इन कतिपय भारतीयों को अपने ही देश की स्वच्छन्द जलवायु से वञ्चित कर, सरकार ने पञ्जाब के विभिन्न जेलों में घुट-घुटकर प्राण देने के लिये बन्द कर दिया। इन ३५० यात्रियों में हमारे नायक ऊधमसिंह भी थे।

सन् १९१५ के अप्रैल मास में पञ्जाब में विराट् विप्लवा-योजन के विफल हो जाने पर प्रथम लाहौर-षड्यन्त्र के नाम से

अभियोग चलाया गया। आखिर न्याय ही तो ठहरा। जो ऊधमसिंह भारत की भूमि पर पैर रखने के पहले ही गिरफ़्तार कर लिए गए थे, उन्हें भी इस मामले में घसीट कर लाया गया। अदालत से आजन्म कालेपानी का दण्ड मिलने पर कुछ साल तक अण्डमन-जेल में रखने के बाद १९२१ के अन्त में आप को मद्रास के वेलारी-जेल लाया गया। पञ्जाब के अन्य राजनैतिक क़ैदियों से अलग एक दूसरे अहाते की सुन्सान कोठरी में अकेले रहकर ऊधमसिंह जीवन के दिन बिता रहे थे कि एक दिन जब प्रातःकाल अधिकारियों ने आकर उनकी कोठरी में देखा तो ऊधमसिंह ग़ायब थे। चारों ओर खोज-खबर होने लगी, किन्तु बहुत कुछ दौड़-धूप के बाद भी न तो किसी को ऊधमसिंह ही का पता लगा और न कोई यह समझ सका कि कोठरी का ताला ज्यों का त्यों बन्द रहने पर भी वे पुलिस की कड़ी निगरानी से कब, कैसे और किधर से निकल गए।

ऊधमसिंह जेल से निकलकर काबुल पहुँचे, किन्तु किसी कवि के कथनानुसार "बुरी होती है लौ लगी दिल की" अस्तु, उन्हें वहाँ चैन न आया और वे फिर भारत आ गए और कुछ दिन काम करने के बाद फिर वापस चले गए। इधर पुलिस को भी आपके बिना चैन न थी। ज़ोरों के साथ तलाश होने लगी और नोटिस भी निकाला गया। कई बार मौत के मुँह में आकर सकुशल निकल जाने के बाद एक दिन जब आप फिर भारत आ रहे थे, तो सरहद पर उन्हें गोली मार दी गई और वे फिर

देश को वापस न आ सके। गोली किसने मारी, यह आज तक एक राज़ की बात है।

पं० गेंदालाल दीक्षित

तीस नवम्बर, सन् १८८८ ई० को आगरा ज़िले की "बाह" तहसील के "मई" ग्राम में पं० गेंदालाल का जन्म हुआ। अभी आप तीन ही वर्ष के थे कि आपकी माता का देहान्त हो गया। आपके पिता का नाम पं० भोलानाथ जी दीक्षित था। हिन्दी मिडिल पास करने के बाद कुछ दिनों तक आप इटावे के हाई स्कूल में पढ़ते रहे। फिर आगरा चले गए और वहीं से मैट्रिकुलेशन पास किया। इच्छा होते भी आप और आगे न पढ़ सके और औरैया में डी० ए० वी० पाठशाला के अध्यापक हो गए।

बङ्ग-भङ्ग के दिन थे। स्वदेशी-आन्दोलन चल रहा था। आप लोकमान्य तिलक के भक्त तो थे ही, इधर महाराष्ट्र में शिवाजी के उत्सव मनाने का आन्दोलन चल खड़ा हुआ। समय की लहर से प्रभावित होकर हमारे नायक ने भी "शिवाजी-समिति" नाम की एक संस्था स्थापित की। इसका उद्देश्य नवयुवकों में स्वदेश के प्रति प्रेम तथा भक्ति के भाव उत्पन्न कराना था। कुछ दिनों तक तो पुस्तकों तथा समाचार-पत्रों द्वारा ही प्रचार-कार्य होता रहा, किन्तु बाद में बङ्गाली युवकों को प्राणों की, किञ्चन्मात्र भी चिन्ता न करते हुए, बम् तथा रिवॉल्वर का प्रयोग करते

देख पं० गेंदालाल ने भी उसी नीति के अनुसरण करने का निश्चय किया। बाद में उस नीति के अनुसार कार्य करने के लिए उपयुक्त साधन न मिल सके, अतएव आपने शिवाजी के मार्ग का अनुसरण करने का निश्चय किया।

कार्य आरम्भ करने पर आपको यू० पी० के शिक्षित समुदाय से बड़ी निराशा हुई। किस की आशाओं पर कार्य आरम्भ होगा, यही चिन्ता उन्हें दिन-रात घेरे रहती थी। बहुत कुछ विचार करने पर ध्यान आया कि देश में एक ऐसा भी दल है जिसमें अब भी वीरता के कुछ चिन्ह पाए जाते हैं। पाठक डरें नहीं, यह डाकुओं का दल था। इन लोगों के पास बहुधा अच्छे-अच्छे अस्त्र-शस्त्र भी होते हैं। देश का सभ्य समाज इन लोगों से इसलिए घृणा करता है कि ये लोग जीवन-निर्वाह तथा दुरेच्छापूर्ति के लिए ही डाके डालते तथा चोरी करते हैं। जो हो, पण्डित गेंदालाल जी ने इन्हीं लोगों के सङ्गठित करने का निश्चय किया। उनका विचार था, कि इन लोगों का संगठन कर अमीरों को लूटकर धन एकत्रित किया जाय, जिसके द्वारा शिक्षा का प्रचार हो और उस दल के लोगों को भी सदाचार की शिक्षा दी जावे ताकि वे ग़रीब तथा निर्बलों पर अत्याचार न कर सकें और इसी प्रकार धन एकत्रित कर अस्त्र-शस्त्र का संग्रह कर गवर्नमेण्ट को भयभीत करते रहें।

कुछ दिनों तक इसी प्रकार कार्य होता रहा। समिति के बहुत से सदस्य बन गए, किन्तु वे सब अशिक्षित थे। पण्डित

जी को इससे कुछ शान्ति न मिली। आप कुछ अध्ययन करने के लिए बम्बई गए। वहाँ से लौटने पर आपको कुछ ऐसे युवक मिले जिनसे आपको आशा बँधी कि संयुक्त प्रान्त में भी बङ्गाल की भाँति राजद्रोही समिति की नींव डाली जा सकती है। आप बहुत से नवयुवकों से मिले। उन्हें अस्त्र-शस्त्र दे उनका प्रयोग भी सिखाया। इन्हीं दिनों पण्डित जी की एक युवक से भेंट हुई। आप भी पुलिस के अत्याचारों से व्यथित होकर घर से निकल पड़े थे। आपने एक प्रसिद्ध धनुर्धर से शिक्षा प्राप्त की थी। इनके मिलने से समिति का कार्य ज़ोरों से चलने लगा। इन महाशय का नाम सुविधा के लिए हम "ब्रह्मचारी जी" धरे देते हैं। इन्होंने चम्बल तथा यमुना के बीहड़ों में रहने वाले डाकुओं का सङ्गठन किया और ग्वालियर-राज्य में निवास करने लगे। थोड़े ही दिनों में इनके पास एक बहुत बड़ा दल हो गया और धन भी ख़ूब एकत्रित किया गया।

इसी बीच गेंदालाल जी ने भी अपने कार्य को कुछ-कुछ विस्तार दिया। बहुत से शिक्षित युवक भी दल में सम्मिलित हो चुके थे। कुछ कार्य भी किया गया। किन्तु धन की कमी ने बाधा उपस्थित कर दी। ब्रह्मचारी जी का दल बहुत-सा धन एकत्रित कर चुका था। अस्तु, पण्डित जी ने उनसे मिल कर धन लाने का निश्चय किया। इस निश्चय के पूर्व ही "मातृवेदी" नामक संस्था का सङ्गठन किया जा चुका था। यही संस्था आगे चल कर मैनपुरी-षड्यन्त्र के नाम से प्रसिद्ध हुई। उक्त संस्था के

कार्यकर्त्ता भी चुने जा चुके थे।

मातृवेदी का सङ्गठन करने के बाद आप ब्रह्मचारी जी से मिलने ग्वालियर गए। उस समय ब्रह्मचारी जी के दल को गिरफ़्तार करने के पूरे प्रयत्न हो रहे थे। दल के एक व्यक्ति हिन्दूसिंह को प्रभोलन दिया गया कि यदि वह किसी भाँति इस दल को गिरफ़्तार करा दे तो उसे राज्य की ओर से इनाम भी मिलेगा और जायदाद भी दी जावेगी। वह राज़ी हो गया और दल को पकड़वाने का षड्यन्त्र रचा गया।

डाका डालने का एक स्थान निश्चय किया गया। निवास-स्थान से जगह इतनी दूर थी कि पहुँचने में दो दिन लगें और एक पड़ाव जङ्गल में देना पड़े। उस समय दल में केवल ८० मनुष्य थे। जब एक रात चल कर सब थक गए और भूख भी लगी तो राज्य के भेदिए ने ले जाकर सब को निश्चित जङ्गल में ठहरा दिया और स्वयं अपने किसी सम्बन्धी के यहाँ भोजन लेने गया। सब सामान पहले ही से ठीक था। थोड़ी देर में गर्मा-गरम पूड़ियाँ आ गईं। आज कुछ होना ही ऐसा था कि जो ब्रह्मचारी जी कभी किसी के यहाँ का भोजन न करते थे, उन्होंने भी विश्वासघाती के आग्रह करने पर पूड़ियाँ ले लीं। खाते ही ज़बान ऐंठने लगी। उसी समय विश्वासघाती पानी लेने के बहाने वहाँ से चल दिया। पूड़ियों में इतना ज़हर मिला था कि पेट में पहुँचते ही उसने अपना असर दिखाया। ब्रह्मचारी जी ने सब को पूड़ियाँ न खाने का आदेश कर विश्वासघाती पर

गोली चलाई, किन्तु विष की हलाहलता के कारण निशाना ख़ाली गया। बन्दूक़ की आवाज़ होते ही अन्य साथी सँभल भी न पाए थे कि चारों ओर से सैकड़ों बन्दूक़ों की आवाज़ें सुनाई दीं। जङ्गल में ५०० सवार छिपे खड़े थे। दोनों ओर से ख़ूब गोली चली। जब तक इन लोगों में कुछ भी होश रहा, बराबर गोली चलाते रहे। ब्रह्मचारी जी के यों तो हाथ-पैरों में कई गोलियाँ लग चुकी थीं, किन्तु अन्त में एक गोली से हाथ बिलकुल घायल हो गया और बन्दूक़ हाथ से गिर गई। पं० गेंदालाल के भी कई छर्रे लगे थे। एक छर्रा उनकी बाँई आँख में लगा, जिसके कारण वह आँख जाती रही। उस समय दल के लगभग ३५ मनुष्य खेत रहे।

पं० गेंदालाल जी, ब्रह्मचारी जी तथा उनके अन्य साथी ग्वालियर के क़िले में बन्द किए गए। गिरफ़्तारी का समाचार सुनकर "मातृवेदी" के कुछ सदस्य क़िले में जाकर महल देखने के बहाने से पण्डित जी से मिले। सब हाल जान कर निश्चय किया गया कि जैसे भी हो, पण्डित जी को छुड़ाया जाय। नेता की गिरफ़्तारी से शिक्षित युवकों के हृदयों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे दूने उत्साह से काम करने लगे। कार्य ने अच्छा विस्तार पाया। शक्ति का भी सङ्गठन हो गया था, किन्तु कई असावधानियों के कारण मामला खुल गया और गिरफ़्तारियाँ शुरू हो गईं। मामला बहुत बढ़ गया और मैनपुरी-षड्यन्त्र के नाम से कोर्ट में अभियोग चला।

सरकारी गवाह सोमदेव ने पं० गेंदालाल को इस षड्यन्त्र का नेता बताते हुये ग्वालियर में उनके गिरफ़्तार होने का हाल कह सुनाया। अस्तु, आप ग्वालियर से मैनपुरी लाए गए। क़िले में बन्द रहने तथा अच्छा भोजन न मिलने के कारण आपका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था। आप इतने दुर्बल हो गए थे कि स्टेशन से मैनपुरी-जेल तक जाने में (केवल एक मील में) आठ जगह बैठना पड़ा। आपको तपेदिक़ का रोग हो गया था। जेल पहुँच कर आपको सारा हाल मालूम पड़ा।

आपने पुलिस वालों से कहा कि तुम लोगों ने इन बच्चों को क्यों गिरफ़्तार किया है। बङ्गाल तथा बम्बई के विद्रोहियों में से बहुतों के साथ मेरा सम्बन्ध है। मैं बहुतों को गिरफ़्तार करवा सकता हूँ, इत्यादि। दिखावे के लिए दो-चार नाम भी बता दिए। पुलिस वालों को निश्चय हो गया कि क़िले के कष्टों के कारण यह सारा हाल खोल देगा। अब क्या था, पण्डित जी सरकारी गवाह समझे जाने लगे। उन्हें जेल से निकाल कर सरकारी गवाहों के साथ रख दिया गया। आधी रात के समय जब पहरा बदला गया तो कमरे में अँधेरा था। लालटेन जलाने पर मालूम पड़ा कि पं० गेंदालाल एक और सरकारी गवाह रामनारायण के साथ ग़ायब हैं। बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी कुछ फल न हुआ और उनमें कोई भी बाद को पुलिस के हाथ न आया।

पं० गेंदालाल रामनारायण के साथ भागकर कोटा पहुँचे।

वहाँ आपके एक सम्बन्धी थे। उन्होंने आपकी बड़ी सहायता की। किन्तु आपकी वहाँ भी बड़ी तलाश हो रही थी, अतएव उस जगह अधिक दिन न ठहर सके। कोटा से विदा होने के पूर्व एक विशेष घटना और घटी। रामनारायण का मस्तिष्क फिर बिगड़ गया। उसके दिल में जाने क्या आई कि पण्डित जी के भाई ने जो रुपए तथा कपड़े दिए थे उन्हें ले, कुछ बहाना बता, आपको एक कोठरी में बन्द कर भाग गया। पण्डित जी उस कोठरी में तीन दिन तक बन्द रहे। रोग का ज़ोर, निर्बलता, फिर एक कोठरी में तीन दिन तक बिना जल-अन्न बन्द रहना, यह पण्डित जी का ही साहस था। अन्त में व्यथित हो, किसी से कोठरी की ज़ञ्जीर खुलवाई और पैदल ही वहाँ से चल दिए। जो व्यक्ति एक मील चलने में आठ बार बैठा हो, वह किस प्रकार इस अवस्था में पैदल सफ़र कर सकता है? एक पैसा भी पास न था, किन्तु फिर भी जैसे-तैसे आगरा पहुँचे। आगरा में दो-एक मित्रों ने कुछ सहायता दी। उस समय पण्डित जी की हालत बहुत ख़राब हो रही थी। रोग ने साङ्घातिक रूप धारण कर लिया था। कोई भी ऐसा न था, जिसके यहाँ एक दिन भी ठहर सकते। सब मित्रों पर आपत्ति आई हुई थी। अस्तु—

कहीं भी ठहरने का स्थान न मिलने पर विवश हो, आप घर चले गए। घर वालों को पुलिस ने बुरी तरह सता रक्खा था। आपको देखकर सब बड़े भयभीत हुए। सोचा, पुलिस

को बुला कर आपको गिरफ़्तार करा दिया जाय। इस पर आप-ने अपने पिता को बहुत समझाया और कहा—"आप घबड़ाइए नहीं, मैं बहुत शीघ्र आपके यहाँ से चला जाऊँगा।" अन्त में दो-तीन दिन बाद आपको घर त्यागना पड़ा। उस समय आपको दस क़दम चलने पर भी मूर्च्छा आ जाती थी। आपने दिल्ली जाकर जीवन-निर्वाह के लिए एक प्याऊ पर नौकरी कर ली। स्वास्थ्य दिनोंदिन बिगड़ रहा था। अस्तु, अपनी अवस्था का परिचय देते हुए आपने अपने एक निकट आत्मीय को पत्र लिखा। पत्र पाते ही वह सज्जन आपकी पत्नी को साथ लेकर देहली आ गए।

बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी अवस्था दिनोदिन ख़राब होती गई और आपको घड़ी-घड़ी पर मूर्च्छा आने लगी। आपकी स्त्री फूट-फूट कर रोने लगी। उस समय का हृदय-विदारक दृश्य आपके आत्मीय से न देखा गया। वह चुपचाप बाहर आकर रोने लगा। पण्डित जी को जब होश आया तो आपने आत्मीय को सान्त्वना देते हुए कहा—"तुम रोते क्यों हो? देश की सेवा में मेरा यह हाल हुआ है। दुखिया भारत की स्थिति देख कर मेरी यह अवस्था हो गई है। तुम लोग दुख मत करो। यदि देश-सेवा हेतु मेरे प्राण चले गए तो मैंने अपना कर्त्तव्य पालन किया। यदि तुम लोग भी उस कार्य में सहायता करोगे तो मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी।" फिर पत्नी को सम्बोधन कर पूछा—"तुम क्यों रोती हो?"

पत्नी ने रोते हुए उत्तर दिया—"मेरा इस संसार में कौन है ?"

पण्डित जी एक ठण्डी साँस ले, मुस्कराकर कहने लगे—"आज लाखों विधवाओं का कौन है ? लाखों अनाथों का कौन है ? २२ करोड़ भूखे किसानों का कौन है ? दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई भारत-माता का कौन है ? जो इन सब का मालिक है, वही तुम्हारा भी। तुम अपने आपको परम सौभाग्यवती समझना, यदि मेरे प्राण इसी प्रकार देश-प्रेम की लगन में निकल जावें और मैं शत्रुओं के हाथ न आऊँ। मुझे दुख है तो केवल इतना ही कि मैं अत्याचारियों को अत्याचार का बदला न दे सका, मन की मन में ही रह गई। मेरा यह शरीर नष्ट हो जायगा, किन्तु मेरी आत्मा इन्हीं भावों को लेकर फिर दूसरा शरीर धारण करेगी। अब की बार नवीन शक्तियों के साथ जन्म ले, शत्रुओं का नाश करूँगा।" उस समय उनके मुख पर एक दिव्य ज्योति का प्रकाश-सा छा गया था। आप फिर कहने लगे—रहा खाने-पीने का, तुम्हारे पिता जीवित हैं। तुम्हारे भाई हैं, मेरे कुटुम्बी हैं; और फिर मेरे मित्र हैं जो तुम्हें अपनी माता समझ तुम्हारा आदर करेंगे। तुम किसी बात की चिन्ता न करो। मुझे केवल यही दुःख है। कि अन्तिम समय किसी मित्र से न मिल सका।"

इसके बाद आपको फिर बेहोशी आगई। अवस्था भयङ्कर हो गई थी। आत्मीय ने सोचा, यदि वहीं पर प्राण निकल गये तो मृतक संस्कार करना भी कठिन हो जायगा और यदि

पुलिस को पता चल गया तो और भी विपत्ति आएगी। अस्तु, वे उन्हें सरकारी अस्पताल में भरती करा, उनकी स्त्री को यथास्थान पहुँचा आए। जब लौटकर आए तो देखा पण्डित जी चुपचाप बिस्तर पर पड़े थे। अब पं० गेंदालाल दीक्षित इस संसार में नहीं थे, केवल उनका शरीर पड़ा था। उस समय दिन के दो बजे थे और दिसम्बर, सन् १९२० की २१ वीं तारीख थी।

जिस देश के लिए सर्वस्व त्यागा, सारे कष्ट सहे, और अन्त में प्राण तक दे दिए, उस देश में किसी ने यह भी न जाना कि पण्डित गेंदालाल कहाँ विलीन हो गए! किन्तु जब स्वतन्त्र भारतवर्ष का इतिहास लिखा जायगा, उस समय देश-वासियों को आपकी याद आएगी, और आप का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा।

श्री० खुशीराम

सन् १९१९ का वर्ष भी भारत के इतिहास में अमर रहेगा। युद्ध के पुरस्कार में रौलट ऐक्ट पाने पर देश में एक विराट् आन्दोलन उठ खड़ा हुआ, जिसके परिणाम में जलियानवाला और मार्शल लॉ तक की नौबत आ गई। उस समय लोग बहुत त्रस्त हो उठे थे। एकाएक ऐसी कठोरता उन पर होगी, यह वे न जानते थे। परन्तु उस त्रस्त समय में भी हमारे नायक श्री० खुशीराम जी-जैसे वीर अपनी जान पर खेलकर अपना नाम अमर कर गए।

आप एक निर्धन परिवार में २७ श्रावण, सम्वत् १९३५ में पैदा हुए थे। पिता का नाम लाला भगवानदास था। जाति के अरोड़ा थे। जन्म के थोड़े ही दिनों बाद पिता का देहान्त हो गया था। आपका जन्म-स्थान पिण्डी, सैदपुर, जिला झेलम था। पिता की मृत्यु के बाद लाहौर नवाकोट के अनाथालय में आपका पालन-पोषण हुआ। आपका शरीर बहुत सुन्दर तथा सुदृढ़ था, बहुत शक्तिशाली थे। जन्म-पत्री लिखने वाले पण्डित ने कहा था, यह बालक हाथी की तरह बलवान् होगा और इसका नाम अमर हो जाएगा। उस समय आपका नाम भीमसेन रक्खा गया था, परन्तु बाद में "ख़ुशीराम" नाम से ही वे प्रसिद्ध हुए। आप डी० ए० वी० कॉलेज, लाहौर के विद्यार्थी थे। १९१९ में १९ वर्ष की आयु में शास्त्री की परीक्षा देकर छुट्टियों का उपभोग करने जम्बू चले गए थे। इधर ३० मार्च के बाद ६ अप्रैल को समस्त भारत में हड़ताल की बात थी। अस्तु, आप उधर न ठहर, तुरन्त लाहौर आगए और कॉलेज-विद्यार्थियों के जुलूसों का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया।

१२ अप्रैल को लाहौर की बादशाही मस्जिद में एक विराट् सभा हुई। असंख्य लोगों का जमाव था, व्याख्यान हुए और ख़ूब जोश बढ़ा। सभा विसर्जित हुई और लोग शहर की ओर जुलूस की शक्ल में चल दिए। झण्डा हमारे नायक के हाथ में था। कोई एक फ़र्लाङ्ग के अन्तर पर ही हीरा मण्डी बाज़ार है। यहीं से वे नगर में घुसना चाहते थे। आगे फ़ौज खड़ी थी। उस

समय सेना की अध्यक्षता नवाब मोहम्मदअली (बरकतअली) के हाथ में थी। आज्ञा हुई, सब लोग बिखर जाओ। जुलूस न निकलने दिया जायगा। जुलूस के नेता श्री० .ख़ुशीराम ने कहा—"जुलूस निकलेगा और ज़रूर निकलेगा; और जायगा भी इसी मार्ग से।" नवाब ने आकाश में गोली चलवाई। लोग डर के मारे इधर-उधर भागने लगे, तब सिंह की तरह गरजकर .ख़ुशीराम ने कहा, "भागकर ख़ाहमख़ाह कायर क्यों बनते हो? मरना तो एक ही दिन है, फिर वीरों की तरह क्यों न मरो। बड़ी लज्जा की बात है कि आज गीदड़ों की तरह भागकर जान बचाने की फ़िक्र में उठते-पड़ते भाग रहे हो। तुम लोगों को शर्म आनी चाहिए।" आदि-आदि। लोग रुक गए। नवाब ने फिर कहा—"जुलूस मुन्तशिर कर दो!" .ख़ुशीराम उसी तरह गरजकर बोले—"न, यह न होगा। हमारा जुलूस इसी तरह चलेगा।" वे आगे बढ़े और उधर से गोली चली। अब की गोली हवा में न गई। सीधी .ख़ुशीराम की छाती में आ रही। एक गोली लगी, .ख़ुशीराम दो क़दम आगे बढ़े। एक और लगी, वे और आगे बढ़े। इस तरह एक-एक करके सात गोलियाँ छाती में समा गईं, परन्तु वह वीर उसी तरह आगे बढ़ता चला गया। आठवीं गोली माथे में दाईं ओर और नवीं बाईं ओर लगी। अब सँभलना मुश्किल हो गया और वे अनन्त निद्रा में सो गए और फिर न उठे।

उस दिन उनके शव के साथ लोगों का समुद्र ही उमड़

आया था। तत्कालीन समाचार-पत्रों की रिपोर्ट थी कि उन लोगों की संख्या पचास हज़ार से भी अधिक थी।

ख़ुशीराम अमरत्व प्राप्त कर गए, वे आज इस संसार में नहीं हैं, परन्तु उनका नाम, कार्य और साहस आज भी जीवित है।

श्री० गोपीमोहन साहा

तरुण तपस्वी आ, तेरा, कुटिया में नव स्वागत होगा।
दोषी, तेरे चरणों पर फिर मेरा मस्तक नत होगा॥

सब प्रकार के उपायों में असफल हो जाने पर क्रान्तिकारी दल को छिन्न-भिन्न करने के लिए बङ्गाल-सरकार ने ऑर्डिनेन्स की शरण ली थी। मनमानी गिरफ़्तारियाँ होने लगीं। जिसको चाहा, पकड़कर अनिश्चित समय के लिए जेल में फेंक दिया। न कोई सुबूत की आवश्यकता थी और न अदालत में जज के सामने लाने का कोई काम था। इतना ही नहीं, जेल में बेचारे निरपराध युवकों पर अत्याचारों की भी कमी न थी। कहीं-कहीं पर एक प्रकार से हद ही कर दी गई। उन दिनों बङ्गाल में सर चार्ल्स् टेगार्ट का ही राज्य था। अस्तु, वे लोगों की आँखों में काँटे की भाँति खटकने लगे।

क्रान्तिकारी दल प्रायः मृतप्राय-सा हो चुका था। एक-एक कर सभी कार्यकर्त्ता पकड़े जा चुके थे। चारों ओर से यही सुनाई

पड़ने लगा कि क्रान्तिकारी दल समाप्त हो गया। किन्तु उस दिन एक बालक को अङ्गरेज की हत्या करने के बाद वीरतापूर्वक अदालत में अपना अपराध स्वीकार करते देख, सारा देश आश्चर्य से चौंक पड़ा। लोगों ने उसकी ओर श्रद्धा-भरी निगाह से देखा। किसी ने कहा वह मस्ताना था, गपाल था, दीवाना था; किसी ने कहा उसे देश-प्रेम की लगन थी और उसके हृदय में थी प्रतिहिंसा की आग। एक ने उसे हत्यारा, घातक और पापी के नाम के सम्बोधित किया, तो दूसरे ने उसके काम में निस्वार्थ देश-सेवा की झलक देखी। किन्तु उस पागल ने फाँसी के तख्ते पर खड़े होकर बड़ी शान से, उच्च स्वर में केवल इतना ही कहा कि—"मैं तो टेगार्ट को मारने आया था। निर्दोष डे साहब के मारे जाने का मुझे हृदय से दुख है।"

विद्यार्थी जीवन में ही गोपीमोहन क्रान्तिकारी दल के सदस्य बन गए थे। मि० टेगार्ट के पिछले कारनामे तथा उस समय के किए गए अत्याचारों से उसके हृदय में प्रतिहिंसा की आग सुलग उठी। धीरे-धीरे उसका स्वभाव भी बदलने लगा। जो मोहन, मोहन बनकर पहले सबको हँसाया करता था, उसने अब मानों एकदम मौन-व्रत धारण कर लिया। उसकी चञ्चलता गम्भीरता में परिणत हो गई। अब वह एकान्त में बैठकर न जाने घण्टों तक क्या सोचा करता था।

देखने वाले बतलाते हैं, कि कुछ दिनों बाद उसकी अशान्ति इतनी बढ़ गई कि वह बात करते-करते टेगार्ट का नाम लेकर

चिल्ला पड़ने लगा। एक दिन तो रात में सोते-सोते टेगार्ट को ललकार कर उठ बैठा। उसके बाद वह एक प्रकार से पागल-सा हो गया। सोते-जागते हर समय उसे टेगार्ट का ही ध्यान रहने लगा।

मन ही मन न जाने क्या निश्चिय कर, एक दिन वह टगार्ट के बँगले के सामने जाकर घूमने लगा। कुछ देर बाद उस बँगले से एक अङ्गरेज महोदय के बाहर निकलते ही पिस्तौल की आवाज़ आई और वे महाशय ज़मीन पर आ गिरे। क्रोध के आवेश में बालक ने पिस्तौल की सभी गोलियाँ एक-एक कर उन्हीं पर समाप्त कर दीं। किन्तु यह क्या? यह तो टेगार्ट नहीं हैं। मोहन ने पिस्तौल ज़मीन पर पटक दी और पुलिस ने बढ़कर उसे ज़ञ्जीरों से जकड़ लिया।

अभियोग चलने पर उसने सब बातें मान लीं। अस्तु, ×× की हत्या के अपराध में उसे फाँसी की सज़ा हुई। उस समय मोहन के भोले मुख पर अहङ्कार-मिश्रित गर्व की जो एक रेखा दिखलाई पड़ी थी वह उसी प्रकार के कुछ ही मनुष्यों में देखने को मिलती है।

गोपीमोहन को गए आज कितने वर्ष हो गए, इसी प्रकार और भी कितने ही वर्ष बीत जायँगे। इस समय भारत उनके पार्थिव शरीर भले ही भुला दे, किन्तु उनके उस भयानक कार्य के पीछे जो महान् आदर्श छिपा था, उसे भुलाने का सामर्थ्य उसमें कभी भी न हो सकेगा।

बोमेली-युद्ध के चार शहीद

(कर्मसिंह, उदयसिंह, विशनसिंह तथा महेन्द्रसिंह)

प्रसिद्ध बबर अकाली-आन्दोलन के, मौत के साथ खिलवाड़ करने वाले अनेक नर-रत्नों में से श्री० कर्मसिंह जी, श्री० उदयसिंह जी, श्री० विशनसिंह जी और श्री० महेन्द्रसिंह जी भी हैं। कार्यक्षेत्र में पैर बढ़ाने के बाद इन्होंने फिर कभी पीछे फिर कर देखने की इच्छा तक नहीं की। प्यारे देश को ठोकरों पर ठोकरें लगते देख, वे अपने आपको सँभाल न सके। कैनेडा में भारतीयों के प्रति किए गए अत्याचार, कामागाटा मारू की दुर्घटना, बजबज का हत्याकाण्ड, जलियान-वाला का हृदय विदारक दृश्य, मार्शल लॉ और गुरु के बाग़ में निहत्थों पर डण्डेबाज़ी आदि बातें वे और अधिक सहार न सके। उस समय परतन्त्रता-पाश को तोड़-फेंकने के लिए अधीर होकर उन्होंने जिस मार्ग का अनुसरण किया था, प्रस्तुत कहानी उसी का एक प्रतिबिम्ब-मात्र है।

उपरोक्त चार वीरों में से श्री० कर्मसिंह दौलतपुर के, उदयसिंह रामगढ़ झुगियाँ के, विशनसिंह मझत के और श्री० महेन्द्रसिंह पिण्डोरी गङ्गासिंह के रहने वाले थे जिस समय किशनसिंह गर्गज्ज ने बबर अकाली आन्दोलन की नींव डाली, तो इन चारों ने ही शान्तिमय असहयोग-आन्दोलन को छोड़, उसमें भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। बहादुरी में चारों ही एक-

दूसरे से बढ़कर थे और ये लोग सदैव ही कठिन तथा मुश्किल काम को ही पसन्द करते थे। कुछ दिनों के बाद कर्मसिंह तथा उदयसिंह मुख्य कार्यकर्त्ताओं में गिने जाने लगे।

अकाली-मत की दीक्षा लेने के बाद कर्मसिंह जी ने गाँव-गाँव घूमकर व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। आप दीवानों में जाकर लोगों को समझाते कि हम पर आए-दिन जो भी अत्याचार ढाए जा रहे हैं, उन सब का मूल कारण हमारी अपनी ही कमज़ोरी है और जब तक हम अपने पैरों खड़े होकर गुलामी को दूर नहीं करते, तब तक इसी भाँति ठोकरें खाते रहेंगे, इत्यादि। कुछ ही दिन काम कर पाए थे कि गिरफ़्तारी के सामान होने लगे। वॉरण्ट निकलने पर आप फ़रार हो गए और कार्य करते रहने पर भी अन्त समय तक पुलिस के हाथ न आए।

कर्मसिंह निरे सिपाही हों, सो बात न थी, वे एक अच्छे वक्ता थे और गाना भी जानते थे। "बबर अकाली" नामक पत्र का सम्पादन भी इन्हीं के द्वारा होता था। एक मस्त प्रेमी की भाँति उन्हें यदि किसी बात की चिन्ता थी, तो अपने काम की। वे रात-दिन काम करके भी थकते न थे। आज किसी दीवान में व्याख्यान दिया जा रहा है, तो कल विश्वासघाती को दण्ड देने का विधान हो रहा है और परसों रुपया लेकर हथियार ख़रीदने के लिए कहीं दूर जाने की तैयारी हो रही है!

इधर पुलिस भी आपके लिए बहुत बेचैन थी। जगह-जगह पर पुलिस के आदमी तैनात किए गए, ईनाम भी घोषित कया

गया, मगर वे फिर भी हाथ न आए

उदयसिंह जी से आपका बहुत घनिष्ट सम्बन्ध था। अधिकतर वे दोनों एक ही साथ रहा करते थे। फ़रार भी दोनों साथ ही साथ हुए थे और अन्तिम समय में भी दोनों ने साथ ही साथ लड़कर प्राण दिए। प्रेम तथा मैत्री का कैसा ज्वलन्त उदाहरण है?

पुलिस को बबर अकालियों के सम्बन्ध में भेद देने के अपराध में उदयसिंह ने १४ फ़रवरी, १९२३ को हैयतपुर के दीवान को मार दिया। आपका कहना था कि मैं दुश्मन को छोड़ सकता हूँ, किन्तु घर के भेदिए को नहीं छोड़ सकता। इसके बाद २७ मार्च, सन् १९२३ को उसी अपराध में आप दोनों साथियों ने कुछ और साथियों को लेकर बड़बलपुर के हज़ारासिंह का बध किया। इसके अतिरिक्त और भी कई-एक देश-द्रोहियों को उनके आपराध का दण्ड इन लोगों ने दिया था। दण्ड का विधान केवल मौत ही न था। अपराध कम होने पर उसकी सम्पत्ति लेकर या नाक-कान काट कर भी छोड़ दिया जाता था।

एक दिन जब ये चारों वीर कपूरथला-राज्य के बोमेली गाँव के पास से होकर जा रहे थे, तो किसी भेदिए ने पुलिस-सुपरिन्टेण्डेण्ट मिस्टर स्मिथ को इस का पत दे दिया। बस, उसी क्षण फ़ौज के कुछ पैदल सिपाही और कुछ सवार लेकर उन्होंने इनका पीछा किया। एडिशनल-पुलिस के सब-इन्स्पेक्टर फ़तेह ख़ाँ को भी पचास आदमी लेकर दूसरी ओर से भेजा

गया। मि० स्मिथ को पीछा करते देख, इन लोगों ने चौंता साहब के गुरुद्वारे में, जो पास ही में था, पनाह लेने का निश्चय किया। किन्तु पीछे से गोली चल रही थी, अतः ये लोग शत्रुओं का मुक़ाबला करते हुए गुरुद्वारे की ओर हटने लगे। अभी तक फ़तेह खाँ के आदमी एक ओर छिपे खड़े थे, किन्तु गोली चलने की आवाज़ सुनकर वे लोग भी बाहर आ गए। गुरुद्वारे के चारों ओर एक नाला था, ये चारों वीर स्मिथ की सशस्त्र सेना का वीरतापूर्वक सामना करते हुए इस नाले के पास पहुँच गए और पानी में घुसे ही थे कि पीछे से कुछ दूर पर खड़े हुए फ़तेह खाँ के आदमियों ने भी गोली बरसानी शुरु कर दी। एक ओर तो अस्त्र- शस्त्र से सजी हुई फ़ौज और दूसरी ओर चार आदमी— और वे भी दो सेनाओं के बीच में! भला वे कब तक सामना कर सकते थे। अस्तु, कुछ देर इसी प्रकार सामना करने के बाद उदयसिंह और महेन्द्रसिंह गोली खाकर पानी में ही गिर गए।

कर्मसिंह किसी भाँति नाले को पार कर गए और दूसरे किनारे से रात तक पानी में खड़े होकर शत्रुओं पर गोली चलाने लगे। फ़तेह ख़ाँ ने दूसरे किनारे से पुकार कर कहा—"आत्म-समर्पण कर दो!" परन्तु उस वीर ने तो मरने और मारने की शपथ खाई थी। उसने 'न' कहते हुए फ़तेह ख़ाँ पर गोली चलाई। दुर्भाग्यवश निशाना ख़ाली गया और दूसरे ही क्षण वह वीर भी मत्थे पर गोली खाकर सदैव के लिये उसी पानी में गिर गया!

जिस समय कर्मसिंह ने नाले की दूसरी ओर से सेना के सभी लोगों क ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रक्खा था। उस समय विशनसिंह जी, जो अभी नाले के इसी किनारे पर थे, अवसर पाकर पास की नरकुल की झाड़ी में छिप गए। नरकुल के हिलने पर सन्देह हो गया और दो आदमी वहाँ देखने के लिए भेजे गए। उनके पास आते ही 'सत् श्री अकाल' के नाद के साथ ही विशनसिंह ने उन पर हमला कर दिया और तलवार के पहले ही हाथ में एक को बुरी तरह घायल कर दिया। दूसरे के कुछ दूर हट जाने पर जब आप नाले को पार करने का प्रयत्न कर रहे थे, तो उस दूसरे सिपाही ने उन पर गोली चला दी और इस प्रकार आप भी अपने तीन और साथियों की भाँति उसी नाली में गिर गए!

यह घटना पहली सितम्बर, सन् १९२३ की है।

श्री० धन्नासिंह

पंजाब के बड़बलपुर नामक एक गाँव में उनका बाल्यकाल बीता था। साहस तथा उत्साह तो उनकी नस-नस में भरा था और भय स्वयं उनसे भय खाता था। गुरु के बाग़ में अकालियों पर किए गए अत्याचारों को देखकर आप शान्तिमय आन्दोलन के विरोधी हो गए। इन्हीं दिनों आप ही जैसे विचार वाले कुछ और उन्मत्त वीर भी देश को परतन्त्रता-पाश से छुड़ाने की उधेड़-बुन में किसी दूसरे मार्ग की आयोजना कर

रहे थे। बस, बबर अकाली-आन्दोलन की नींव पड़ी और आपने भी उसी में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया।

प्रचार-कार्य तथा सङ्गठन के साथ ही विश्वासघातियों को दण्ड देने में भी आपने कुछ कम भाग नहीं लिया। पुलिस के साथ मिलकर जिस समय पटवारी अर्जुनसिंह अकालियों को हर तरह से नुक़सान पहुँचा रहा था उस समय उसके मारने के दोनों प्रयासों में आपका काफ़ी हाथ था। बाद में १० फ़रवरी, १९२३ को अपने तीन और साथियों को लेकर आपने रानी-थाने के बिशनसिंह नामक जैलदार को पुलिस का भेदिया होने के कारण मार दिया। इस काम में आपके साथ फाँसी पाने वाले श्री० सन्तसिंह भी थे। बाद में एक नोटिस द्वारा इस बात का एलान भी किया गया था कि बिशनसिंह केवल 'सुधार' के लिए मारा गया है।

श्री० बन्तासिंह धामियाँ द्वारा मारे जाने वाले 'बूटा' लम्बरदार की हत्या में भी आप शामिल थे। कहते हैं कि इस लम्बरदार ने कितने ही निर्दोष अकाली वीरों को योंही पुलिस के जाल में फँसा दिया था और इसी कारण उसमें 'सुधार' की आवश्यकता समझ इन लोगों ने यह काम किया था।

इसके कुछ ही दिनों बाद १९ मार्च, १९२३ को तीन और साथियों को साथ लेकर मिस्त्री लाभसिंह नामक व्यक्ति का 'सुधार' किया। और फिर २७ मार्च, १९२३ को बड़बलपुर गाँव के 'हज़ारा' नामक व्यक्ति को, जिसने कि पुलिस को आपके बारे

में बहुत सी बातों का पता दे रक्खा था, जा मारा। इस हत्या के बारे में 'बबर अकाली' नामक पर्चे में इस प्रकार लिखा गया था—"इनाम × × आज २७ मार्च को बइबलपुर के हजारासिंह को जमीन के तीन स्क्वेयरस् अर्थात् तीन गोलियाँ दी गईं।"

इसी प्रकार विश्वासघातियों तथा देश-द्रोहियों को उनके अपराध का पुरस्कार देते और आन्दोलन का प्रचार करते दिन बीत रहे थे, कि एक दिन २५ अक्टूबर, १९२३ को आप पुलिस के घेरे में आ गए। आज तक भारत में जितने भी विप्लव के प्रयास हुए हैं, प्रायः उन सभी की असफलता का कारण अपने भाइयों का विश्वासघात ही रहा है। अस्तु, आप ज्वालासिंह नामक एक दूहरे व्यक्ति के पास बालक दलीपा की गिरफ्तारी के बारे में पूछ-ताछ करने गए। उन्हें क्या पता था, कि दलीपसिंह पर इन्हीं ज्वालासिंह की ही कृपा हुई है। ज्वालासिंह ने धन्नासिंह को एक ऊख के खेत में बिठला दिया और स्वयं किसी बहाने से जाकर पुलिस-सब-इन्स्पेक्टर गुलजारासिंह को सूचना दे दी कि धन्नासिंह अमुक स्थान पर मौजूद है। इस पर दोनों ने होशियारपुर जाकर पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट मिस्टर हॉर्टन को इस बात की सूचना दी। सुनते ही हॉर्टन ने ज्वालासिंह से धन्नासिंह को होशियारपुर के मननहाना नामक गाँव के कर्मसिंह के चौबारे में लाकर ठहराने को कहा। ज्वालासिंह ने ऐसा ही किया। दूसरे दिन रात को ये दोनों ही कर्मसिंह के यहाँ

बैलों के बाड़े में चारपाइयों पर सो रहे। आधी रात का समय था, ज्वालासिंह पुलिस को आता देख भाग गया। पुलिस बाड़े की ओर बढ़ी ही थी, कि धन्नासिंह भी उठकर उसी ओर को चलते बने, जिधर ज्वालासिंह गया था। पुलिस वालों ने, जिन्होंने कि पहले व्यक्ति को जान-बूझ कर निकल जाने दिया था, आपको चारों ओर से घेर लिया। इस समय वे कुल मिला कर ४० व्यक्ति थे। घिर जाने पर आप अभी अपना रिवॉल्वर निकाल ही रहे थे कि पुलिस-सब-इन्स्पेक्टर गुल्ज़ारासिंह ने आप पर लाठी चला दी। अचानक इस प्रहार को बचाने के व्यर्थ-प्रयास में धन्नासिंह जी अपने को सँभाल न सके और ज़मीन पर गिर गए। अब क्या था? तुरन्त वो लोग आप पर टूट पड़े और बहुत मुश्किल के बाद आपके पकड़ने में समर्थ हुए। हथकड़ी पड़ जाने के बाद भी आपने कई बार अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया था। अस्तु, आपको एक स्थान पर बिठलाकर दो-तीन पुलिस के आदमियों ने हथकड़ी की ज़ञ्जीर पकड़ ली और दोनों हाथ ऊपर उठाए रक्खे गए। डर बड़ी चीज़ है। अस्तु, इस पर भी सन्तोष न होने पर एक व्यक्ति ने पीछे से आपकी दोनों कलाइयाँ भी पकड़ लीं।

समय की भी क्या ही विलक्षण गति है! जो धन्नासिंह अभी कुछ घण्टे पहले एक राष्ट्र-निर्माण का स्वप्न देख रहे थे, वही धन्नासिंह, हाँ वही अब अपराधी बन, अपने भाग्य के निबटारे के लिए दूसरे के मुँह की ओर देखेंगे! तो क्या धन्ना-

सिंह गिरफ़्तार हो गए ? नहीं, भला यह भी कभी सम्भव है ! उन्होंने तो मरने की शपथ खाई थी, न की गिरफ़्तार होने की। अस्तु, जिस समय आपको पुलिस वाले पकड़े खड़े थे, तो आपने एकदम एक ऐसा झटका मारा कि हाथ नीचे आ गया और साथ ही कमर के पास छिपे हुए बम् में कोहनी की एक ऐसी चोट दी कि एकदम धड़ाका हो गया !

देखते-देखते चारों ओर भगदड़ मच गई और जहाँ पर धन्ना-सिंह जी बैठे थे वहाँ पर ख़ून, माँस और हड्डियों के एक के सिवा कुछ भी बाक़ी न बचा। साथ ही पुलिस के भी ५ आदमी तो जान से मारे गए और तीन बहुत बुरी तरह घायल हुए, जिनमें से मि० हॉर्टन और एक कॉन्सटेबिल अस्पताल में बाद को मर गए और इस प्रकार उस वीर खिलाड़ी ने अपनी इह-लीला समाप्त की !

श्री० बन्तासिंह धामियाँ

बबर अकाली-आन्दोलन की मुख्य तथा रोमाञ्चकारी घटनाओं में से सुप्रसिद्ध "मुण्डेर-युद्ध" भी है। तीन बबर अकाली वीर एक मकान में घिर गए थे और घण्टों तक असंख्य सशस्त्र सैनिकों से युद्ध करते हुए दो ने तो वहीं प्राण दे दिए और तीसरा व्यक्ति इतने मुश्किल घेरे से भी साफ़ बचकर निकल गया। उनका नाम श्री० वर्यामसिंह था। मरने वाले थे श्री० बन्तासिंह धामियाँ और श्री० ज्वालासिंह कोटला।

श्री० बन्तासिंह जी धामियाँ कलाँ के रहने वाले थे। वहीं सन् १९०० के लगभग आपका जन्म हुआ था। बचपन से ही आपका स्वाभाव बड़ा चञ्चल था। खेल-कूद में आप बहुत चतुर थे। गाँव के स्कूल में आप पढ़ने के लिये बिठलाए गए। चार-पाँच वर्ष तक वहीं पढ़े। फिर कुछ दिन बाद घर-बार के काम-काज में लगे रहे। बाद में आप फ़ौज में नौकर हो गए और तीन वर्ष तक ५५ नं० सिक्ख-पल्टन में काम करते रहे। वहाँ पर भी आप खेल-कूद में सब से बढ़-चढ़ कर थे। दौड़ने में तो आप एक ही थे। उन्हीं दिनों कुछेक लोगों के संसर्ग से आप डाके आदि में योग देने लगे। परन्तु कुछ अधिक दिनों तक उस मार्ग पर नहीं चले थे, कि बबर अकाली-आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। दौलतपुर के श्री० कर्मसिंह, रामगढ़ के श्री० उदयसिंह आदि बबर अकालियों की साहसपूर्ण घोषणाएँ पढ़कर आप बहुत प्रभावित हुए और उनमें ही जा शामिल हुए।

वे भली प्रकार समझ गए थे कि अपने पुराने पापों का प्रायश्चित केवल निज प्राणोत्सर्ग करने से ही हो सकेगा। वे अपनी उस कालिमा को निज रक्त से धोने के प्रयत्न में व्यग्र होकर कार्य-क्षेत्र में अग्रसर हुए थे। इस मार्ग में आकर भी उन्हें दो-एक डकैतियों में योग देना पड़ा था, परन्तु आपका स्वाभाव एकदम बदल गया था। सन् १९२३ की दूसरी या तीसरी मार्च को जमशेर नामक स्थान के स्टेशन-मास्टर के घर डकैती हुई थी। उस समय नेतृत्व इन्हीं के हाथ में था।

कहते हैं कि किसी एक नीच व्यक्ति ने एक स्त्री पर कुछ हाथ बढ़ाने की चेष्टा की थी। इधर उस स्त्री को श्री० बन्तासिंह ने दूर खड़े होकर कहा—"माता! अपने आभूषण उतार कर स्वयं दे दो। हम आपको नहीं छूएँगे।" तब उसने रोकर दूसरे व्यक्ति की नीचतापूर्ण चेष्टा की कथा सुना, बड़े व्यङ्ग और वेदना-भरी आवाज़ में कहा—"अब इतना महात्मापन दिखाने से क्या होगा?"

बन्तासिंह यह सुन कर आग-बबूला हो गए। गड़ासा लेकर उस नीच पर चला दिया। गर्दन कट ही तो गई होती, परन्तु एक दूसरे व्यक्ति ने बीच ही में हाथ रोक लिया। और सब लोगों ने बहुत अनुनय-विनय के बाद उनका क्रोध शान्त किया। उन्होंने कहा—"ऐसे नीच व्यक्ति हमारी स्वाराज्य-योजना को यों ही बदनाम कर देंगे। पहले तो विवश हो डकैती करनी पड़ती है तिस पर भी यह अन्धेर! इस तरह हम कर ही क्या सकेंगे?" इसी से समझा जा सकता है कि वैसविक बनने पर उनके स्वभाव में कितना अन्तर आ गया था।

फिर वे बबर अकाली-दल के प्रोग्राम के अनुसार काम करते रहे और कई-एक देशघातकों को मृत्यु-दण्ड दिया। ११-१२ मार्च को पुलिस के ख़ुशामदी नम्बरदार बूटा को, जोकि राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने में सरकार की विशेष सहायता किया करता था, उसके घर पर आक्रमण कर उसे मार दिया। इसी प्रकार उन दिनों यह सभी कार्य होता रहा। उधर पुलिस

आप लोगों को पकड़ने के लिए दो आबे भर में ठोकरें खा रही थी। आपको पकड़वाने के लिए बहुत बड़ा इनाम भी घोषित कर दिया गया था। परन्तु आपको पकड़ना कोई आसान काम न था। एक दिन एक छोटे से जङ्गल में कुछ घुड़सवार सिपापियों से आपकी भेंट हो गई। वे लोग इन्हीं बबर अकाली-वीरों को मारने या पकड़ने को नियुक्त किए गए थे। आपने उन्हें अकेले ही ललकारा। सभी तुरन्त भाग गए "अजी हम न तो आपको गिरफ़तार करने में राज़ी हैं और न मारने में ही, क्योंकि आप ही लोगों की बदौलत हम लोगों की भी क़द्र हो रही है और तिगुनी-चौगुनी तनख्वाहें मिल रही हैं।" आपके साहस के बारे में ऐसी बहुत सी बातें सुनी जाती हैं। कहा जाता है कि एक दिन एक छावनी में अकेले ही घुस कर रिसाले के पहरेदार की घोड़ी और रायफ़ल छीन कर ले गए थे। अस्तु—

इसी तरह बहुत दिनों तक पुलिस के साथ आँख-मिचौनी होने के बाद अन्त में १२ दिसम्बर, १९२३ को आप पुलिस के घेरे में आ गए। बात दरअसल यह थी, कि शाम-चुरासी गाँव, जो जालन्धर से १०-१२ मील की दूरी पर है; का एक व्यक्ति, जगतसिंह सन्देह में पकड़ा गया। पुलिस उसके विरुद्ध कुछ प्रमाण न पा सकी, इसलिए उसे धमकाकर और इस बात पर राज़ी कर के, कि वह बबर अकालियों की गिरफ़्तारी में सहायता करे, छोड़ दिया गया। उस कम्बख्त ने अकालियों से दोस्ती गाँठ ली। कुछ दिन पुलिस की हवालात में रह आने

के कारण उसे अपनी वीरता और गम्भीरता की डींगें मारने का बहुत अवसर मिल गया था। परन्तु वह तो था निरा नर-पशु। उसने एक दिन बन्तासिंह, ज्वालासिंह और वर्यामसिंह को अपने घर पर टिका लिया और स्वयं पुलिस को सूचना भेज दी। कुछ घण्टे बाद ही सेना ने गाँव को घेर लिया।

जब इन लोगों ने जाना कि शत्रुओं ने गाँव का घेरा डाल लिया है तो वे तुरन्त एक चौबारे में जा चढ़े। वे चाहते थे मरना, परन्तु वीरतापूर्वक लड़-लड़ कर वह सांग्रामिक दृष्टि से ऐसा सुन्दर स्थान था कि उन तीन आदमियों ने ही घण्टों पुलिस का नाकों दम किए रक्खा। दोनों ओर से ख़ूब गोली चलीं। सैनिक लोगों की मैशीगनें और रायफ़लें सब व्यर्थ हुई जाती थीं। सामने मकान की छत पर मैशीनगनें रखकर चलाई गईं परन्तु कुछ प्रभाव न हुआ।

दया के अवतार गौराङ्ग महाप्रभुओं ने तब अद्वितीय दया-भाव दिखाया। पम्प से मकान पर तेल डाल कर आग लगा दी गई। उधर श्री० ज्वालासिंह जी के गोली लग गई। वे बुरी तरह घायल हो गए। उसी समय श्री० बन्तासिंह जी मकान से निकलने की कोशिश करने लगे। उनके भी गोली लगी और वे भी घायल होकर वहीं गिर गए। उस समय उनमें इतनी शक्ति भी न रही थी कि खिड़की के पास जाकर शत्रु पर गोली चला पाते। आपने वेदना-भरी आवाज़ में कहा—"वर्यामसिंह! तुम तो जाओ। भाई, देखो बच सको तो बच

जाओ। फिर कभी इनसे हमारा बदला लेना। परन्तु एक अन्तिम प्रार्थना हमारी भी है। यह लो रिवॉल्वर, एक गोली सिर पर या छाती में मार दो। अब जीते जी शत्रुओं के हाथ में बन्दी बनने की इच्छा नहीं होती। तड़प-तड़प कर शत्रुओं के हाथ में तिल-तिल कर मरने से एक ही बार अन्त कर जाओ जी।" वर्यामसिंह के प्यारे, दुख-सुख के पुराने साथी बन्तासिंह आज घायल हुए आँखों के सामने तड़प रहे हैं। अन्तिम इच्छा भी प्रकट की है। कौन किसी मित्र की अन्तिम इच्छा पूरी करने में झेंपेगा? परन्तु ओह! कितनी कठिन और कितनी भयङ्कर है वह इच्छा? अपने प्रियजन को अपने ही हाथों गोली से मारना कोई सुगम कार्य नहीं। परन्तु यह भी तो नहीं देखा जा सकता कि शत्रु उन्हें बयान आदि के लिए तङ्ग करें। तब श्री० वर्यामसिंह जी ने रिवॉल्वर भरकर बन्तासिंह के हाथों में पकड़वाते हुए, और रुँधे हुए गले से विदा माँगते हुए, कहा—"भाई! आज तक न जाने कितनी हत्याएँ कर डालीं। कितनी ही बार निःशङ्क भाव से लोगों पर गोलियाँ चला दीं। परन्तु अपने ही साथी, सहोदर से भी प्यारे साथी पर भी गोली चलानी पड़ेगी, यह कभी भी न सोचा था। न, हम से यह न होगा। यह लो रिवॉल्वर, जब जरूरत समझना, अपने हाथ से ही गोली मार लेना।" आँखों से आँसू बह रहे हैं। साथी मर रहा है। सामने अपनी मौत नृत्य कर रही है। बाहर दनादन गोली बरस रही है। वर्यामसिंह एक बार फिर बन्तासिंह के

सिर को छाती से लगा कर विदा हुए। वह वीर उस घेरे से सहज ही में निकल गया। हाथ में रिवॉल्वर था। एक दो सिपाहियों ने पकड़ने की कोशिश की। उन पर गोली चला, घायल कर वहीं गिरा दिया। फिर उन "वीर सैनिकों" को उनका पीछा करने का साहस नहीं हुआ।

उधर मकान धायँ-धायँ करने लगा। और गोली भी बराबर चलती रही। कौन कह सकता है कि बन्तासिंह के प्राण पखेरू गोली के घाव से गए अथवा उस आग में जल कर! उस समय उनकी आयु २२-२३ वर्ष से अधिक न थी।

श्री० वर्यामसिंह धुग्गा

श्री० वर्यामसिंह जी का जन्म धुग्गा नामक गाँव, ज़िला होशियारपुर में लगभग सन् १८९२ या ९३ में हुआ था। आप बड़े सुदृढ़ और शक्तिशाली व्यक्ति थे। शरीर गठा हुआ और मज़बूत था। आप भी सेना में भरती हो गए थे। बहुत दिनों तक वहीं पर सैनिक शिक्षा पाकर नौकरी की थी। उस दौरान में एक दिन किसी घरेलू शत्रु से बदला लेने के लिए सायङ्काल की हाज़िरी देकर आप चले गए। बीस मील की दूरी पर भागे हुए गए। उस व्यक्ति को क़त्ल कर अपना नाम घोषित कर सुबह की हाज़िरी तक पलटन में फिर आ गए। इसलिए आपके विरुद्ध उधर कुछ भी न हो सका। भला फ़ौज के रजिस्टर भी झूठे हो सकते हैं? बाद में आप डकैत बन

गए। दोआबे में आप बड़े प्रसिद्ध डकैत थे। आपके नाम की धाक चारों ओर फैली हुई थी।

परन्तु बबर अकाली जत्थे के बनते ही आप उसमें शामिल हो गए और श्री० बन्तासिंह जी के साथ मिल कर सारे 'काम में योग देते रहे।

उस दिन १२ दिसम्बर; सन् १९२३ को जब बन्तासिंह मुण्डेर नामक गाँव के घेरे में आ गए थे तो आप भी उनके साथ थे। परन्तु मकान में आग लगने पर आप साहस कर घेरे में से भाग निकले थे। आपको देखते ही सिपाहियों के प्राण .खुश्क होने लगते थे।

इसके बाद आप दूर लायलपुर के ज़िले में चले गए। उधर एक सम्बन्धी के घर ठहरे हुए थे। बचपन से उसी सम्बन्धी ने आपका पालन-पोषण किया था। परन्तु लोभ और स्वार्थ मनुष्य की मनुष्यता तक का नाश कर देता है। वर्यामसिंह जी से कहा गया—"हथियार गाँव से बाहर खेतों में रख दीजिए ताकि किसी को सन्देह न हो सके।" गाँव में ले गए, भोजन आदि कराया। रात अँधेरी थी। भोजन करते ही कहा—"जाता हूँ, शस्त्र दूर छोड़कर दिल में न जाने क्या होने लगता है।" लौट-कर शस्त्रों वाले स्थान को चल दिए। परन्तु सेना तो पहले से ही वह स्थान घेरे हुई थी। पुलिस-सुपरिन्टेण्डेण्ट मि० डि० गेल महाशय पहले सैनिक अफ़सर रह चुके थे। बड़े साहसी और वीर थे। उनका इरादा उन्हें जीवित गिरफ्तार करने

का था; परन्तु उसी वीर ने तो इरादा कर रक्खा था लड़कर मरने का। चारों ओर से घेरे हुए सेना धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। आप भी सब ताड़ गए। एक स्थान पर खड़े हो, सोचने लगे कि किया जावे, तो क्या? मि० डी० गेल ने ज़ोर से कहा—"बर्यामसिंह, आत्मसमर्पण कर दो।" बर्यामसिंह ने उत्तर दिया—"अरे! हिम्मत है तो एक बार शस्त्र ले लेने दो, फिर दो-दो हाथ हो ही जायँ।" परन्तु यह राजपूती शान की बातें वहाँ कहाँ? मि० डी० गेल ने आपको पीछे से पकड़ लिया। दोनों हाथ क़ाबू में आ गए। अपनी कृपाण निकाल कर बर्यामसिंह ने उसके बाजुओं को बुरी तरह घायल कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। शशकों में उस समय वह सिंह घिरा खड़ा था। शत्रु जीवित गिरफ़्तार किया चाहते थे, किन्तु आपकी कृपाण देख सब जी मसोस कर रह जाते थे। कई बार दो-चार सिपाही आगे बढ़े, किन्तु घायल होकर पीछे हटने पर बाध्य होना पड़ा!

आख़िर मि० डी० गेल ने उन पर गोली चलाने की आज्ञा दे दी। चारों ओर गोलियों की बाढ़ शुरु हो गई। इस प्रकार छाती पर गोलियाँ खाकर वह वीर स्वर्गधाम सिधार गया!

उनका शव लायलपुर ले जाया गया। सहस्रों नर-नारी दर्शन करने के लिए वहाँ जमा हो गए थे। यह घटना ८ जून, सन् १९२४ की है।

श्री० किशनसिंह गर्गज्ज

आप जालन्धर ज़िले के वारिङ्ग नामक गाँव के रहने वाले थे। पिता का नाम श्री० फ़तेहसिंह था। कुछ समय तक, स्कूल में शिक्षा पाने के बाद सेना में भरती हो गए और फिर मार्च १९१९ तक ३५ नम्बर सिक्ख-रिसाले में हवलदार के पद पर काम करते रहे।

जलियाँ वाले बाग़ की घटना के बाद देश में असहयोग की सर्व-व्यापी लहर चली और उसी से प्रभावित होकर आपने भी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। आपने गिरफ़्तार होने पर लिखित बयान में कहा था—"जब मैं फ़ौज में नौकरी कर रहा था, तभी सरदार अजीतसिंह की नज़रबन्दी, दिल्ली के रक़ाबगञ्ज के गुरुद्वारे की दीवार के तोड़े जाने, बजबज में निर्दोष यात्रियों पर गोली चलाने, रौलट-ऐक्ट और जलियाँवाले बाग़ की दुर्घटना और मार्शल लॉ आदि बातों के कारण मेरे हृदय में घृणा उत्पन्न हो गई थी और अन्त में ग़ुलामी के बोझ को और अधिक न सह सकने के कारण मैंने सरकार की नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया।"

अभी पिछले घाव भरने भी न पाए थे कि एक और गहरी चोट से प्राण छटपटा उठे। २० फ़रवरी, १९२१ की नानकाना साहब की दुर्घटना के बाद आपने आकाली दल में भाग लेना आरम्भ कर दिया और अप्रैल में उक्त दल के मन्त्री चुने गए; किन्तु इस प्रकार चुपचाप पुलिस के हाथों मार खाना आपको

अच्छा न लगा और उन्होंने गुप्त सङ्गठन की आयोजना प्रारम्भ कर दी।

अभी कार्य आरम्भ ही हुआ था कि दो व्यक्तियों की असावधानी से कुछ भेद खुल गया। ६ आदमी तो गिरफ़्तार किए गए, किन्तु आप अपने चार और साथियों के साथ फ़रार हो गए। कुछ दिन मालवा में जिन्द-राज्य के मस्तुअना नामक स्थान पर रह कर आप १९२१ की सर्दियों में फिर दोआब वापस आ गए। आते ही आपने "चक्रवर्ती-दल" जो बाद को "बबर अकाली-दल" के नाम से प्रसिद्ध हुआ, के बनाने की घोषणा की और गाँव-गाँव जाकर व्याख्यान देने आरम्भ कर दिए। किशनसिंह एक अच्छे वक्ता थे। अस्तु, लोगों पर इनकी बातों का अच्छा प्रभाव पड़ा। कहते हैं, कि गिरफ़्तारी के समय तक आप ने कुल ३२७ व्याख्यान भिन्न-भिन्न स्थानों पर दिए थे।

जिस समय कपूरथला-राज्य तथा जालन्धर ज़िले के अन्तर्गत किशनसिंह जी अपने कार्य को विस्तार दे रहे थे, ठीक उसी समय होशियारपुर ज़िले में दौलतपुर के कर्मसिंह तथा उदयसिंह जी, जो कि बाद में बोमेली के पास पुलिस के साथ लड़ते हुए मारे गए, उसी प्रकार के विचारों का प्रचार कर रहे थे। अन्त में इन दोनों पार्टियों के मिल जाने पर कार्य और भी ज़ोरों पर होने लगा। बम्, रिवॉल्वर तथा बन्दूक़ों का संग्रह किया गया और स्थान-स्थान पर केन्द्र स्थापित हुए

उनका विचार था कि इस प्रकार पर्याप्त शक्ति के हो जाने पर सेनाओं की सहायता से १८५७ की भाँति ग़दर द्वारा भारत को आज़ाद किया जाय। ये लोग घर के भेदियों को कभी न छोड़ते थे।

"बबर अकाली" लोग भेदियों के बध करने को उनका "सुधार" करना कहते थे। अस्तु, बहुतों का "सुधार" करने और कार्य को काफ़ी विस्तार दे चुकने के बाद अन्त में भेद खुल गया और गिरफ़्तारियाँ शुरू हो गईं। किशनसिंह भी गिरफ़्तार कर, लाहौर लाए गए। अभियोग चलने पर आपने सब बातें मान लीं और कहा—"मैं सरकार का कट्टर शत्रु था और इसी से जिस तरह भी हो, अङ्गरेज़ों को भारत से निकाल-बाहर करने की इच्छा से ही यह सब कुछ किया था।" अदालत से आपको फाँसी की सज़ा मिली और एक दिन लाहौर सेन्ट्रल (*Central Jail*) में वे भी उसी पूर्व परिचित रस्सी से लटका दिए गए।

श्री० सन्तासिंह

आप लुधियाना ज़िले के 'हरयों .खुर्द' नामक गाँव के रहने वाले थे। पिता का नाम सूबासिंह था। सन्तासिंह के बाल्य-जीवन तथा शिक्षा आदि के सम्बन्ध में किसी विशेष बात का पता नहीं। हाँ, १९२० की फ़रवरी मास में आप ५४ नं० सिक्ख रिसाले में भरती हुए और दो साल तक नौकरी

करने के बाद २६ जनवरी, १९२२ को वहाँ से त्याग-पत्र दे दिया। फ़ौज में नौकरी करने से पहले आप खालसा-हाई स्कूल, लुधियाना में क्लर्क का काम भी कर चुके थे।

नौकरी छोड़ने के बाद अकालियों के त्याग तथा दृढ़ता से प्रभावित हो आपने भी उसमें भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और कुछ ही दिनों में अपनी चतुरता तथा कार्य-संलग्नता के कारण आन्दोलन के प्रमुख नेताओं में से गिने जाने लगे। फ़ैसला सुनाते हुये जज ने आपके बारे में कहा था—"अकालियों के कुछेक कार्यों को छोड़कर इस अभियुक्त ने प्रायः सभी में भाग लिया है और इस षड़यन्त्र की आयोजना में किशनसिंह और कर्मसिंह के बाद इसी का अधिक हाथ था।"

उद्देश्य की प्राप्ति में बाधा पहुँचाते देख, आपने बिशनसिंह ज़ैलदार को अकेले ही जाकर मार दिया था। इसके अतिरिक्त बूटा, लाभसिंह, हज़ारासिंह, राला और दित्तू, सूबेदार गैंडासिंह और नौगल शर्मा के नम्बरदार आदि देश-द्रोहियों को उनके अपराध का दण्ड देने में भी आप सम्मिलित थे।

अन्त में अपने ही एक सम्बन्धी के विश्वासघात से आप एक दिन गिरफ़तार हो गए। अदालत से कुछ सवाल किए जाने पर आपने कहा—"इस सरकार से मुझे किसी प्रकार के भी न्याय की आशा नहीं। अस्तु, मैं एक भी सवाल का जवाब देना नहीं चाहता।"

अन्त में आपने स्वयं ही सब अपराधों को स्वीकार कर

लिया। उन्होंने कहा—"यद्यपि मैं इस बात को भली-भाँति जानता हूँ कि मेरे अपराध स्वीकार करने से मेरा केस और भी बिगड़ जायगा, किन्तु फिर भी मैंने जो कुछ किया, वह अच्छे के लिए ही किया था। अस्तु, मैं उसमें से एक बात को भी छिपाना नहीं चाहता।"

अदालत से आपको फाँसी की सजा मिली। और २७ फ़रवरी, १९२६ को लाहौर-सेन्ट्रल जेल में अपने और पाँच साथियों सहित आप भी तख्ते पर झूल गए !

श्री० दलीपसिंह

तरुण दलीप ! कायरता के उस युग में भारत के सोए हुए पामर प्राणों में स्फूर्ति फूक कर एकाएक तुम किस अन्तरिक्ष में विलीन हो गए ? १७ वर्ष की छोटी अवस्था में किस नशे से उन्मत्त होकर तुमने वे सब काम किए थे ? वह कार्य-कुशलता, वह साहस, वह उत्साह और वह लगन तुमने इतनी जल्द कहाँ से पा ली थी ? यह सब बातें शायद बहुत-कुछ सर मारने के बाद भी आज के हम कायरों की समझ में न आ सकेंगी !

धामियाँ कलाँ, ज़िला होशियारपुर में श्री० लाभसिंह जी के घर उस वीर का जन्म हुआ था। कुछ बड़े होने पर स्कूल बिठलाए जाने के बाद से ही बालक ने अपनी कुशलता का परिचय देना प्रारम्भ कर दिया। दलीप पढ़ने-लिखने में बहुत अच्छे न होने पर भी अपने साथियों में सर्व-प्रिय थे। उनसे

अपनी इच्छानुसार काम ले लेना तो इनका बाएँ हाथ का काम था।

सन् १९२२ के दिन थे। अभी लड़कपन के खेल छूटने भी न पाए थे, कि उस कोमल हृदय ने एक गहरी चोट खाई। नानकाना साहब की दुर्घटना तथा अकालियों पर किए गए अत्याचारों ने उस भावुक हृदय को एकदम बेचैन कर दिया। बस मार्च, १९२३ में लाड़-प्यार से पाले गए उस बालक दलीप ने घर-बार पर लात मार कर अकाली-मत की दीक्षा ग्रहण की।

इसके बाद आपने क्या-क्या किया, उसके बारे में अदालत में फ़ैसला सुनाते समय आपके सम्बन्ध में कहे गए जज के शब्द ही यहाँ पर दे देना उचित समझता हूँ। जज ने फ़ैसले के समय कहा था :

"This accused, young as he is, appears to have established a record for himself second only to that of Santa Singh accused, as to the offences in which he has been concerned in connection with this conspiracy. He is implicated in the murders of But a Lumberdar, Labh Sing Mistri, Hazara Singh of Baibalpur, Rilla and Dittu of Kaulgarh Ata Mohammad Patwari, in the 2nd and 3rd attempts on Labh Singh of Dhadda Fateh Singh and in the murderous attack on Bishan Singh of

Sandhara'

इसी प्रकार कार्य करते हुये एक दिन सन्तसिंह के साथ 'कन्दी' नामक स्थान पर कुछ पर्चे बाँटने जा रहे थे कि एकाएक पुलिस ने घेर लिया। १२ अक्टूबर, १९२३ को तरुण दलीप ज़ञ्जीरों में बाँध कर मुल्तान-जेल लाए गए। बालक समझ कर लोगों ने चाहा, कि डरवाकर कुछ बातें मालूम कर ली जायँ, किन्तु आशाओं पर पानी फिरता देख, उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। भला एक छोटे से लड़के की गुस्ताख़ी वे लोग क्यों सहने लगे। बस मार पड़ने लगी। कभी-कभी बीच-बीच में कुछ लालच भी दिया गया, पर अन्त में उसी एक ख़ामोशी के सिवा और कुछ हाथ न आया।

कहते हैं कि श्री० दलीपसिंह देखने में बहुत भोले तथा सुन्दर थे। आयु तो थी केवल १७ वर्ष की ही। आपकी बाल्यावस्था तथा भोलेपन पर मि० टैप (*Tapp*) सेशन्स जज मुग्ध-से हो गए थे। वे नहीं चाहते थे कि उन्हें फाँसी की सज़ा दी जाय। परन्तु सभी गवाहों की गवाही आपके विरुद्ध सुनकर आप बहुत झुँझलाते थे और येन-केन-प्रकारेण यही चेष्टा करते थे कि दलीपसिंह के विरुद्ध कुछ न लिखें। कई दिन तक यही खींचा-तानी चली, आख़िर एक दिन श्री० दलीपसिंह हाथ बाँधकर जज महोदय के सामने जाकर खड़े हो गए और कहा—"आपकी इस कृपा-दृष्टि के लिए मैं बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ, परन्तु कृपाकर पहले मेरा वक्तव्य लिख लीजिए। मैंने यह सभी

कुछ किया है और अगर आज छूट जाऊँ तो फिर यही सब करूँगा। परन्तु आप मुझे जीवित रखने के लिए क्यों लालायित हो रहे हैं ? मैं तो फाँसी पर लटककर प्राण दिया चाहता हूँ। उसका कारण यह है कि मुझे ईश्वर की कृपा से जो यह मानव-देह जैसा दुर्लभ पदार्थ मिला है इसे अभी तक मैंने किसी तरह भी अपवित्र नहीं किया है। और चाहता हूँ कि आज इसी तरह पवित्र देह 'माँ' के चरणों में भेंट कर दूँ। कौन कह सकता है, कुछ दिन और जीता रहा तो यह पावित्र्य क़ायम रहे अथवा नहीं ; और फिर इस बलिदान का सारा महत्व और सौन्दर्य ही जाता रहे !"

जज हैरान होकर उनके मुँह की ओर ताकता रह गया। अस्तु फ़ैसला सुनाए जाने पर उन्हें फाँसी का दण्ड मिला !

२७ फ़रवरी, १९२६ का दिन था, भुवन-भास्कर की पहली ही लाल किरण के साथ भगवान् ने उस युवक संन्यासी के पवित्र जीवन पर अपनी छाप लगा दी।

खूँ के हरफ़ों से लिखा जाएगा तेरा वाक़या !
मुझको भूलेगी न यह पुरग़म कहानी हाय हाय !!

श्री० नन्दसिंह

आपका जन्म सन् १८९५ ई० में जालन्धर जिले के घुड़ियाल नामक गाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम गङ्गासिंह जी था। छोटी ही उमर में माता-पिता का देहान्त हो जाने के

कारण आपने रावलपिण्डी में अपने बड़े भाई के पास परवरिश पाई। ये बचपन से ही बड़े फुर्तीले थे और खेल-कूद की ओर अधिक रुचि थी। १५ वर्ष की ही आयु में शादी हो जाने के बाद आप कुछ समय तक मकान पर ही बढ़ई का काम करते रहे, और फिर बसरा चले गए।

नानकाना साहब की घटना के बाद अकाली-आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा और आप भी उसी में भाग लेने की इच्छा से देश को वापस आ गए। उस समय गुरु के बाग़ के सत्याग्रह में उन्हें भी छः महीने की सज़ा भुगतनी पड़ी थी। जेल में मार भी अच्छी खानी पड़ी। अस्तु, यहीं से आपके विचारों में परिवर्त्तन होना आरम्भ हो गया। उस नौजवान आत्माभिमानी ने देखा कि इस प्रकार निर्दय पुलिस वालों के डण्डे खाने से काम न चलेगा। अस्तु, जेल से बाहर आते ही आप किशनसिंह के बबर आकाली दल में सम्मिलित हो गए। उन्होंने अब मार खाने की बात को छोड़कर मरने और मारने की शपथ ली।

सत्याग्रह में सज़ा होने पर आपके भाई ने माफ़ी माँग कर छूट आने की सलाह दी। कहा—"बड़े भाई का शरीरान्त हो चुका है। लड़के की शादी करनी है। अस्तु, यदि ऐसी अवस्था में आप भी जेल चले गए तो कुछ भी न हो सकेगा।" इस पर आपने उत्तर दिया—"यदि बड़े भाई के बिना शादी हो सकती है, तो मेरे बिना भी हो सकती है। इन शादी-जैसे घरेलू मामलों के लिए मैं क़ौम का काम रोकना नहीं चाहता।"

बबर अकाली-आन्दोलन में भाग लेने के बाद से गाँव का सूबेदार गेंदासिंह आपको बहुत तङ्ग करने लगा। वह इनकी सभी बातों की सूचना पुलिस में दे देता। अस्तु; एक दिन आपने जाकर उसे मार दिया। पुलिस ११ दिन तक गाँव वालों को तङ्ग करती रही, आपने उन लोगों से कहा—"जो कुछ किया है मैंने किया है। तुम लोग व्यर्थ में इन लोगों को क्यों तङ्ग करते हो?"

आपको गिरफ़्तार कर मुक़द्मा चलाया गया और फाँसी की सज़ा हुई। सज़ा सुनाई जाने के बाद आपने घर वालों से कहा—"तुम लोग मेरी फ़िक्र न करना। मैं किसी बुरी मौत से नहीं मर रहा हूँ। मुझे इस बात की .ख़ुशी है कि मेरे प्राण देश के काम के लिए जा रहे हैं। मैंने इमारत की नींव डाल दी। अब यह देश का फ़र्ज़ है कि यदि वह आज़ाद होना चाहता है तो उस नींव पर मकान बनाकर खड़ा करे।" आपने यह भी कहा था, कि मरने के बाद हम सब को एक ही चिता पर जलाना और राख को रावी में डाल देना!

अन्त में २७ फ़रवरी, सन् १९२६ को लाहौर सेण्ट्रल जेल में पाँच साथियों के साथ आपको फाँसी दे दी गई और उनके सम्बन्धियों ने उनकी इच्छानुसार सब का एक ही चिता पर अन्तिम सस्कार किया।

श्री० कर्मसिंह

आप के पिता का नाम श्री० भगवानदास था। क़ौम के सुनार थे और जालन्धर ज़िले के मनको नामक गाँव में आप का घर था। बचपन अधिकतर खेल-कूद में बीता और घर के निर्धन होते हुए भी आपकी तबीयत दुनियायी काम में कम लगती थी। छुटपन से ही ये बहुत चञ्चल थे और कभी किसी की कड़ी बात न सहते थे।

असहयोग-आन्दोलन के दिनों में आपने स्वतन्त्रता का पाठ सीखा और किशनसिंह के बबर अकाली-दल बनने पर आप उसमें शामिल हो गए।

गेंदासिंह सूबेदार के मारे जाने में आप भी शामिल थे। इसके बाद कुछ दिनों तक प्रचार-कार्य करते रहने के बाद आप १२ मई, १९२३ को गिरफ़्तार हो गए।

अभियोग चलने पर आपने कहा—"अदालत की सारी कार्यवाही एक नाटक के समान है और जज लोग पुलिस के हाथ में खिलौने के समान हैं। अस्तु, मैं किसी प्रकार का बयान अथवा सफ़ाई आदि देना नहीं चाहता।" जेल में बयान लेने के लिए आपके साथ कड़ा व्यवहार भी किया गया और इस बात पर बाध्य किया गया कि वे सारा हाल पुलिस को बता दें। किन्तु आपने किसी भी बात का उत्तर देने से इन्कार कर दिया।

अदालत ने आपको फाँसी की सज़ा दी और २७ फ़रवरी सन् १९२६ को लाहौर सेण्ट्रल-जेल में पाँच और साथियों के साथ आपको फ़ाँसी दे दी गई !!
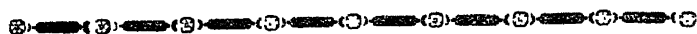
ठाकुर केसरीसिंह

चारण-जाति सदा से क्षत्रियों के लिये, राजनैतिक शिक्षा-गुरु, वीरता की प्रोत्साहक, विपत्ति में सहायक और पूज्य रही है। चारणों की ज्वलन्त वीरता के आदर्श से किसी राज्य का इतिहास खाली नहीं। चारणों में भी ५०० वर्ष पूर्व निराश महाराणा हम्मीर का छूटा हुआ चित्तौड़ अपने बुद्धि-वैभव और बाहु-बल से फिर से दिलाने वाले, इतिहास-प्रसिद्ध वीरवर "सौदा बारहठ बारू" की सन्तान वीरता में आज तक सदा अग्रणीय रही है। उसी वीर-वंश की तेईसवीं पीढ़ी में ठाकुर केसरीसिंह जी हैं। मेवाड़ के अन्तर्गत शाहपुरा-राज्य में ठाकुर केसरीसिंह के पूर्व-पुरुषों की जागीर चली आती थी। और यह शाहपुरा-राज्य के प्रथम श्रेणी के उमराव सरदारों से भी अधिक सम्मानित रहा है। केसरीसिंह जी के पिता बारहठ कृष्णसिंह जी ने अपने बुद्धि-वैभव से राजपूताना के समस्त नरेशों से सम्मान प्राप्त किया और वे अपने समय में राजपूताना एवं मध्य-भारत में प्रधान राजनीतिज्ञ माने गए थे।

कृष्णसिंह जी के तीन पुत्र थे—केसरीसिंह, किशोरसिंह और जोरावरसिंह। केसरीसिंह जी का जन्म वि० सम्बत् १९२९ के मार्गशीर्ष कृष्ण ६ को अपनी जागीर के गाँव देवपुरा में हुआ और जन्म से एक मास बाद ही जन्मदात्री का स्वर्गवास हो गया। ये अपनी तरुण अवस्था में ही बुद्धि वैलक्षण्य से महाराणा उदयपुर के सलाहकारों की श्रेणी में पहुँच गये थे। वैशाख,

सम्बत् १९५६ में वर्तमान कोटा-नरेश उम्मेदसिंह की गुण-ग्राहकता ने केसरीसिंह को खींचा और ये कोटा आ गये और वहीं पर रहने लगे।

केसरीसिंह जी अठारह-उन्नीस वर्ष की अवस्था से ही जातीय और सामाजिक सुधारों में उत्साहपूर्वक भाग लेते रहे थे और स्वदेश की पतित दशा का भी उनको ध्यान बना रहता था। सन् १९११ में उनकी ओर से "राजपूत जाति की सेवा में अपील" निकलते ही भारत की नौकरशाही चौकन्नी हो गई। परन्तु केसरीसिंह जी शिक्षा और सङ्गठन का ही कार्य करते थे और उनकी "स्वतन्त्र क्षात्र-शिक्षा" व "क्षात्र-शिक्षा-परिषद्" का ढाँचा इतना मज़बूत था कि उसे डिगाना सहज नहीं था, क्योंकि स्वजातिहित से प्रेरित होकर राजपूताना व मध्य-भारत के नरेश और बड़े-बड़े राजपूत उमराव और सरदार भी उसमें सम्मिलित थे। ऐसे कार्य को ख़तरनाक कैसे कहा जाय ?

परन्तु जब सरकार ने देखा, कि भारतीय सेना में जो मगस्थोनी राजपूत सिपाही और अफ़सर हैं, वे भी अपने असहाय बालकों के शुभ-भविष्य और जाति-गौरव के पुनर्दर्शन की आशा से केसरीसिंह जी की सेवा को अमूल्य समझ कर उत्साहपूर्वक सहयोग देने लगे हैं, तो वह व्यग्र हो उठी। सत्य की न जाँच की, न पड़ताल! सन् १९१४ की ३१ मार्च के दिन शाहपुरा-नरेश को आगे रख कर सहसा केसरीसिंह जी को बिना कोई अभियोग लगाए गिरफ़्तार कर लिया, तीन मास तक

इन्दौर की छावनी में भीलों की पल्टन के बीच बन्द रक्खा! उसी समय 'दिल्ली-षड्यन्त्र' 'आरा-केस' आदि चले, उन्हीं में किसी तरह फाँस देने की पूरी चेष्टा हुई, परन्तु निष्फल गई; क्योंकि वे क़ानूनी प्रान्त थे। तब यही उचित समझा गया कि "सम्राट का शासन उलट देने की नीयत" के अभियोग पर राजस्थान के किसी राजा के हाथ से ही सज़ा दिलाई जाय, ताकि प्रत्येक नरेश काँप उठे और क्षात्र-शिक्षा का उद्योग छिन्न-भिन्न हो जाए। साथ ही राज्यों में सरकारी पुलिस का भी द्वार खुल जाय। राजद्रोह के साथ एक मर्डर (क़त्ल) का पुछल्ला जोड़ना तो कुटिल-सत्ता का सनातनधर्म रहा है। कोटा को ही पसन्द किया गया, वहीं केस चला। प्रायः भारत के समस्त प्रान्तों के बड़े-बड़े अङ्गरेज़ पुलिस-ऑफ़िसर कोटा में आये थे। 'पायोनियर' ने भी अपना 'स्पेशल स्टाफ़' यहाँ भेजा। देखते देखते ही कोटा गौराङ्गों की छावनी बन गया। 'पायोनियर' और 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' ठाकुर साहब के विरुद्ध आग उगल रहे थे। राजपूताना, मध्य-भारत के समस्त नरेशों की आँखें कोटा पर लगी हुई थीं, क्योंकि देशी राज्यों में यह अभूतपूर्व काण्ड था। राजद्रोह का कोई प्रमाण सरकार के हाथ में नहीं था, अधीन राज्य को घुड़की से मना लेने की आशा थी; परन्तु केवल घुड़की से हाँ कह देने पर केसरीसिंह से सम्बन्ध रखने वाली सभी बड़ी रियासतें व्यर्थ आफ़त में पड़ती थीं। अतः साहसी कोटा दीवान, स्वर्गीय चौबे रघुनाथदास जी ने, गला

दबाए जाने पर भी, इस केस में राजनैतिक अपराध माना ही नहीं, अलबत्ता ठाकुर केसरीसिंह को बीस वर्ष की सज़ा ठोंक कर सरकार के आँसू पोंछ दिए !

सरकार तो ठाकुर साहब को भयङ्कर मानती ही रही। इसी से जगह-जगह खुले हुए राजपूत-बोर्डिङ्ग हाउस और सङ्गठन को बिखेर चुकने पर और केस के साथ ही विद्रोह भड़कने की आशङ्का मिटने पर, नौकरशाही ने ठाकुर केसरीसिंह जी को कोटे से माँग कर सुदूर हज़ारीबाग़ (बिहार) जेल में पहुँचा दिया !

ठाकुर साहब ने गिरफ़्तार होकर शाहपुरा छोड़ा। उसी दिन से अन्न न खाने की प्रतिज्ञा की ! केवल दूध लेते थे। हज़ारीबाग़ पहुँचने पर कठिन परीक्षा शुरू हुई। वीरों को सङ्कल्प से विचलित करने में ही सरकारों को मज़ा आता है। लङ्घन शुरू हुआ, निरन्तर २८ दिन निराहार बीते ! जब अधिकारियों ने देखा कि कष्ट भोगने से पहले कहीं पक्षी उड़ न जाय, तब उन्नीसवें दिन थोड़ा-सा दूध दिया गया। प्रतिज्ञा तो अन्न न लेने की थी, दूध ले लिया गया। एक सप्ताह बाद फिर लङ्घन शुरू हुआ, महीनों तक रबर की नली से पानी में थोड़ा-सा चावल का माँड़ मिला कर पेट में ठूँसा जाता रहा। यह युद्ध अट्ठारह मास तक चला। इतनी अवधि तक काल-कोठरी से भी वे नहीं निकाले गए। आख़िर सरकार परास्त हुई। बिहार-उड़ीसा के जेलों के प्रधान अधिकारी (आई० जी०) ने आकर कहा कि केसरीसिंह ! राना प्रताप की हिस्ट्री से हम मेवाड़ के पानी की

ताक़त को पहले ही जानते थे, शाबाश बहादुर!'तुम जीत गए, सरकार हार गई, आज से दूध ही मिलता रहेगा। 'रहस्य दूध में नहीं, सङ्कल्प की अचलता में था!

सन् १९१९ में सरकार ने स्वयम् अपनी तरफ़ से केसरीसिंह जी से अपने केस की वॉयसरॉय के नाम अपील की। जेल-अधिकारियों के अति आग्रह पर ही यह अपील की गई थी और सन् १९१९ में जून के अन्त में ठाकुर साहब छोड़ दिए गए!!

वीर कुँवर प्रतापसिंह

जिस वीर का नाम आज भारत में विख्यात है, उस कुँवर प्रतापसिंह का जन्म राजपूताना की इतिहास-प्रसिद्ध वीर चारण-जाति में विक्रम सम्वत् १९५० की ज्येष्ठ शुक्ला ९ को उदयपुर में ठाकुर श्री० केसरीसिंह जी के घर माता श्री० माणिकदेवी की कुक्षि से हुआ। केसरीसिंह जी के कोटे आने पर प्रताप कोटे में शिक्षा पाता रहा। फिर दयानन्द एङ्गलो वैदिक स्कूल व बोर्डिङ्ग अजमेर में भेज दिया गया। मैट्रिक तक पढ़ा, परन्तु परीक्षा में नहीं बैठा, उसे सार्टिफिकेट की इच्छा नहीं थी, अङ्गरेज़ी पढ़ी ही इस लिए थी, कि इसके द्वारा भारत के किसी भी प्रान्त में सेवा कर सके और अपने को खपा सके। ठाकुर केसरीसिंह जी युनिवर्सिटी की शिक्षा को दासत्व का साँचा मानते थे। अतः प्रताप को पन्द्रह वर्ष की आयु में स्वतन्त्र शिक्षण के लिए जयपुर के प्रसिद्ध देशभक्त अर्जुनलाल जी सेठी

के जैन बोर्डिङ्ग में रख दिया। वह जैन बोर्डिङ्ग जब जयपुर से उठ कर इन्दौर गया, तब प्रतापसिंह दिल्ली के प्रसिद्ध देशभक्त वीर अमीरचन्द जी के यहाँ रख दिए गए। प्रताप के संसर्ग में जो कोई भी आया, मुग्ध हो गया। ऐसी मोहनी मूर्ति और दिव्य आत्मा कचित् ही मिलती है। अमीरचन्द जी के गिरफ़्तार होने से कुछ ही दिन पहले वह अपने पितुःश्री के पास आ गया था और जब पिता गिरफ़्तार हुए, उससे एक सप्ताह पहले वह अज्ञात-वास में चल दिया।

प्रताप ने अपने प्यारे चचा बलिष्ठ वीर ठाकुर ज़ोरावर-सिंह जी के साथ ही अपने शाहपुरा के विशाल प्रसाद को मार्च सन् १९१४ के तीसरे सप्ताह में अन्तिम प्रणाम किया। ३१ माच के दिन ठाकुर केसरीसिंह जी के समस्त पुरुष-परिवार पर वारण्ट निकले। चचा-भतीजे ढूँढ़े गए, ख़ूब ही ढूँढ़े गए, भारतीय सी० आई० डी० के दूतों ने राजपूताना और मध्य-भारत का घर-घर छान मारा, पर कहीं पता न लगा।

ठाकुर साहब के मारवाड़ के भ्रमण-काल में, जिस पाँचे-टिया ग्राम में पिता के चरणों में सिर रख कर प्रताप ने बिदा ली, उस ग्राम के चारण व जागीरदारों से सरकार ने यह वादा लिखाया; कि यदि कुँवर प्रताप इस ग्राम में कभी आ जायगा तो वे उसे गिरफ़्तार करा देंगे, वरना सर्वस्व खोवेंगे। जब सी० आई० डी० के पेटार्थी प्राणियों के पैर निराशा से ढीले हो चुके, तब एक दिन प्रताप सहसा 'इक़रार' की कथा न जानने से,

उसी ग्राम में जा खड़ा हुआ। सबके हृदयों में सन्नाटा छा गया। घुसफुस होने लगी। किसी ने कहा दुःख है, परन्तु विवश हैं; दूसरे ने कहा, यह कभी हो सकता है कि हम प्रताप को आगे बढ़ कर सौंपे? प्रताप को मालूम होने पर उसने कहा, मेरे कारण किसी पर व्यर्थ विपत्ति आए, यह मुझे सह्य नहीं, मैंने अभी किया ही क्या है? मुझे कौन खाता है? चलो मैं तय्यार हूँ, सरकार के सुपुर्द करके आप लोग बरी हो जायँ, यही मेरी प्रबल इच्छा है। अन्त में यह तय पाया, कि हम प्रताप पर किसी तरह की सख्ती सहन नहीं कर सकते! अधिकारी-वर्ग से कहा जाय, कि यदि प्रताप के गिरफ़्तार होने पर जाँच तक हममें से कोई भी दो व्यक्ति निरन्तर उसके साथ रहने दिए जायँ, ताकि उस पर पुलिस का बेजा दबाव न पड़ सके, यह शर्त स्वीकार हो तो हम उद्योग करके वह जहाँ होगा, वहाँ से लाकर पेश कर देंगे। क्योंकि हमारा विश्वास है, कि वह सर्वथा निर्दोष है, नाहक़ छिप कर सरकार का सन्देह सिर पर लेने का बचपन करता है। यदि यह प्रार्थना स्वीकार हो जाय तो उसे सौंप दिया जाय, वरना फिर देखा जायगा। भारतीय पुलिस के उच्च गोरे अधिकारियों ने यह शर्त स्वीकार की और पहली बार प्रताप उनके हाथ में आया। कुछ दिन इधर-उधर घुमा कर कोटे ले जाकर वह छोड़ दिया गया।

प्रताप कोटा रह कर, कोटा-केस में अपने परम प्यारे पिता को कैसे-कैसे प्रपञ्चों के जाल में फाँसा जा रहा है, यह सब

सजगता से देखता रहा। पिता की दृढ़ता और धैर्य उसके हृदय में आनन्द, गौरव और तेज भरते थे। देशभक्ति सत्ता के मदान्ध प्राणी अत्याचारों का पेट्रोल उँड़ेल रहे थे। माता का विश्वास धमनी का काम दे रहा था। बन्धन में पड़े हुए पिता को प्रताप ने सन्देश भेजा—"दाता! (पिता को वह इसी शब्द से पुकारता था) कुछ विचार न करें, अभी प्रताप जिन्दा है।"

ठाकुर केसरीसिंह जी को आजन्म कारावास की सजा सुना दी गई। जुलूस भी सब बिखर गया। एक दिन प्रताप ने जननी से कहा—"मामा धोती फट गई; कहीं से तीन रुपए का प्रबन्ध कर दो तो धोती लाऊँ, आज ही चाहिए।" माता के हाथ तो सर्वथा खाली थे, कोशिश करके दो रुपए मिले और पुत्र के हाथ में दिए। प्रताप के लिए माता का दिया हुआ यही अन्तिम आशीर्वाद था। बिना कुछ कहे, मन ही मन माता को अन्तिम प्रणाम कर सायङ्काल होते ही वह निकल पड़ा। शहर में पिता के एक मित्र के पास पहुँचा, कहा,—"जो कुछ भी तय्यार हो, भोजन यहीं करूँगा।" भोजन करते समय मित्र ने कहा—कुँवर साहब! अब क्या इच्छा है?" प्रताप ने कहा—"शादी करना है।" "क्या कहते हो, शादी? आज तक स्वीकार न की, अब इस घोर विपत्ति में शादी? यह क्या सूझी" "हाँ निश्चय ही शादी, लग्न भी आ गई है, उसी के लिए जाता हूँ" "कहाँ?" "सब सुन लोगे"—यह कहते हुए जोर से "वन्देमातरम्" का नारा लगाया और अदृश्य हो गया! उसके बाद प्रताप को

किसी ने कोटे में नहीं देखा। बेचारा मित्र क्या समझे कि प्रताप की शादी क्या है? दूसरे दिन जब प्रताप घर नहीं लौटा, तो वही मित्र आए और शादी की बात कही। चतुर माता सब समझ गई और कहा—"ठीक है, परन्तु उसने मुझसे नाहक़ ही छिपाया। मैं उसे तिलक करके और चुम्बन लेकर विदा करती।"

प्रताप कोटा छोड़ कर इधर-उधर भ्रमण करते हुए सिन्ध हैदराबाद पहुँचा और कुछ दिन वहाँ रहा। उसके साथ में उसका एक सच्चा बाराती चारण-जाति ही का वीर ठाकुर गणेश-दान था। दुःख है, प्रताप के गिरफ़्तार हो जाने की ख़बर से इसके प्रेमी-हृदय पर ऐसी चोट पहुँची, कि बलिष्टकाय को भयङ्कर संग्रहणी एवं क्षय शीघ्र ही चाट गए। इधर-उधर छिपते-टकराते इस वीर का देहआवसान हो गया!

इससे पहले प्रताप ने कहाँ क्या किया, उसका आभास "बन्दी-जीवन" "पञ्जाबनूँ प्रचण्ड कावत्रू" आदि पुस्तकों में एवं रासबिहारी बोस के संस्मरणों में मिलता है, जिसका परिचय पाठकों को क्रमानुसार मिलेगा ही।

अन्त में फिर जब पञ्जाब को प्रताप की आवश्यकता हुई, तब आह्वान पाकर वह उधर लपका। हैदराबाद के कार्य को दूसरों के हाथ सौंप, गरमी, भूख और चार-पाँच दिन का जागरण सहता हुआ, रेल से जोधपुर होकर निकला। जोधपुर से अगले छोटे से रेलवे स्टेशन "आसानाडा" पर स्टेशन मास्टर परिचित था। वहाँ ठहर कर कुछ आराम कर लेने, व कुछ नई बात हो

तो जान लेने के विचार से, प्रताप वहाँ उतर पड़ा। उसे क्या मालूम था कि वह विश्वासघाती के चङ्गुल में जा रहा है। स्टेशन-मास्टर को इस बीच में पुलिस ने फोड़ लिया था। स्टेशन-मास्टर ने प्रताप को देखते ही कहा—"पुलिस तुम्हारे लिए चक्कर लगा रही है, कोई देख लेगा, मेरी कोठरी में जा बैठो, कुछ खाओ-पियो।" वह प्रताप को कोठरी में ले गया। प्रताप ने कहा—"निद्रा सता रही है, सोऊँगा।" विश्वासघाती ने कहा—'निःशङ्क सो जाओ। ताला मार देता हूँ, ताकि किसी को भ्रम न हो।" गाढ़ निद्रा होने पर स्टेशन-मास्टर ने कोठरी में से प्रताप का शस्त्र व दूसरी सब चीज़ बाहर निकाल ली, ताकि मुक़ाबले के लिए प्रताप के हाथ में कुछ न रहे। फिर उसने जोधपुर-पुलिस को टेलीफ़ोन कर दिया। बस फिर क्या था, पुलिस फ़ौजी रिसाला और दल-बल के साथ जा पहुँचा। आसानाडा घेर लिया गया, कोठरी के द्वार और खिड़कियों पर बर्छे और सङ्गीनें अड़ा दी गईं। चुपके से ताला खोल कर, सोते हुए प्रतापसिंह पर पुलिस टूट पड़ी और बेचारा गिरफ़्तार कर लिया गया।

उस समय प्रताप की उग्र मुख-मुद्रा, जोश भरी लाल आँखें, फड़कते हुए होंठ और उलझते हुए बाहुओं को जिनकी आँखों ने देखा है, वे आज भी कहते हैं, कि वह सच्चा वीर था, सँभल जाता तो अवश्य वीर-खेल बतलाता।

आज भी आँखों में पानी भर कर पुलिस के काले ऑफ़िसर

मुक्त-कण्ठ से कहते हैं—"हमने आज तक प्रताप-जैसे वीर और विलक्षण बुद्धि का बालक नहीं देखा। उसे तरह-तरह से सताए जाने में कसर नहीं रक्खी गई, परन्तु वाह रे धीर! टस से मस न हुआ। ग़ज़ब का सहने वाला था। सर चार्ल्स क्लीवलैण्ड (भारत के डायरेक्टर ऑफ़ सी० आई० डी०) जैसे घाघ का दिमाग़ भी चकरा गया, हम सब हार बैठे, उसी की दृढ़ता अचल रही।"

बनारस में केस चला और प्रताप को पाँच वर्ष की स़ख्त सज़ा हुई। बनारस-जेल से बरेली जेल में भेजा गया और वहीं विक्रम सम्वत् १९७५ (सन् १९१९) की वैशाखी पूर्णिमा को ठीक पच्चीसवें वर्ष की समाप्ति पर सदा के लिए ग़ुलामी के बन्धन तोड़ कर चला गया!

श्री० रामप्रसाद 'बिस्मिल'

पराधीनता के इस युग में दिव्य आलोक को धारण कर, न जाने वे कहाँ से आए, अपने कल्पना-राज्य में स्वर्ग-लोक की बीथियों का निर्माण किया और अन्त में विश्व को आभा की एक झलक दिखाकर अपने प्यारे मालिक के पास चले गए। उस दिन विश्व ने विमुग्ध नेत्रों से उनकी ओर देखा, श्रद्धा और भक्ति के फूल भी चढ़ाए। उस दिन, जब उस मोहिनी मूर्त्ति की मदभरी आँखें सदा के लिए बन्द हो गई थीं, तो उनकी एक झलक मात्र के लिए जन-समूह पागल-सा हो उठा था। धनिकों

ने रुपए लुटाए, मेवे वालों ने मेवों से सत्कार किया, माताओं और बहिनों ने छतों पर से फूलों की वर्षा की और जनता ने 'वन्देमातरम' के उच्च निनाद के साथ उसका स्वागत किया। उस प्यारे के उस दिन वाले निराले वेष को देखकर माताएँ रो पड़ीं, वृद्ध सिसकियाँ लेने लगे, युवकों के तरुण हृदय प्रति-हिंसा की आग से जल उठे और बालक झुक-झुक कर प्रणाम करने लगे।

मैनपुरी ज़िले के किसी गाँव में सन् १९००के लगभग आपका जन्म हुआ था, किन्तु बाद में आपके पिता पण्डित मुरलीधर जी सपरिवार शाहजहाँपुर में आकर रहने लगे और अन्त तक यही स्थान हमारे चरित्र-नायक का लीला-क्षेत्र रहा। अस्तु, उर्दू की शिक्षा पाने के बाद माता-पिता नें स्थानीय अङ्ग-रेज़ी स्कूल में भर्ती करा दिया था। उन दिनों आपका जीवन कुछ विशेष अच्छा न था। किन्तु इसी बीच में आर्यसमाज के प्रसिद्ध स्वामी सोमदेव से आपका परिचय हो गया। बस यहीं से जीवन ने पलटा खायो और वे स्वामी जी के साथ-साथ आर्य-समाज के भी भक्त बन गए। आप स्वामी जी को गुरु कहा करते थे। यह भी कहा था, कि देश-सेवा के भाव पहले-पहल आपको स्वामी जी से ही मिले थे। अस्तु—

सन् १९१५ के विराट विसवायोजन में विफल हो जाने के बाद भी क्रान्तिकारी लोग एकदम निराश न हुए, वरन् उन्होंने मैनपुरी को केन्द्र बनाकर फिर कार्य आरम्भ कर दिया! श्री०

गेंदालाल दीक्षित की अध्यक्षता में बहुत दिनों तक काम होते रहने के बाद अन्त को इसका भी भेद खुल गया और फिर गिरफ़्तारियों का बाज़ार गर्म हो उठा। दल के बहुत से लोगों के पकड़े जाने पर भी मुख्य कार्यकर्त्ताओं में से कोई भी हाथ न आ सका। उस समय आप अङ्गरेज़ी की दसवीं कक्षा में थे। ज़ोरों से धड़-पकड़ होते देख, अपनी गिरफ़्तारी का हाल सुनकर आप फ़रार हो गए।

मैनपुरी-विप्लव-दल के नेता श्री० गेंदालाल के ग्वालियर में गिरफ़तार हो जाने पर, उन्हें जेल से छुड़ाने के विचार से आप-ने १९ वर्ष की अवस्था में अपने साथ के पन्द्रह और विद्यार्थियों को लेकर पहली डकैती की थी। इस पहले ही प्रयास में उन्होंने जिस दृढ़ता तथा साहस से काम लिया था, उसे देखकर यही कहना पड़ता है, कि वे स्वभाव से ही मनुष्यों के नेता थे।

प्रायः सभी अनुभवी सदस्य पकड़े जा चुके थे। अस्तु, स्कूल के पन्द्रह विद्यार्थियों को लेकर ही आप अपने निश्चय पर चल दिए। पिता से कहा—

"मेरे एक मित्र की शादी है, वे गाड़ी ले जाना चाहते हैं। गाड़ीवान उन्हीं का रहेगा और मुझे भी उसमें जाना पड़ेगा।" सरल स्वभाव-पिता ने गाड़ी दे दी। उन्हें क्या पता, कि यह कैसी शादी है। सन्ध्या समय प्रार्थना कर, कुछ रात बीतने पर, एक स्थान पर गाड़ी रोक दी गई। निश्चित स्थान वहाँ से १० मील की दूरी पर था। एक आदमी को गाड़ी पर छोड़, शेष सभी

साथी पैदल ही चल दिए। किन्तु उस दिन अँधेरे में मार्ग भूल जाने से वह गाँव न मिला । निराश हो, सब के सब गाड़ी के पास वापस आए। दूसरे दिन थोड़े ही प्रयास के बाद वह स्थान मिल गया। अँधेरी रात में चारों ओर निस्तब्धता का राज्य था। निद्रा के मोहक जाल में सारा संसार बेसुध सोया पड़ा था। तीन लड़कों को मकान की छत पर चढ़ाने की आज्ञा हुई। लाड़-प्यार से पाले गए स्कूल के उन लड़कों ने काहे को कभी ऐसे भयानक कार्य में भाग लिया होगा ? देर करते देख कप्तान ने ज़ोर से कहा—"यदि ऐसा ही था तो चले ही क्यों थे ?" इस बार साहस कर वे लोग मकान की छत पर चढ़ गए। आज्ञा हुई—"अन्दर कूद कर दरवाज़ा खोल दो।" किन्तु यह काम तो और भी कठिन था । कप्तान ने फिर कहा—"जल्दी करो, देर करने से विपद् की सम्भावना है।" इसी प्रकार तीन बार कहने पर भी कोई नीचे न उतर सका । वे लोग इधर-उधर देख ही रहे थे, कि एक ज़ोर की आवाज़ के साथ बन्दूक़ की गोली से एक का साफ़ा नीचे आ गिरा। इस बार तीनों बिना कुछ सोचे-विचारे मकान में कूद पड़े और अन्दर से मकान का दरवाज़ा खोल दिया। सब लोगों को यथास्थान खड़ा कर, स्वयं छत पर से आदेश देने लगे। डकैती समाप्त भी न हो पाई थी, कि गाँव में ख़बर हो गई और चारों ओर से ईंटें चलने लगी। यह देख कर लड़के घबड़ा गए। आपने पुकार कर कहा —"तुम लोग अपना काम करते रहो, यदि कोई भी काम से हटा तो मेरी गोली का निशाना

बनेगा।" एक ने नीचे से पुकार कर कहा—"कप्तान, ईंटों के कारण कुछ करते नहीं बनता।" आपने जिस ओर से ईंटें आ रही थीं, उधर जा कर कहा—"ईंटें बन्द कर दो, अन्यथा गोली से मारे जाओगे।" इतने में एक ईंट आँख पर आकर लगी, देखते-देखते कपड़े खून से तर हो गए। उस समय उस साहसी वीर ने आँख की कुछ भी परवा न कर, गोली चलाना शुरू कर दिया। दो ही फ़ायरों से ईंटें बन्द हो गईं। इधर डकैती भी समाप्त हो चुकी थी। अस्तु, सब लोग वापस चल दिए। पहले दिन के थके तो थे ही, आधी दूर चल कर ही प्रायः सब लोग बैठने लगे। बहुत कुछ साहस बँधाने पर उठ कर चले ही थे कि एक विद्यार्थी बेहोश हो कर गिर गया। कुछ देर के बाद होश आने पर उसने कहा—"मुझ में अब चलने की शक्ति नहीं है। तुम लोग मेरे लिए अपने आप को सङ्कट में क्यों फँसाते हो। मेरा सर काट कर लेते जाओ अभी कुछ रात शेष है, तुम लोग आसानी से पहुँच सकते हो। सर काट लेने पर मुझे कोई भी पहचान न सकेगा और इस प्रकार तुम सब लोग बच सकोगे।" साथी की इस बात से सब की आँखों में आँसू आ गए। चोट लगने के कारण उस समय हमारे नायक की आँख से काफ़ी खून निकल चुका था, किन्तु फिर भी और लोगों से आगे चलने को कह कर आप ने उसे अपनी पीठ पर उठाया और ज्यों-त्यों कर चल दिए। जिस स्थान पर गाड़ी खड़ी थी, उसके थोड़ी ही दूर जाने पर आपने उस विद्यार्थी को एक वृक्ष के नीचे

लिटा दिया, और स्वयं गाड़ी के पास जाकर, जो एक व्यक्ति उसकी निगरानी के लिए रह गया था, उसे साथी को लेने के लिए भेजा। मकान में पिता के पूछने पर कह दिया—"बैल बिगड़ गए; गाड़ी उलट गई और मेरे चोट आ गई।"

जिस समय फ़रार होकर आप एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागते फिर रहे थे, उस समय की कथा भी बड़ी करुणाजनक है। उस बीच में कई बार आपको मौत का सामना करना पड़ा था। कुछ दिन तो पास में पैसा न रह जाने के कारण, आपने घास तथा पत्तियाँ खाकर ही अपने जीवन का निर्वाह किया था। नैपाल, आगरा तथा राजपूताना आदि स्थान में घूमते रहने के बाद एक बार अख़बार में देखा कि *Royal Proclamation* (सरकारी एलान) में आप पर से भी वॉरण्ट हटा लिया गया है। बस, आप घर वापस आ गए और रेशम के सूत का एक कारख़ाना खोल कर कुछ दिन तक आप घर का काम-काज देखते रहे। किन्तु जिस हृदय में एक बार आग लग चुकी, उसे फिर चैन कहाँ? अस्तु, फिर से दल का सङ्गठन प्रारम्भ कर दिया।

एक बार किसी स्टेशन पर जा रहे थे। क़ुली बॉक्स लेकर पीछे-पीछे चल रहा था, कि ठोकर खाकर गिर पड़ा। बहुत-सी कारतूसों के साथ कई एक रिवॉल्वर्स बक्से में से निकल कर प्लेटफ़ॉर्म पर गिर पड़े। क़ुली पर एक सूट-बूटधारी साहब-बहादुर द्वारा बुरी तरह मार पड़ती देख, पास खड़े हुए दरोग़ा

साहब को दया आगई। कुली को क्षमा करने की प्रार्थना कर, बेचारे स्वयं ही सारा सामान बॉक्स के अन्दर भरने लगे। उस दिन यदि आप तनिक भी डर जाते और इस बुद्धिमानी से काम न लेते तो निश्चय ही गिरफ़्तार हो गए थे।

माताओं के लिए भी उस भावुक हृदय में कम श्रद्धा न थी। उनके तनिक भी अपमान को देखकर वह पागल-सा हो उठता था। एक समय की बात है। पेशेवर डाकुओं के एक सरदार ने आपके पास आकर अपने आपको क्रान्तिकारी दल का सदस्य बतलाया और उसके द्वारा की जाने वाली डकैतियों में सहयोग देने की प्रार्थना की। निश्चय हुआ कि पहली डकैती में हमारे नायक केवल दर्शक की भाँति ही रहेंगे और उनके कार्य सञ्चालन का ढङ्ग देखकर उसी के अनुसार अपना निश्चय करेंगे। स्थान और दिन नियत होने पर डकैती वाले गाँव में पहुँचे। मकान देखकर आपने कहा—"इस झोपड़ी में क्या मिलेगा? आप लोग व्यर्थ ही इन ग़रीबों को तङ्ग करने आए हैं।" यह बात सुनकर सब लोग हँस पड़े। एक ने कहा—"आप शहर के रहने वाले हैं; गाँव का हाल क्या जानें? यहाँ ऐसे ही मकानों में रुपया रहता है।" ख़ैर, अन्दर घुसने पर सब लोग अपनी मनमानी करने लगे। मकान में उस समय पुरुष न थे। उन लोगों ने स्त्रियों को बुरी तरह तङ्ग करना शुरू कर दिया। मना करने पर फिर वही जवाब मिला—"तुम क्या जानो?" अधिक अत्याचार होते देख, आपने एक से थोड़ी

देर के लिए बन्दूक़ तथा कुछ कारतूस माँग लिए। वहाँ से पुकार कर कहा—"ख़बरदार, यदि किसी ने भी स्त्रियों की ओर आँख उठाई तो गोली का निशाना बनेगा।" कुछ देर तो काम ठीक तौर से होता रहा, किन्तु बाद में एक दुष्ट ने फिर किसी स्त्री का हाथ पकड़ कर रुपया पूछने के बहाने कोठरी की ओर खींचा। इस बार नायक ने ज़बान से कुछ भी न कहकर उस पर फ़ायर कर दिया। छर्रों के पैर में लगते ही वह तो रोता-चिल्लाता अलग जा गिरा और बाक़ी लोगों के होश गुम हो गए। आपने ऊँची आवाज़ से कहा—"जो कुछ मिला हो उसे लेकर बाहर आओ।" कोई मिठाई की भेली सर पर लादकर और कोई घी का बर्तन हाथ में लटकाए बाहर निकला। जिसे कुछ भी न मिला उसने फटे-पुराने कपड़े ही बाँध लिए, यह तमाशा देखकर उस सौम्य-सुन्दर मूर्ति ने उस समय जो उग्र रूप धारण किया था उसका वर्णन करना मेरी लेखनी की शक्ति के परे है। बन्दूक़ सीधी कर सब सामान वहीं पर रखवा दिया और सरदार की ओर देखकर कहा—"पामर! यदि भविष्य में तूने फिर कभी अपनी स्वार्थसिद्धि के नाम पर क्रान्तिकारियों को कलङ्कित करने का साहस किया तो अच्छा न होगा। जा, आज तुझे क्षमा करता हूँ।" उस समय सरदार सहित दल के सभी लोग डर के मारे काँप रहे थे। इस डकैती में केवल साढ़े चौदह आने पैसे इन लोगों के हाथ लगे थे!!

एक दिन ९ अगस्त, सन् १९२५ ई० को सन्ध्या के आठ

बजे ८ नम्बर की गाड़ी हरदोई से लखनऊ जा रही थी। एकाएक काकोरी तथा आलमनगर के बीच ५२ नम्बर के खम्भे के पास गाड़ी खड़ी हो गई। कुछ लोगों ने पुकार कर मुसाफ़िरों से कह दिया कि हम केवल सरकारी ख़ज़ाना लूटने ही आए हैं। गार्ड से चाभी लेकर तिजोरी बाहर निकाली गई। इसी बीच में एक व्यक्ति नीचे उतरा और गोली से घायल होकर गिर गया। लगभग पौन घण्टा के बाद लूटने वाले चले गए। इस बार-क़रीब दस हज़ार रुपया इन लोगों के हाथ लगा।

२५ सितम्बर से गिरफ़्तारियाँ आरम्भ हो गईं और उसी में हमारे नायक भी पकड़े गए। डेढ़ साल तक अभियोग चलने के बाद आपको फाँसी की सज़ा हुई। बहुत कुछ प्रयत्न किया गया, किन्तु फाँसी की सज़ा कम न हुई और १९ दिसम्बर, सन् १९२७ ई० को गोरखपुर में आपको फाँसी की रस्सी से लटका दिया गया। आप 'बन्देमातरम्' और 'भारत माता की जय' के नारे लगाते हुए फाँसी के तख़्ते की ओर चल दिए और यह कहते गए :

मालिक तेरी रज़ा रहे औ' तू ही तू रहे।
बाक़ी न मैं रहूँ, न मेरी आरज़ू रहे॥
जब तक कि तन में जान, रगों में लहू रहे।
तेरा ही ज़िक्र था तेरी ही जुस्तजू रहे॥

इन पंक्तियों के लेखक ने उन्हें प्रथम तथा अन्तिम बार मृत्यु के केवल एक दिन पहले फाँसी की कोठरी में देखा था और

उनका यह सब हाल जाना था। उस सौम्य-मूर्ति की वह मस्तानी अदा आज भी भूली नहीं है। जब कभी किसी को उनका नाम लेते सुनता हूँ तो एकदम उस प्यारे का वही स्वरूप आँखों के सामने नाचने लगता है। लोगों को उन्हें गालियाँ देते देख, हृदय कह उठता है—"क्या वह डाकू का स्वरूप था?" अन्तस्तल में छिपकर न जाने कौन बार-बार यही प्रश्न करने लगता है—"क्या वे हत्यारे की आँखें थीं?" भाई! दुनिया के सभ्य लोग कुछ भी क्यों न कहें, किन्तु मैं तो उसी दिन से उनका पुजारी हूँ।

सेनापति फूलासिंह

इतिहास पढ़ने वालों को यह बात स्पष्ट रूप से विदित होगी कि जिस समय भारतवर्ष की सम्पूर्ण विभूतियाँ मरणासन्न हो रही थीं, पवित्र जन्म-भूमि अत्याचार से जर्जरित हो रही थी, न्याय का अन्याय के साथ जहाँ-तहाँ तुमुल युद्ध हो रहा था और स्वाधीनता का आधिपत्य धीरे-धीरे ज़ोर पकड़ रहा था, उस समय वीर-प्रसूता पञ्जाब भूमि में पञ्जाब-केसरी महाराजा रणजीतसिंह जी स्वाधीनता के पुजारी लाहौर में सिंहासनारूढ़ थे। रणजीतसिंह बड़े प्रजावत्सल, देशभक्त, न्याय-प्रिय, वीर और साहसी शासक थे। इनका राज्य सम्पूर्ण पञ्जाब के अतिरिक्त, थोड़ा-बहुत अफ़ग़ानिस्तान में भी फैल गया था।

में से एक थे, जो अपनी एकनिष्ठ स्वामि-भक्ति, देश-भक्ति, वीरता और धीरता के कारण एक छोटे पद से इस पद को पहुँचे थे। रणजीतसिंह ने :

कुल सपूत जान्यो पड़े, लखि सब लच्छन गात।
होनहार विरवान के, होत चीकने पात॥

के सम्पूर्ण लक्षण देख कर बाल्यावस्था ही में इन्हें अपने पास सेवा में रख लिया। फूलासिंह यद्यपि पहले एक सेवक की नाईं था तो भी राजा के साथ रह कर बाल्यावस्था से ही धनुर्विद्या और घोड़े की सवारी में बहुत पटु हो गया और धीरे-धीरे शिकार खेलते-खेलते उपरोक्त गुणों से विभूषित किया गया। महाराज ने उसकी ऐसी वीरता और अदम्य उत्साह देख कुछ कालोपरान्त सेवक पद से हटा कर अपनी सेना का प्रधान सेनापति मुक़र्रर कर लिया!

सेनापति का पद प्राप्त कर यह और भी उन्नति की ओर अग्रसर हुआ और सच्चा देशहितैषी बन अपने कर्त्तव्य का परिचय देने लगा! उसकी धाक यहाँ तक छाई कि उसके आतङ्क से समस्त पञ्जाब और देश के नवीनशासक (अङ्गरेज़ जाति) जो उस समय समस्त भारत को पराजित करते हुए पञ्जाब की ओर बढ़ रहे थे, काँपने लगे। फूलासिंह की यह बढ़ती हुई धाक देख अङ्गरेज़ों के हौसले तङ्ग हो गए। उसको दमन करने के लिए अङ्गरेज़ों ने अनेक षड्यन्त्र गुप्त-रूप से करने प्रारम्भ कर दिए और रणजीतसिंह तथा अफ़ग़ानों में वैमनस्य का

बीज डाल, अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगे। किन्तु इसमें उन्हें रणजीतसिंह के मुक़ाबले में कई बार मुँह की खानी पड़ी।

रणजीतसिंह के राज्य पर अधिकार कर लेना कोई साधारण कार्य न था—इसको अङ्गरेज़ों ने अपने दिलों में ख़ूब समझा। अपने शासन का दृढ़ सङ्कल्प करके उन्होंने प्रथम रणजीतसिंह से गुप्त-रूप से मैत्री की। मैत्री करने के पश्चात् अफ़ग़ानों पर अपना अधिकार जमाने के लिए उकसाया। रणजीतसिंह ने उनके कहने में आकर मुल्तान, पेशावर तथा काश्मीर आदि स्थानों पर, जहाँ अफ़ग़ानों का ज़ोर ज्यादा था, सरदार फूलासिंह को भेजा और सर करवाए। सरदार ने उपरोक्त स्थानों पर लड़ाई लड़ कर अपना अधिकार कर लिया।

जब अङ्गरेज़ों ने देखा कि हमारा फूलासिंह के मारे जाने का स्वार्थ पूर्ण नहीं हुआ और पञ्जाब पर अपना अधिकार न कर सके, तब वे दिलों में बहुत डरे। उन्होंने दूसरा षड्यन्त्र रच कर सन्, १८०८ ई० में अपना सरदार पञ्जाब-केशरी रणजीतसिंह के पास सन्धि को भेजा। सन्, १८०८ ई० में ब्रिटिश सरकार की ओर से कर्नल अकटरलोनी पञ्जाब-केशरी से सन्धि करने को लाहौर गए और उनसे गुप्त सन्धि कर ली। फूलासिंह को इस सन्धि का हाल विदित नहीं हुआ, किन्तु बाद में फूलासिंह ने जो ये सुना कि अङ्गरेज़ लोग अब पञ्जाब में आते हैं, तो वह बहुत बिगड़ा। तुरन्त भरे दरबार में हाथ में नङ्गी तलवार ले महाराजा के समीप स्वदेशाभिमान के जोश में लाल-लाल

नेत्र किए हुए पहुँचा और सिंहनाद करके इस प्रकार कहने लगा कि "महाराज! परदेशी अङ्गरेज हमारे राज्य में आकर जनता को अत्यन्त कष्ट दे रहे हैं। आप मेरी मदद कीजिए, मैं उनको निकाल दूँ, नहीं तो आपको मैं वजीरों, अमीरों सहित, जो कि एक बाहरी शत्रु से मिल गए हैं, मार डालूँगा!"

दरबारी यह सुन कर एकदम स्तब्ध हो गए। दरबार में सन्नाटा छा गया। महाराज ने भी उस देश-भक्त वीर बालक को क्रोधाग्नि में जलते और नङ्गी तलवार हाथ में तौले हुए देखा। रणजीतसिंह ने आश्चर्यान्वित हो, उसे धीरज बँधाया और उससे नर्मी के साथ क्रोध को शान्त करते हुए कहने लगे कि "अब तो मैं अङ्गरेजों से सन्धि-बन्धन कर चुका हूँ, उन के विरुद्ध तुम्हारी सहायता करके अपना वचन-भङ्ग नहीं कर सकता और तुम भी अङ्गरेजों में पूर्ण-रूप से विश्वास रक्खो कि वे भी मेरे वचन-बद्ध हैं, तुम्हारे राज्य में न आएँगे।" हाँ काबुल के पठानों से अभी मेरी और अङ्गरेजों की सन्धि नहीं हुई है और वे तुम्हारा राज्य अपहरण करना चाहते हैं तथा इसी हेतु उनसे युद्ध हो रहा है, तुम उनसे अपनी शक्ति से काम ले सकते हो।"

अङ्गरेजों की कूट-नीति चल गई। फूलासिंह यह सुन कर कि अङ्गरेज हमारे और देश के हितचिन्तक हैं, तथा अफ़ग़ान हमारे देश के कट्टर दुश्मन हैं, ख़ुशी के मारे फूल गए और महाराज से बोले कि "बहुत अच्छा महाराज, अब उन्हीं से लड़ूँगा। वे तो मेरा ही राज्य लेना चाहते हैं। किन्तु जो आपका

हाथ मेरे सिर पर रहेगा और मेरी सदैव इसी भाँति रक्षा करते रहेंगे तो मैं उनका राज्य छीन लूँगा, आज्ञा दीजिए। मैं जाता हूँ और अफ़ग़ानों पर विजय पा शीघ्र लौट आता हूँ।"

महाराजा रणजीतसिंह की आज्ञा से वीर-बालक सेनापति, अपनी सेना ले पठानों पर चढ़ गया। यद्यपि पठान उस समय अचेत बैठे थे। वह भी वीर फूलासिंह का एकाएक अपने राज्य पर चढ़ आना, सुन कर हैरान हुए। बिना रण-इच्छा के उन्होंने भी अपनी-अपनी सेना में रण-डङ्का बजवा दिया! दोनों ओर की सेनाओं में युद्ध प्रारम्भ हो गया! मुसलमानी सेना 'अल्लाहो अकबर' और सिक्ख सेना 'जय गुरुदेव' कह कर एक-दूसरे पर टूट पड़ीं, कई दिनों तक लड़ाई छिड़ी रही। फूलासिंह ने कई स्थानों पर विजय पाई और कई घमासान लड़ाइयों के पश्चात, उस दिन राज-सभा मध्य में जैसा कहा था वैसा ही कर दिखाया।

नौशेरा के युद्ध में काबुल के मन्त्री अज़ीम ख़ाँ पर विजय पाकर काम आया।

अङ्गरेज़ उस वीर का मरना सुन हँसे और पञ्जाब पर चढ़ आए। कुछ कालोपरान्त सम्पूर्ण पञ्जाब पर अपना आधिपत्य जमा लिया! किन्तु वह वीर! नहीं! नहीं! भारत-व्योम-मण्डल का दीप्तमान-सितारा सदैव के लिए विलीन हो गया। आज किसी को उसका स्मरण तक नहीं है!

श्री० सुखदेव

सरदार भगतसिंह के साथ फाँसी पर लटकाए जाने वाले, उनके अन्यतम साथी श्री० सुखदेव खास लायलपुर (पञ्जाब) के रहने वाले थे। आपका जन्म मि० फाल्गुण सुदी ७, सं० १८६२ को पौने ग्यारह बजे दिन को हुआ था। आपके जन्म से तीन महीने पहले ही आपके पिता का देहान्त हो चुका था, इसलिए आपकी परवरिश और शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध आपके चाचा लाला अचिन्तराम ने किया था।

पाँच वर्ष की उम्र में बालक सुखदेव को पढ़ाने के लिए स्थानीय 'धनपतमल आर्य-हाई-स्कूल' में भरती किया गया। यहाँ आपने केवल सातवीं श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद फिर लायलपुर सनातनधर्म हाई-स्कूल भेजे गए और सन् १९२२ में इसी स्कूल से द्वितीय श्रेणी में इण्ट्रेन्स की परीक्षा पास की थी। श्री० सुखदेव बड़े मेधावी और तीव्र-बुद्धीशाली थे। किसी परीक्षा में कभी अनुत्तीर्ण न हुए, वरन् प्रति वर्ष अच्छे नम्बरों के साथ पास होते गए। आपका स्वभाव बड़ा ही शान्त और कोमल था, इसलिए आपके सहपाठी और शिक्षक सदैव आपको आदर और प्यार करते थे। कहते हैं, आपके स्वभाव पर आपकी माता के धार्मिक संस्कारों का विशेष प्रभाव पड़ा था। आपके स्वभाव में उदारता की मात्रा यथेष्ट थी। आप अपने सिद्धान्तों में बड़े दृढ़ थे। जो दिल में समा जाती थी, उसे वह सारे संसार के विरोध करने पर भी छोड़ना नहीं चाहते थे। आप अपनी धुन के पक्के थे। सहपाठियों में जब किसी विषय को लेकर तर्क-वितर्क उप-

स्थित होता तो, आप बड़ी दृढ़ता से अपना पक्ष-समर्थन करते और अन्त में आपकी अकाट्य युक्तियों के सामने प्रतिद्वन्दी को मस्तक झुका देना पड़ता। आर्य-परिवार में जन्म ग्रहण करने के कारण आपके विचारों पर आर्य-समाज का विशेष प्रभाव था। समाज के सत्सङ्गों में आप बड़े उत्साह से भाग लिया करते थे। इसके सिवा हवन, सन्ध्या और योगाभ्यास का भी शौक़ था। कुछ दिनों तक आपने बड़े उमङ्ग से इन धार्मिक क्रियाओं का पालन किया था।

सन् १९१९ में पञ्जाब के कई शहरों में 'मार्शल लॉ' जारी था। उस समय श्री० सुखदेव की उम्र कुल १२ साल की थी और आप सातवीं कक्षा में पढ़ते थे। आपके चचा श्री० अचिन्तराम 'मार्शल-लॉ, के अनुसार गिरफ़्तार कर लिए गए। बालक सुखदेव के मन पर इस घटना का विशेष प्रभाव पड़ा। लाला अचिन्तराम का कहना है, कि उन दिनों सुखदेव कभी-कभी जेल में मुझ से मिलने आया करता था और अक्सर पूछा करता था कि क्या आपको यहाँ बहुत तकलीफ़ दी जाती है ? मैं तो किसी को भी सलाम न करूँगा।

उसी ज़माने में एक दिन शहर भर की सभी पाठशाला और विद्यालयों के विद्यार्थियों को एकत्र करके 'यूनियन-जैक' (ब्रिटिश झण्डा) का अभिवादन कराया गया था, परन्तु श्री० सुखदेव इसमें सम्मिलित नहीं हुए थे और श्री० अचिन्तराम के जेल से वापस आने पर उन्होंने बड़े गर्व से कहा था, कि मैं

झण्डे का अभिवादन करने नहीं गया।

सन् १९२१ में महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया। सारे देश में एक विचित्र जागृति की लहर दृष्टिगोचर होने लगी। श्री० सुखदेव के जीवन में भी एक विचित्र परिवर्तन आरम्भ हुआ। स्वतन्त्र प्रकृति और उच्च विचार के होने पर भी श्री० सुखदेव को कपड़े-लत्ते का बड़ा शौक़ था। वे अच्छे और क़ीमती कपड़े बहुत पसन्द करते थे। हैट-कोट और टाई-कॉलर का भी शौक़ था; परन्तु इस आन्दोलन के आरम्भ होते ही उन्होंने विलायती और विलायती ढङ्ग के कपड़ों का सदा के लिए परित्याग कर दिया। पहनने के लिए कुछ खद्दर के कपड़े बनवाए और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें अपने हाथ से साफ़ कर लिया करते। इसके साथ ही इसी समय से हिन्दी भाषा सीखने और उसके प्रचार का भी शौक़ हुआ। वे अपने साथियों को हिन्दी भाषा की महत्ता और उसके सीखने की आवश्यकता बताया करते थे। उनका विचार था कि देश के उत्थान के लिए एक राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता है और उस आवश्यकता की पूर्ति केवल हिन्दी भाषा ही कर सकती है।

हम ऊपर लिख आए हैं कि असहयोग आन्दोलन ने श्री० सुखदेव की कायापलट कर दी थी। सादगी उनके जीवन का ध्येय बन गया था और शायद राष्ट्र-सेवा ही जीवन का ध्येय भी बन चुकी थी। इधर माता और बहिन विवाह की चिन्ता

करने लगीं, परन्तु चचा इसके विरुद्ध थे। क्योंकि आर्य-समाज के सिद्धान्त के अनुसार पचीस वर्ष की उम्र से पहले लड़के की शादी करना उन्हें पसन्द न था। माता जब कहतीं, कि सुख-देव, मैं तुम्हारी शादी करूँगी और तुम घोड़ी पर चढ़ोगे तो श्री० सुखदेव सदैव यही उत्तर देते कि मैं घोड़ी पर चढ़ने के बदले फाँसी पर चढ़ूँगा।

सन् १९२२ में श्री० सुखदेव के एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास कर लेने पर लाला अचिन्तराम जेल में थे। उन्होंने वहीं से आज्ञा दी कि उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिए लाहौर के डी० ए० वी० कॉलेज में नाम लिखा लो; परन्तु श्री० सुखदेव ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने चचा की इच्छा और आदेश के विरुद्ध 'नेशनल कॉलेज' में नाम लिखाया। यहीं उनका परिचय सरदार भगतसिंह आदि से हुआ। इनकी मण्डली में पाँच सदस्य थे। इन लोगों में परस्पर बड़ा ही प्रेम था। विद्यालय के अन्यान्य विद्यार्थी तथा कई शिक्षक इन्हें 'पञ्च पाण्डव' के नाम से याद किया करते थे।

श्री० सुखदेव को एक बार यूरोप की यात्रा करने की बड़ी इच्छा थी। इसी इच्छा से आप स्वामी सत्यदेव के साथ भी कुछ दिनों तक रहे और वहाँ के विभिन्न देशों की भाषाएँ सीखने का विचार किया। परन्तु कई कारणों से आपको इसमें सफलता न मिली। फलतः तीन महीने के बाद आपने स्वामी सत्यदेव जी का साथ छोड़ दिया।

यूरोप-यात्रा के अतिरिक्त श्री० सुखदेव और उनके कई सहपाठियों को पहाड़ी सैर का भी बड़ा शौक़ था। फलतः सन् १९२० के ग्रीष्मावकाश में इन लोगों ने काङ्गड़ा के पहाड़ी प्रदेशों का पैदल भ्रमण करने का विचार किया। इस यात्रा में श्री० यशपाल भी इनके साथ थे। वापस आने के समय एक दिन इस पार्टी को दिन भर में ४२ मील की यात्रा करनी पड़ी और महीकरन से कुल्लू तक ३४ मील की यात्रा रात को एक बजे तक करनी पड़ी।

साइमन कमीशन के आने पर पञ्च-पाण्डव ने निश्चय किया कि एक समारोहपूर्वक प्रदर्शन किया जाए। इसके लिए काली झण्डियाँ तैयार की जा रही थीं। सरदार भगतसिंह आदि पाँच-छः सज्जन अपने किसी मित्र के घर पर उक्त प्रदर्शन की तैयारी में लगे थे। लाला केदारनाथ जी सहगल भी थे। परन्तु उन्हें नींद आ गई और वे सो गए। सरदार भगतसिंह ने कहा, मुझे भी नींद आ रही है। मैं भी थोड़ा सो लूँ। परन्तु मित्रों ने इन्हें सोने न दिया। इसी समय उन्हें इस बात का ख्याल आया कि शायद पुलिस हमारे घर पर छापा मारे तो सुखदेव उस मकान में गिरफ़्तार हो जाएँगे। इसलिए एक आदमी श्री० सुखदेव को सावधान करने के लिए सरदार भगतसिंह के घर पर भेज दिया गया। थोड़ी देर के बाद उसने आकर खबर दी कि पुलिस सरदार भगतसिंह के मकान पर पहुँच गई है!

पुलिस ने श्री० सुखदेव से बहुत से प्रश्न किए। परन्तु उन्होंने किसी प्रश्न का भी उत्तर नहीं दिया। अन्त में पुलिस ने उन्हें गिरफ़्तार कर लिया और दिन के १२ बजे तक कोतवाली में बिठा रक्खा। इसके बाद कुछ लोगों ने वहाँ जाकर इन्हें छुड़वाया। जब पञ्जाब में एक विप्लवी-पार्टी क़ायम करने की सलाह हुई, तो सरदार भगतसिंह और श्री० सुखदेव ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि पञ्जाब के नवयुवकों को राजनीतिक शिक्षा दी जानी चाहिए। सरदार भगतसिंह ने प्रचार का कार्य आरम्भ किया। इसके बाद यह कार्य श्री० सुखदेव को सौंपा गया और आप बहुत दिनों तक बड़ी सफलता के साथ यह कार्य करते हैं। आपका यह सिद्धान्त था कि *Mine the work and thine the Praise* अर्थात्—"मैं केवल कार्य करना चाहता हूँ, प्रशंसा नहीं चाहता !"

इसके बाद १५ अप्रैल, सन् १९२९ को श्री० किशोरीलाल और प्रेमनाथ के साथ श्री० सुखदेव की गिरफ़्तारी हुई। अन्त में ७ अक्टूबर, सन् १९३० को आपको फाँसी की सज़ा सुनाई गई और २३ मार्च, सन् १९३१ को २४ वर्ष की उम्र में आप फाँसी पर लटका दिए गए !

आपके कार्यों का विशेष परिचय "अमर-शहीद सरदार भगतसिंह" नामक पुस्तक में मिलेगा जो स्वतन्त्र रूप से संस्था द्वारा प्रकाशित हुई है।

श्री० शिवराम राजगुरु

इन्हीं बिगड़े दिमाग़ों में घनी ख़ुशियों के लच्छे हैं।
हमें पागल ही रहने दो, कि हम पागल ही अच्छे हैं !!

—राजगुरु

वीर-भूमि महाराष्ट्र के विख्यात नगर पूना के पास 'चाकन' नाम का एक छोटा-सा गाँव है। जिस समय महाराष्ट्र-केसरी क्षत्रपति श्री० शिवाजी महाराज ने अपना 'हिन्दू-राज्य' स्थापित किया था, उस समय तक 'चाकन' उस प्रान्त की राजधानी था। श्री० शिवाजी महाराज के प्रपौत्र श्री० साहू जी के राजत्व-काल में चाकन के एक पण्डित, कचेश्वर नामक ब्राह्मण ने सारे देश पर अपने पाण्डित्य का सिक्का जमाया था। एक बार राज्य-प्रबन्ध सम्बन्धी किसी कार्य के लिए श्री० साहू जी को चाकन आना पड़ा। वहाँ आप से उपर्युक्त पण्डित जी से भेंट हुई। आप उनकी विद्वत्ता पर इतने मुग्ध हुए कि उन्हें अपना गुरु मान लिया और 'राजगुरु' की उपाधि से विभूषित किया। उसी समय से 'राजगुरु' इस वंश की पदवी हो गई। श्री० शिवराम हरिजी राजगुरु इसी प्रतिष्ठित वंश के एक वंशधर थे।

पण्डित कचेश्वर जी के सम्बन्ध में एक और किम्वदन्ती मशहूर है। कहते हैं, उन दिनों अवर्षण होने पर लोग पण्डितों को जप करने के लिए विवश किया करते थे और जब तक वर्षा नहीं हो जाती थी, तब तक उनका पिण्ड नहीं छोड़ते थे। एक बार भीषण अवर्षण आरम्भ हुआ। सतारा के सभी बड़े-

बड़े पण्डित जप कर चुके थे। अन्त में पण्डित कचेश्वर जी की बारी आई। विवश होकर उन्होंने भी जप आरम्भ कर दिया और आपके जप आरम्भ करने के दो-तीन दिन बाद ही पानी भी बरस गया। आसपास के चौरासी गाँव में वर्षा हुई। इसे सब लोग पण्डित जी की किसी अलौकिक शक्ति की महिमा समझने लगे और दक्षिणा के रुप में एक ख़ासी रक़म पण्डित जी को प्राप्त हुई। उसी समय से इस 'राजगुरु' को अब तक प्रतिवर्ष कुछ न कुछ प्राप्त होता है। यह नियम श्री० साहू जी महाराज के समय से ही चला आता है।

पण्डित जी के दो पुत्र थे, जिनमें छोटे तो वहीं सतारा में ही बस गए और बड़े पूना के पास खेड़ नामक गाँव में आकर रहने लगे। यही खेड़ा श्री० शिवराम का जन्म-स्थान है। आपके पिता श्री० हरि नारायण जी राजगुरु के दो स्त्रियाँ थीं। श्री० हरिनारायण जी की दूसरी स्त्री से दो लड़के हुए। जिनमें बड़े श्री० दिनकर हरिनारायण हैं और छोटे श्री० शिव-राम राजगुरु थे।

श्री० शिवराम का जन्म १९०९ में हुआ था। आप लड़कपन में बड़े ढीठ और ज़िद्दी थे। सन् १९१५ में जब शिव-राम की उम्र ६ वर्ष की थी, आप के पिता का देहान्त हो गया। आपके बड़े भाई श्री० दिनकर जी उन दिनों पूना में नौकरी करते थे; इसलिए पिता की मृत्यु के बाद आप सपरि-वार पूना में ही रहने लगे। श्री० शिवराम प्रारम्भिक शिक्षा के लिए

एक मराठी पाठशाला में भेजे गए। परन्तु उनकी वहाँ तबीयत पढ़ने-लिखने में नहीं लगती थी। वे अपना अधिकांश समय अपने सहपाठियों के साथ खेल-कूद करने में ही बिताया करते थे। अभी मराठी की आठवीं श्रेणी में ही थे कि सन् १९२४ में, जब कि आपकी उमर चौदह वर्ष की थी, एक दिन बड़े भाई ने डाँट-डपट की कि खेल-कूद छोड़ कर पढ़ने-लिखने में जी लगाओ। इससे भयभीत होकर आपने पाठ्य-पुस्तक के एक उपन्यास को लेकर पढ़ना आरम्भ कर दिया। इस पर भाई और बिगड़े और कहा कि अगर तुम्हें पढ़ना नहीं है तो घर से निकल जाओ।

वही हुआ, श्री० शिवराम घर से निकल पड़े। उस समय जेब में केवल ९ पैसे थे। रात इन्होंने पना-स्टेशन के मुसाफिरखाने में बिताई। सवेरे वहाँ से उठे और बिना सोचे-विचारे अपने जन्म-स्थान खेड़ा में पहुँचे। परन्तु गाँव में, इसलिए प्रवेश नहीं किया कि लोग पहचान लेंगे। सारी रात बिना खाए-पिए एक मन्दिर में पड़े रहे। दूसरे दिन नारायण नाम के एक दूसरे गाँव में पहुँचे और वहाँ भी गाँव से बाहर एक कुएँ पर रात बिताई। घर से जो ९ पैसे लेकर चले थे, उनके आम खरीद कर खा लिया था। तीसरे दिन भूख के मारे अँतड़ियाँ कुलकुला रही थीं। कुएँ के नीचे एक पक्षी का खाया हुआ आधा आम पड़ा था। आपने उठाया और गुठली समेत निगल गए। इस गाँव के स्कूल-मास्टर को बड़ी दया आई। उन्होंने इन्हें पास रख लिया। परन्तु इन्हें अगर कहीं रहना ही होता तो घर छोड़ने

की क्या जरूरत थी ? दूसरे दिन बिना कहे-सुने उठे और एक तरफ़ चल दिए। भूख लगने पर पेड़ों की पत्तियाँ चबा लेते और रात को किसी चट्टान या मैदान में सो जाते। एक दिन एक गाँव के बाहर मन्दिर के पास खेत में सो रहे थे, कि कुछ आदमियों ने दूर से देखा और प्रेत समझ कर ईंटें मारने लगे। जब उठे और पूछा कि मुझे क्यों मारते हो ? तब उन लोगों का भ्रम दूर हुआ। अन्त में इन्होंने कहा कि मुझे भूख लगी है, कुछ खाने को दो। खैर उन लोगों ने कुछ खाने को दिया। खा-पीकर आप आगे बढ़े और कई दिनों में, इसी तरह १३० मील की यात्रा कर के नासिक पहुँचे। वहाँ एक साधु की कृपा से, एक क्षेत्र में एक वक्त बराबर खाने का प्रबन्ध हो गया। रात को साधु स्वयं कुछ दे दिया करते। रात को सोने के लिए घाट की सीढ़ियाँ थीं।

इसी तरह चार दिन बीत गए। एक दिन पुलिस का एक सिपाही आया और पकड़ कर थाने में ले गया। वहाँ पूछताछ होने पर आपने बताया कि मैं विद्यार्थी हूँ, और संस्कृत पढ़ने की इच्छा से यहाँ आया हूँ।

इस तरह जब वहाँ से छुटकारा मिला तो आपने नासिक भी छोड़ा और घूमते-फिरते झाँसी पहुँचे। तुरन्त वहाँ भी तबीयत नहीं लगी, इसलिए बिना टिकट के ही रेलगाड़ी पर सवार होकर कानपुर चले आए। कानपुर के स्टेशन पर एक महाराष्ट्र सज्जन ने आपको भोजन कराया और अपने साथ लखनऊ ले गए। वहाँ से लखीमपुर-खेरी होते हुए आप पन्द्रहवें दिन काशी पहुँचे।

यहाँ आपको कीचड़ में पड़ा हुआ एक पैसा मिला, जिसे उठा कर बड़े यत्न से धोती के कोने में आपने बाँध लिया।

काशी आकर आप अहल्या घाट पर रहने लगे। कई दिनों के बाद एक क्षेत्र में भोजन का भी प्रबन्ध हो गया। एक पण्डित जी की पाठशाला में जाकर संस्कृत पढ़ने लगे और भाई को भी खबर दे दी कि मैं काशी आ गया हूँ और संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया है। भाई ने पाँच रुपये मासिक पढ़ाई के लिए भेजना आरम्भ कर दिया।

परन्तु क्षेत्र में भोजन करना आपको पसन्द नहीं था, इस-लिए भोजन का प्रबन्ध सहपाठियों के साथ कर लिया। परन्तु यह सिलसिला भी बहुत दिनों तक नहीं चल सका; क्योंकि गुरू जी से अनबन हो जाने के कारण पाठशाला छोड़ देनी पड़ी। इसके साथ ही पढ़ने में दिल भी कम ही लगता था। पाठशाला छोड़ने पर अखबार पढ़ने और कुश्ती लड़ने का शौक़ हुआ; परन्तु भोजन को फिर बड़ी तकलीफ़ हुई और यहाँ तक नौबत पहुँची, कि फिर घास और पत्तियों का आश्रय लेना पड़ा।

अन्त में काशी से तबीयत उचटी तो नागपुर पहुँचे। उद्देश्य था, लाठी और गदका के खेल सीखना। सन् १९२८ में फिर कानपूर चले आए। अब तक राजनीति से कोई सम्बन्ध न था, परन्तु यहाँ आने के थोड़े दिनों के बाद ही आपके विचारों में परिवर्तन हो गया और आप एकाएक लापता हो गए। अन्त

में लाहौर षड्यन्त्र केस में गिरफ्तार होने पर ही लोगों को आप का पता मिला।

स्वर्गीय श्री० चन्द्रशेखर 'आज़ाद'

काशी के बैजनाथ टोला में स्वर्गीय श्री० चन्द्रशेखर। का जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम था पं० बैजनाथ। थोड़ी उम्र से ही उन पर अपने देश को आज़ाद करने की धुन सवार हो गई थी। १९२१-२२ में असहयोग आन्दोलन के समय वह अहिंसावादी स्वयंसेवक थे, गिरफ्तार कर जब वे अदालत में लाए गए, तो मैजिस्ट्रेट ने पूछा—"तुम्हारा क्या नाम है?" आज़ाद ने अपनी आज़ादी के आवेश में उत्तर दिया—"मेरा नाम आज़ाद है, पिता का नाम 'स्वतन्त्र' निवास स्थान?—जेलखाना—है!" भला खरेघाट; आई० सी० एस० जैसा नृशंस मैजिस्ट्रेट एक कोमलमति बालक के मुख से निकली हुई ऐसी बातें कैसे सहन कर सकता था? उसने आज़ाद को १५ बेंत लगाए जाने की आज्ञा दी। बेंत लगाने के लिए कोमल शरीर बाँधा जाने लगा; परन्तु उन्होंने कहा—"बाँधते क्यों हो? मारो, मैं खड़ा हूँ।" उस दृश्य के देखने वाले काँप गए। क्या सचमुच बेंत लगाए जायँगे? हाँ बात सच थी। सड़ा-सड़ बेंत पड़ने लगे और प्रत्येक वार पर आज़ाद के मुख से 'बन्देमातरम' 'गाँधी जी की जय' आदि के नारे निकलने लगे। परन्तु अन्त में वह कोमल बालक

मूर्छित होकर गिर पड़ा !! उस समय यह केवल चौदह वर्ष के थे। तभी से आप "आज़ाद" के नाम से विख्यात हुए।

इन बेतों का आघात उनके शरीर पर नहीं, वरन् उनकी आत्मा पर लगा और कहा जाता है कि वह उसी दिन से विद्रोही हो गये। इस अमानुषिक दण्ड का उनके मन पर बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ा।

सन् १९२१ का असहयोग आन्दोलन शान्त था, पर कहा जाता है, आपने हिंसात्मक क्रान्ति की शरण ली। वहाँ राजेन्द्र-नाथ लाहिड़ी और शचीन्द्रनाथ बखशो से उनकी मित्रता हुई। ये तीनों अन्तरङ्ग मित्र हो गए। प्रत्येक कार्य में इन तीनों का साथ रहता था।

सन् १९२६ वाले जगत-विख्यात् काकोरी षड्यन्त्र केस में 'आज़ाद' का नाम एक प्रमुख षड्यन्त्रकारी के रूप में आया था, किन्तु वह फ़रार थे। सारा बनारस छान डाला गया, किन्तु 'आज़ाद' आज़ाद ही रहा। युक्तप्रन्तीय सरकार ने उनकी गिर-फ़्तारी के लिए दो हज़ार रुपयों का इनाम भी घोषित किया।

१५वीं दिसम्बर १९२८ को सॉण्डर्स हत्या-काण्ड हुआ। कहा जाता है, कि यह निश्चित किया गया था, कि भगतसिंह और राजगुरु सॉण्डर्स को मारेंगे और आज़ाद उनके पार्श्व-रक्षक के तौर पर पीछे रहेंगे। सॉण्डर्स के मार चुकने के बाद जब वह डी० ए० वी० कॉलेज के बोर्डिङ्ग हाउस में जा रहे थे, तब चन्ननसिंह ने उनका पीछा किया। 'आज़ाद' ने उसे चेतावनी

दी, किन्तु इस पर भी जब वह उसे पकड़ने के लिए आगे बढ़ा तो आज़ाद ने उसका काम तमाम कर दिया। इसके बाद से ही पञ्जाब में आज़ाद की खोज होने लगी। आज़ाद, जो इस समय 'पण्डित जी' के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे, बड़ी सफ़ाई से ग़ायब हो गये।

१९२६ के दिसम्बर मास में, वॉयसरॉय की ट्रेन उलट देने का प्रयत्न किया गया। क्रान्ति के इतिहास में पहले-पहल बिना तार के बम से काम लिया गया। इस सम्बन्ध में आज़ाद, यशपाल और एक फ़रार अभियुक्त का नाम लिया जाता है।

कहा जाता है कि लाहौर के दूसरे षड्यन्त्र में आज़ाद ने सरदार भगतसिंह और श्री० दत्त आदि को छुड़ाने के लिए षड-यन्त्र किया था। साथ ही यह भी कहा जाता है कि बहावलपुर के मकान में धड़ाका हो जाने के कारण, यह षड्यन्त्र सफल न हो सका। उस धड़ाके के सिलसिले में बम की परीक्षा करते हुए एक प्रमुख क्रान्तिकारी श्री० भगवतीचरण की जान भी चली गई!

दिल्ली षड्यन्त्र केस में भी, स्वर्गीय आज़ाद का प्रमुख हाथ था, पञ्जाब गवर्नमेण्ट ने भी आपकी गिरफ़्तारी के लिए ५,०००) रु० का इनाम घोषित किया था; और कहा जाता है, आपका चित्र प्रत्येक बड़े-बड़े स्टेशन पर चिपकाया गया था; पर सरकारी पुलिस के गुर्गे सन् १९२६ से २७ वीं फ़रवरी के प्रातः काल तक पता नहीं लगा सके थे। 'आज़ाद' ने अन्त तक अपनी आज़ाद-प्रियता को निबाहा। उनकी जीवित अवस्था में पुलिस का

कोई भी व्यक्ति उनका शरीर स्पर्श नहीं कर सका। २७वीं फ़र्वरी, सन् १९३१ को दस बजे के लगभग इलाहाबाद के आज़ाद पार्क में एक विश्वासघाती सहयोगी की नीचता के कारण पुलिस की गोलियों के शिकार हुए। उनकी मृत्यु के बाद भी पुलिस के उपस्थित अफ़सरों को उनसे भय लगता था। समाचार-पत्रों को पढ़ने से पता चलाता है, कि मृत्यु के बाद भी केवल सन्देह के वशीभूत होकर पुलिस वालों ने बन्दूक़ और तमञ्चों के कई बाढ़ उनके शरीर पर दाग़े थे तब कहीं वे पास फटक सके।

कुछ लोगों का कहना है कि उनकी मृत्यु के बाद कुछ सरकारी ख़ैरख्वाहों ने उनके मृतक शरीर को लातों तक से ठुकराया, कुछ लोगों का यह भी कहना है कि एक गोरे दर्शक का कुत्ता स्वर्गीय आज़ाद' के लगे हुए घावों में से निकला हुआ रक्त चाट कर अपने मालिक को अपनी वफ़ादारी और समझदारी का परिचय दे रहा था! कतिपय प्रमुख नागरिकों की यह तो आँखों देखी और कानों-सुनी घटना है, कि जब लाश को उठा कर लारी में रक्खा जा रहा था तो पुलिस वालों ने बड़ी निर्दयता से मृतक शरीर को टाँगें पकड़ कर घसीटी थीं। कुछ सिपाहियों को लाश मोटी होने की शिकायत थी और इसके लिए कहा जाता है, उनके शरीर को गालियाँ भी दी गई थीं; किन्तु 'आज़ाद' के जीवट की वे कभी-कभी कानों-कानों में प्रशंसा भी करते फिरे गए थे। स्वयं सी० आइ डी० के सुपरिण्टेण्डेट मि० ब्लन्डव तक ने, जो इस घटना के तुरन्त बाद ही सहगल जी की संस्था तथा

उनके निवास-स्थान की तलाशी लेने आए थे, सहगल जी से 'आज़ाद' के जीवट की प्रशंसा की। उनका कहना था कि ऐसे सच्चे निशाने-बाज़ उन्होंने बहुत कम देखे हैं, ख़ासकर ऐसी शङ्कामय परिस्थिति में, ख़ासकर जब तीन ओर से उन पर गोलियों की वर्षा हो रही थी। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि यदि पहली गोली उनकी जाँघ में न लग गई होती, तो पुलिस का एक भी अफ़सर जीवित न लौटता, क्योंकि मि० नॉटबावर का हाथ पहले ही बेकाम हो चुका था, उन्होंने यह भी बतलाया कि 'आज़ाद' विप्लवी दल का कोई प्रतिष्ठित नेता—सम्भवतः कमाण्डर इन चीफ़ थे। अस्तु—

जिस पेड़ के पीछे स्वर्गीय 'आज़ाद' ने प्राण विसर्जन किया था वह वृक्ष फूलों से लदा था और पेड़ पर कई जगह ग़रीबों ने 'आज़ाद' पार्क आदि लिख दिया था, जिसकी विधिपूर्वक देहाती लोग पूजा किया करते थे और कुछ ही दिनों में वहाँ एक मेला प्रायः नित्य ही लगने लगा जिससे कुपित होकर अधिकारियों ने जड़-मूल से उस वृक्ष को उखड़वा कर जलवा दिया। जिस स्थान पर स्वर्गीय 'आज़ाद' का रक्त गिरा था, उसकी मिट्टी कॉलेज तथा यूनिवर्सिटी से विद्यार्थी उठा ले गए थे।

स्वर्गीय श्री० हरिकिशन

२३ दिसम्बर, सन् १९३१ को पञ्जाब विश्वविद्यालय के कन्वोकेशन के समय पञ्जाब के गवर्नर पर पिस्तौल का हमला करने के अपराध में, पेशावरी युवक श्री० हरीकिशन को ९ जून सन् १९३१ को, मियाँवाली जेल में फाँसी दे दी गई।

श्री० हरीकिशन का जन्म सीमान्त के विख्यात नगर मर्दान से कई मील के फ़ासले पर ग़ल्लाढेर नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम लाला गुरुदासमल है, जो ग़ल्लाढेर के एक अच्छे जमींदार और रईस हैं। आपके नौ सन्तान हैं, जिनमें श्री० हरीकिशन अन्यतम थे। हरीकिशन बड़े सुन्दर, तीक्ष्ण-बुद्धि और होनहार युवक थे। इन्होंने मिडिल तक शिक्षा प्राप्त की थी।

हरीकिशन का खानदान विख्यात देश-प्रेमी है और इसी देश-प्रेम के अपराध में इनके भाई श्री० भगतराम एक सुदीर्घ काल तक पेशावर जेल में क़ैद रहे।

कहते हैं, भाई की क़ैद ने श्री० हरीकिशन को विशेष विक्षुब्ध कर दिया था और कभी-कभी वह अपने पिता से कहा करते थे, "मैं काकोरी के शहीदों की तरह मरना चाहता हूँ।" इस घटना के बाद से ही वह राजनीतिक पुस्तकें और समाचार पत्र आदि बड़े ध्यान से पढ़ने लगे थे। श्री० हरीकिशन महात्मा गाँधी के अनन्य भक्त थे और उन्हें देवता-तुल्य समझते थे। भारत की स्वतन्त्रता के लिए वे महात्मा जी को देवदूत मानते थे।

विद्याव्यसनी होने के अतिरिक्त श्री० हरीकिशन को शिकार का भी ख़ूब शौक़ था। बन्दूक़ और पिस्तौल का अचूक निशाना

लगा सकते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने गाँव तथा देहात में यथेष्ट ख्याति प्राप्त की थी।

इन सद्गुणों के सिवा हरीकिशन को अपनी ज़मींदारी तथा गृहस्थी के कामों से भी ख़ासी दिलचस्पी थी। घर का काम-काज वे बड़ी तत्परता और मनोयोग के साथ देखा करते तथा इन कामों में अपने पूज्य पिता को यथेष्ट सहायता पहुँचाया करते थे।

हरीकिशन का स्वभाव शान्त, शीलवान और प्रकृति गम्भीर थी; परन्तु अकस्मात् उनके स्वभाव में न जाने क्यों ऐसा परिवर्तन हो गया कि उन्होंने एक दिन चुपचाप घर छोड़ दिया और लापता हो गए। घर वालों ने इधर-उधर बड़ी ढूँढ़-खोज की परन्तु कहीं पता न चला।

हम ऊपर कह आए हैं, कि २३ दिसम्बर '३० को पञ्जाब विश्वविद्यालय का पारितोषिक वितरण महोत्सव था। विश्वविद्यालय के चान्सलर तथा पञ्जाब के गवर्नर साहब परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों को पदवियाँ आदि प्रदान करने आए थे। विश्वविद्यालय के भीतर और बाहर पुलिस का कड़ा पहरा था। बिना टिकट के कोई विश्वविद्यालय-भवन के पास भी नहीं जा सकता था। गवर्नर महोदय के अतिरिक्त विश्वविद्यालय के पदाधिकारी, प्रोफ़ेसर तथा अन्यान्य गण्य-मान्य सज्जन भी उपस्थित थे। सभा की कार्यवाही निर्विघ्न समाप्त हुई। पदवी-वितरण के बाद गवर्नर महोदय तथा अन्यान्य वक्ताओं के भाषण हुए। अन्त

में सभा विसर्जित करके जब गवर्नर महोदय बाहर जा रहे थे, तो एकाएक एक नवयुवक ने हाल के भीतर से उन पर फ़ायर किया। गवर्नर महोदय की भुजा और पीठ पर दो गोलियाँ लगीं। इसके अतिरिक्त सरदार चननसिंह नामक एक सहकारी पुलिस-इन्सपेक्टर, बधावनसिंह नामक एक ख़ुफ़िया पुलिस-इन्सपेक्टर तथा कुमारी मेक्डरमण्ड नाम एक की गोरी महिला को भी चोटें लगीं। इनमें सरदार चननसिंह की चोट करारी थी, इसलिए वह उसी दिन शाम को मेयो अस्पताल में जाकर मर गया। शेष सभी आहत बच गए! गवर्नर साहब को भी, साधारण चोटें लगी थीं, इस लिए मरहमपट्टी के बाद वे भी शीघ्र ही अच्छे हो गए।

गोली चलाने वाला नवयुवक अभी हॉल के बाहर बरामदे में खड़ा गोलियाँ चला ही रहा था, कि गवर्नर के बॉडी-गार्ड के सब-इन्स्पेक्टर मेहता दीवानचन्द ने उसे गिरफ़्तार कर लिया। कहने की आवश्यकता नहीं, कि यह युवक श्री० हरीकिशन था।

इसके साथ ही श्री० गिरधारीलाल नाम का एक और नवयुवक भी गिरफ़्तार किया गया, जो बी० टी० की डिग्री लेने आया था, परन्तु अन्त में पुलिस ने उसे छोड़ दिया।

जामा तलाशी में श्री० हरीकिशन के पास से एक पिस्तौल, छः गोलियाँ, एक चाक़ू और कुछ काग़ज़ बरामद हुए थे।

३री जनवरी सन् १९३१ को लाहौर के बोर्स्टल जेल में श्री० हरीकिशन के मुक़दमे की पहली पेशी हुई। हरीकिशन ने

किसी प्रकार की सफ़ाई देने से इन्कार कर दिया। उनकी ओर से कोई वकील भी खड़ा नहीं किया गया था। ये बड़ी शान्ति से अदालत के कमरे में बैठे रहे। चेहरे पर किसी प्रकार की घबराहट या अशान्ति का कोई चिन्ह न था। अदालत की कार्यवाही में उन्होंने कोई हिस्सा नहीं लिया और न अदालत के किसी प्रश्न का उत्तर ही दिया। परन्तु अपना अपराध स्वीकार करते हुए उन्होंने इतना अवश्य कहा था—

"मैं यह नहीं बता सकता, कि मैं लाहौर में कब आया। परन्तु मैं यहाँ गवर्नर को मारने के लिए आया था। मैं यह भी नहीं बताना चाहता, कि मैं लाहौर में कहाँ ठहरा था। मैं २३ दिसम्बर को टिकिट के साथ युनिवर्सिटी हाल में गया था। मैंने कुल छः फायर किए। वह गवर्नर पर किए और बाक़ी अपने को बचाने के लिए, न कि इस ख्याल से, कि इससे कोई मारा जाए। अदालत में जो चीजें—पिस्तौल और गोलियाँ आदि—पेश की गई हैं, वे मेरी हैं। मैं और कुछ कहना नहीं चाहता और न यह बताना चाहता हूँ कि मैं ने यह कार्य क्यों किया। मैंने जो कुछ किया है, अपनी इच्छा से किया है।"

अदालत ने उसी दिन अभियुक्त को सेशन्स सुपर्द कर दिया। इसके बाद ही श्री० हरीकिशन के पिता लाला गुरुदासमल भी लाहौर आ गए। उस समय हरीकिशन ने भूख-हड़ताल कर रक्खी थी परन्तु पिता के अनुरोध करने पर उसे तोड़ दिया। इसके बाद पिता के कहने से मुक़दमे की 'पैरवी' के लिए वे भी तैयार हो गए।

२१ जनवरी सन् १९३१ को 'सेशन्स जज की अदालत में श्री० हरीकिशन के मुक़द्दमे की पेशी हुई। आपकी ओर से मि० आसफ़अली बैरिस्टर, मि० विश्वेश्वर नाथ तथा मि० रामलाल आनन्द पैरवीकार नियुक्त हुए। जूरी ने इन्हें चननसिंह की हत्या करने तथा गवर्नर और इन्सपेक्टर बधावन पर आक्रमण करने के लिए भारतीय दण्ड-विधान की धाराएँ ३०२ और ३०७ के अनुसार अपराधी बताया। साथ ही इस बात की सिफ़ारिश भी की, कि इसकी कच्ची उम्र का ख़याल करके दया की जाए। परन्तु सेशन्स जज ने दया करना अनुचित समझ, श्री० हरकिशन को फाँसी की आज्ञा सुना दी। हरीकिशन ने सज़ा सुन कर गम्भीरता से उत्तर दिया—

"बहुत अच्छा!"

इसके बाद हाईकोर्ट में अपील की गई, परन्तु नामञ्जूर हो गई और पता लगा कि श्री० हरीकिशन को सरदार भगतसिंह आदि के साथ ही फाँसी दे दी जायगी। परन्तु उनके पिता ने प्रिवी कौन्सिल में अपील करने के लिए दरख़्वास्त दी की फाँसी मुल्तवी रक्खी जाय। अधिकारियों ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली परन्तु प्रिवी कौन्सिल से भी अपील नामञ्जूर हो गई।

इसके बाद मेहता अमरनाथ एडवोकेट ने प्रार्थना की कि वे सरकार से दया की प्रार्थना करना चाहते हैं, इसलिए अपराधी को अभी फाँसी न दी जाए। परन्तु अधिकारियों ने इस प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया।

८ जून '३१ को श्री० हरीकिशन के पिता आदि उनसे अन्तिम बार मिलने के लिए मियाँवाली जेल में गए थे। यद्यपि यह मिलन अन्तिम मिलन था, परन्तु हरीकिशन के सम्बन्ध में कुछ बताया नहीं गया था। उन्हें यह भी मालूम न था, कि फाँसी किस रोज़ होगी। इस समय हरीकिशन के चेहरे पर प्रसन्नता थी। उन्होंने अपनी यह अन्तिम इच्छा प्रकट की थी, कि मेरी लाश मेरे रिश्तेदारों को दे दी जाय। साथ ही, जैसा कि कहा जाता है, उन्होंने इच्छा प्रकट की थी कि 'मेरा अन्तिम संस्कार वहीं हो, जहाँ सरदार भगतसिंह आदि का हुआ था और मेरा पुनर्जन्म इसी देश में हो, ताकि मैं मातृ-भूमि को ग़ुलामी के बन्धन से मुक्त करने में भाग ले सकूँ।'

परन्तु दुख की बात है कि अधिकारियों ने उनकी अन्तिम इच्छाएँ भी पूरी न कीं। परिजनों के प्रार्थना करने पर भी लाश उन्हें न दी गई, यहाँ तक कि उन्हें जेल के पास भी न जाने दिया गया।

सब से बड़ी आश्चर्य की बात तो यह है कि श्री० हरीकिशन के बड़े भाई लाला जमनादास, जो शेख़ूपुरा की सरकारी कचहरी में नौकर थे, बरख़ास्त कर दिया गया! उनका अपराध शायद यही था कि वे श्री० हरीकिशन के सगे भाई थे!!

तत्कालीन पञ्जाब-सरकार की एक आवश्यक सूचना पाकर श्री० हरीकिशन के आत्मीय उनसे अन्तिम साक्षात् करने के लिए गत ८ जून को मियाँवाली पहुँचे। सरकार ने

उनके बड़े भाई श्री० भगतराम को भी पेशावर जेल से बुला दिया था। जिस समय ये पेशावर से यहाँ लाए गए उनके हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ पड़ी थीं।

श्री० हरीकिशन के आत्मीयों ने यहाँ पहुँच कर मैजिस्ट्रेट की सेवा में एक दरख्वास्त देकर पूछा कि उन्हें फाँसी कब दी जाएगी? परन्तु मैजिस्ट्रेट ने उत्तर दिया कि वे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। आप लोग जेल वालों से पूछिए शायद उन्हें मालूम हो।

अन्त में ये लोग जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब की सेवा में पहुँचे; परन्तु उन्होंने भी इस सम्बन्ध में कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। अवश्य ही उन्होंने यह बताने की कृपा की कि फाँसी हो जाने पर श्री० हरीकिशन का अन्तिम संस्कार हिन्दू धर्मानुसार किया जाएगा।

८ तारीख को ११ बज कर दस मिनट पर इन लोगों को मुलाक़ात का अवसर मिला। जेल के बहुत से कर्मचारियों के साथ जेल के दरोग़ा साहब हाथ में घड़ी लिए हुए वहाँ मौजूद थे और ज्यों ही साढ़े ग्यारह बजे, त्यों ही आपने उन्हें बाहर चले जाने की आज्ञा प्रदान की। क्योंकि मुलाक़ात के लिए कुल बीस मिनट का समय दिया गया था।

इस मुलाक़ात के पहले एक और भी उल्लेखनीय बात हुई थी। शायद पाठकों को मालूम होगा, कि फाँसी की सज़ा पाया हुआ अपराधी, जब तक उसे फाँसी नहीं दे दी जाती, बहुधा एक

निर्जन कोठरी में रक्खा जाता है। साधारणतया उसकी कोठरी के सामने थोड़ा-सा सेहन होता है जो लोहे के मजबूत छड़ों से घिरा होता है और उसमें भी कई ताले जड़े होते हैं। पहले श्री० हरीकिशन के रिश्तेदारों को उसी सेहन के बाहर से खड़े होकर मुलाक़ात कर लेने को कहा गया, परन्तु उन लोगों ने कहा कि इस तरह प्रायः दो सौ फ़ीट की दूरी पर इस चिलचिलाती धूप में खड़े होकर बातचीत करना कैसे सम्भव हो सकता है? तब कहीं अफ़सरों ने हाते के अन्दर जाकर मुलाक़ात करने की आज्ञा प्रदान की।

इस मुलाक़ात के समय श्री० हरीकिशन ने जो अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट की थी, उसका ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं। उनकी यह इच्छा थी कि उनका शवसंस्कार उनके रिश्तेदारों द्वारा हो, परन्तु अधिकारियों ने ऐसा नहीं किया और जेल के पास ही एक क़ब्रिस्तान में ले जाकर लाश जला दी गई। यह क़ब्रस्तान लावारिस मुसलमानों की लाशें दफ़नाने के लिए है और महाशय राजपाल की हत्या करने वाले, अलमदीन की लाश यहीं दफ़नाई गई थी। इस घटना से वहाँ के हिन्दुओं और मुसलमानों में एक सनसनी-सी फैल गई थी। मुसलमानों के क़बरिस्तान में हिन्दू की लाश जलाए जाने के कारण दोनों जातियों के लोग अप्रसन्न थे।

फाँसी हो जाने के थोड़ी देर बाद ही श्री० हरीकिशन के पिता ने फूल के लिए मैजिस्ट्रेट के पास दरख्वास्त दी थी, जिसके उत्तर में आज्ञा हुई की आप गवर्नमेण्ट को तार दें। तार दिया

गया, परन्तु कोई उत्तर न मिला। अन्त में, कहते हैं कि मैजिस्ट्रेट ने विश्वास दिलाया कि सरकारी आज्ञा का इन्तज़ार किया जाएगा और कल सुबह तक फूल का प्रवाह आदि न होगा! परन्तु अन्त में मालूम हुआ कि आधी रात को ही वह ठिकाने लगा दिया गया। अभी तक इस बात का भी पता नहीं लगा कि अन्तिम संस्कार के लिए कोई ब्राह्मण बुलाया गया था या नहीं। जिस स्थान पर अन्त्येष्टि हुई थी, वहाँ बहुत दिनों तक पुलिस का पहरा पड़ता रहा।

फाँसी के पहले श्री० हरीकिशन का वज़न नौ पाउण्ड बढ़ा हुआ था। उनके भाई श्री० भगतराम को फाँसी का हाल पहले ही मालूम था, किन्तु वे भी बिल्कुल प्रसन्नचित्त दिखाई देते थे।

पण्डित जगतराम हरियानवी

हरियाना, ज़िला होशियारपुर के नग़मापरू नामक क़स्बे को पण्डित जगतराम का जन्म-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। पण्डित जी ने आरम्भ से ही एक अलबेला स्वभाव पाया था। सदैव निर्द्वन्द्व और प्रसन्न रहना आपके स्वभाव की विशेषता है। इण्ट्रेन्स की परीक्षा पास करने पर जगतराम लाहौर के सुप्रसिद्ध दयानन्द ऐङ्गलो-वैदिक कॉलेज में भर्ती हुए। परन्तु परीक्षा देने से पहले ही आपको अमेरिका जाने की धुन सवार हो गई। आपका उद्देश्य उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त करने का था। परन्तु अमेरिका जाने पर आप दूसरे ही पथ के पथिक हो

गए । वहाँ सुप्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयाल से आपकी भेंट हो गई । दोनों के दिलों में देशभक्ति की आग मौजूद थी । एक की धधक उठी थी और दूसरे को उपयुक्त ईंधन की अपेक्षा में थी । दोनों मिलते ही एक-दूसरे को पहचान गए । धीरे-धीरे घनिष्टता बढ़ी । मातृभूमि को बन्धन-मुक्त करने की चर्चा चली । लाला जी ने एक गीत गाया । सुनते हैं, वह गीत बड़ा ही मधुर, बड़ा ही हृदय-ग्राही और बड़ा ही भावपूर्ण है । देशभक्ति के भाव उसमें मानो कूट-कूट कर भरे हैं । इसलिए प्रत्येक भारतीय-हृदय वह विचित्र सङ्गीत सुनकर तड़प उठता है । फिर पं० जगत-राम के पहलू में तो दिल था और दिल में दर्द भरा था । उस गीत की स्वर-लहरी से उनके हृत्तन्त्री के तार झङ्कृत हो उठे । भारत की अवस्था का चित्र आँखों के सामने खिंच गया । उन्होंने उसी मातृभूमि की सेवा को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया और उसे कार्य में परिणत करने के लिए 'श्रीगणेश' स्वरूप एक अख़बार निकालने लगे । अमेरिका-प्रवासी भारतीय भाइयों को मातृभूमि की दयनीय दशा का दिग्दर्शन कराना ही इस पत्र का उद्देश्य था जगतराम की कुशल लेखनी ने उसका एक से एक बढ़ कर वास्तविक चित्र खींचना आरम्भ कर दिया । इस कार्य में उन्होंने काफ़ी सफलता भी प्राप्त की ।

परन्तु कुछ दिन के बाद ही उनके विचार बदल गए । सुदूर अमेरिका में बैठ कर भारत की सेवा उन्हें समीचीन नहीं प्रतीत हुई । उन्होंने भारत में रह कर भारत की सेवा करने का निश्चय

किया और एक दिन साश्रु नेत्रों से अपने अमेरिका-प्रवासी देश-बन्धुओं से विदा लेकर भारत के लिए चल पड़े।

उन दिनों भारत की स्वतन्त्रता की लहर इतने ज़ोरों पर न थी। 'स्वाराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है' यह कहना भी भयानक राजनीतिक अपराध समझा जाता था। भारत की दयनीय दशा का शब्द-चित्र अङ्कित करना भी राजद्रोह था। देश के विद्वान लीडर सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करने के लिए लेक्चर दिया करते थे, यही उनके राजनीतिक आन्दोलन का परम लक्ष्य था। ऐसे समय पण्डित जगतराम ने देश-भक्ति की दीप-शिखा पर पतङ्गों की भाँति निछावर हो जाने वाले कतिपय नवयुवकों के साथ, अपनी निर्दिष्ट प्रणाली के अनुसार देश-सेवा-सम्बन्धी कार्य आरम्भ कर दिया। उनकी वह प्रणाली कैसी थी—अच्छी या बुरी, इन बातों पर बहस करना हमारा अभीष्ट नहीं है, और न यहाँ उसके वर्णन की कोई आवश्यकता ही है।

सन् १९१४ में पुलिस ने लाहौर षड़यन्त्र केस नाम का एक मामला पञ्जाब के कई नवयुवकों पर चलाया था। इन्हीं में पण्डित जगतराम भी थे। एक दिन वह किसी कार्यवश पेशावर जा रहे थे और रावलपिण्डी में गिरफ़्तार कर लिए गए। लाहौर में आप पर भयङ्कर षड़यन्त्र और हत्या आदि के अभियोग लगा कर मामला चलाया गया। अदालत ने आपको फाँसी की सज़ा दी। आपने हँसते-हँसते फाँसी की सज़ा सुनी।

इस समय एक बड़ी ही कारुणिक घटना हुई। पण्डित जी

के पिता और उनकी धर्मपत्नी ने यह दुखद सम्बाद सुना, तो मूर्च्छित होकर गिर पड़े। पिता के नयनों का तारा छिन रहा था; पत्नी का सर्वस्व लुट रहा था—उसका संसार सूना हो रहा था। दोनों व्याकुल होकर पण्डित जगतराम से अन्तिम भेंट करने आए। परन्तु पण्डित जी निर्द्वन्द्व थे—प्रसन्न थे। जेल की कोठरी में कभी वहदत के तराने गाते और कभी देशभक्ति के नशे में झूमने लगते। पिता और पत्नी को देख कर हँस कर उन्होंने उनका स्वागत किया और बोले—पिता जी, क्या आप मुझ से प्रसन्न हैं?

पिता ने आंखों में आँसू भर कर उत्तर दिया—"बेटा, कल तुम फाँसी के तख्ते पर लटकने जाते हो, मेरी आशाओं पर वज्र-प्रहार होने वाला है, मेरा सर्वस्व लुट रहा है और तुम मुझ से ऐसा प्रश्न कर रहे हो?"

पण्डित जगतराम ने उसी तरह प्रसन्नतापूर्वक कहा—"क्या आपने इतिहास के पन्नों में गुरु गोविन्दसिंह के लालों के आत्मोत्सर्ग की कहानी नहीं पढ़ी है? क्या उन मासूम बच्चों के दीवार में चुने जाने की हृदय-विदारक घटना की याद करके आपके मुँह से बेतहाशा 'वाह! वाह!' नहीं निकल जाता है? फिर आज आप रो क्यों रहे हैं? यह वही नाटक तो है, जो आपके ही घर खेला जा रहा है। इस पर तो आपको और भी ख़ुश होना चाहिए। मैं अपनी जवानी मातृ-भूमि के चरणों पर अर्पण करने जा रहा हूँ। क्या यह आपके लिए प्रसन्नता की बात नहीं है?"

व्यथित हृदय वृद्ध पिता इन बातों का क्या उत्तर देते ? वे मौन भाव से पुत्र के मुँह की ओर ताकते रह गए !

वृद्ध पिता के अत्यन्त आग्रह करने पर पण्डित जी ने अपनी दण्डाज्ञा के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील करने की अनुमति दे दी। फलतः अपील हुई और फाँसी की सजा बदल कर काले-पानी के रूप में वह परिणत कर दी गई।

पण्डित जगतराम जी का बन्दी-जीवन एक दर्दनाक दास्तान है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने मित्रों को बहुत से पत्र लिखे थे, जिनका संग्रह सुनते हैं, होशियारपुर के किसी सज्जन के पास सुरक्षित है। यहाँ हम पण्डितजी के जेल जीवन के सम्बन्ध में कुछ संक्षिप्त बातें दे रहे हैं। इससे मालूम होगा कि पण्डित जगतराम में साधुता, त्याग और परोपकार की मात्रा कितनी थी।

सजा होते ही आप पर तथा आपके परिवार वालों पर मानो मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। हजारों रुपए की जायदाद जब्त कर ली गई। परिवार वालों को कहीं खड़े होने की जगह न थी। उधर स्वयं पण्डित जी का स्वास्थ्य तबाह हो रहा था। आपको हमेशा अपच की शिकायत रहने लगी। इसके बाद तो आप ऐसे बीमार पड़े कि सरकारी अनुमति के अनुसार डॉ० अन्सारी, डॉ० खानचन्द देव और डॉ० गोपीचन्द आदि को आपकी चिकित्सा के लिए गुजरात के जेलखाने तक जाना पड़ा।

रोग से छुटकारा पाने पर अधिकारियों की कृपा-दृष्टि आप पर हुई और कई वर्षों तक लगातार जेल की अँधेरी कोठरी या 'डण्डे गारद' में बन्द रक्खे गए। यहाँ तक कि छः वर्षों तक चिराग़ की रोशनी भी नसीब नहीं हुई। सात वर्षों तक आपने पैरों में जूता नहीं पहना, जिससे बिवाएँ फट गईं, इससे आपको बड़ा कष्ट होता था। ऐसे-ऐसे और भी नाना प्रकार के कष्टों का सामना आपको करना पड़ा। परन्तु आश्चर्य है कि इन मुसीबतों का आपकी मानसिक अवस्था पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। मानो यह जेल-यात्रा आपकी तपस्या थी और ज्यों-ज्यों वह बढ़ती गई, त्यों-त्यों आपका तपोबल भी बढ़ता गया। रात के अन्धकार में आप कोयले से अपने विचार कोठरी को दीवालों पर लिखते और सवेरे उठ कर उन्हें अपनी कॉपी पर दर्ज कर लेते।

पण्डित जगतराम के महान व्यक्तित्व में एक विचित्र आकर्षण था ? इसलिए जिस किसी जेलख़ाने में आप भेजे जाते, वहाँ के सभी क़ैदी आपके चेले बन जाते। आपके व्यक्तित्व के प्रभाव से तथा उपदेशों से क़ैदियों के धार्मिक जीवन में विशेष परिवर्तन हो जाता। आप उनके चरित्र को सुधारने का सदैव यत्न किया करते। उन्हें सत्य और सच्चरित्रता का महत्व समझाया करते। जो क़ैदी बीमार हो जाता उसकी आप बड़ी लगन से सेवा करते। आपके इस व्यवहार से जेल के अधिकारी भी आपसे सदैव प्रसन्न रहते थे।

पण्डित जगतराम जी श्रीमद्भगवद्गीता के परम प्रेमी थे। आपने जेल में ही संस्कृत, गुरुमुखी और हिन्दी भाषा का अभ्यास किया था। आप इन भाषाओं में सुन्दर गद्य और पद्य लिख लेते थे। गीता का आप नित्य पाठ करते रहे और उसके उपदेशों को प्रयोग में लाया करते थे। गीता को आप अपना इष्ट-देवता समझते थे। श्री० अविनाशचन्द्र जी बाली ने लिखा है, कि गुजरात जेल में खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँ, डॉ० अन्सारी साहब, मौ० मुफ़्ती किफ़ायत उल्ला साहब, डॉक्टर खानचन्ददेव, डॉ० गोपीचन्द जी और चौधरी कृष्णगोपाल आदि विद्वान आपका गीतोपदेश सुन कर मुग्ध हो जाते थे। खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँ साहब तो आपके गीता की व्याख्या पर इतने मुग्ध थे कि प्रतिदिन एक घण्टे आपसे गीता की व्याख्या सुना करते थे।

पण्डित जगतराम जी यद्यपि डी० ए० वी० कॉलेज के छात्र रह चुके थे और स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपदेशों का आपके मानस-पट पर यथेष्ट प्रभाव था, परन्तु आपके धार्मिक विचार विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ की तरह उदार और प्रशस्त थे। आप मानव-मात्र के प्रेमी थे और प्रत्येक मनुष्य को अपने सगे भाई की तरह देखते थे। आपका मानस पवित्र और द्वेष-रहित था। आज आप कहाँ हैं, जीवित भी हैं या नहीं, सो नहीं बतलाया जा सकता। इधर पञ्जाब में भीषण हत्याकाण्ड हो जाने के कारण बहुत प्रयत्न करने पर भी कुछ पता नहीं चला।

पं० जगतराम के उद्गार

[एक देशभक्त के शब्दों में]

उफ़! बाग़े आरज़ू की बहारें उजड़ गईं,
अब बेक़रारियाँ मेरी, हद से गुज़र गईं!
उफ़! लौहे-दिल[1] पे नक़्शे-तमन्ना[2] नहीं रहा;
अब मेरे दिल को ज़ब्त का पारा नहीं रहा!
जी चाहता है जामए हस्ती[3] को फाड़ दूँ,
नालों से पाँव पीर फ़लक[4] के उखाड़ दूँ!
रह-रह के एक हूक-सी उठती है दिल में आज,
आतशकदा[5] सा है मेरे दिल में छिपा हुआ!
रह-रह के याद आते हैं अपने पिता मुझे,
शायद कि दे गए हैं, वह अपनी चिता मुझे!
अश्कों[6] का मेरी आँखों से दरिया निकल गया,
महसूस यह हुआ कि कलेजा निकल गया!

एक अधूरी कविता

[पण्डित जगतराम 'ख़ाकी']

गर मैं कहूँ तो क्या कहूँ, क़ुदरत के खेल की।
हैर.[7] से तकती है मुझे दीवार जेल की।
हम ज़िन्दगी से तङ्ग हैं तिस पर भी आशना—
कहते हैं, और देखिएगा धार तेल की?
जकड़े गए हैं, किस तरह हम ग़म में क्या कहें,
बल खाके हम पे चढ़ गया, मानिन्द बेल की।

'खाकी' को रिहाई तू दोनों जहाँ से दे,

आ ऐ अजल[8] तू फाँद के दीवार जेल की !!

स्वर्गीय श्री० दिनेशचन्द्र गुप्त

बीस वर्ष का बङ्गाली बालक—श्री० दिनेशचन्द्र गुप्त—गत ८ जुलाई, सन् १९३१ को हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ गया। जिस तरह कुतूहल-प्रिय बालक कोई नया खिलौना देखते ही, उसे ग्रहण करने के लिए व्यग्रता से हाथ बढ़ा देता है, उसी तरह इस कुतूहली बालक ने भी बड़ी व्यग्रता के साथ मृत्यु का आलिङ्गन करने के लिए हाथ बढ़ा दिया था। असीम रहस्य-पूर्ण मृत्यु का रहस्य जानने के लिए मानो वह व्याकुल हो रहा था। माता, पिता, बहिन और स्नेहमयी भौजाइयों को उसने बारम्बार यही कह कर आश्वासन प्रदान किया था, कि मृत्यु कोई भयङ्कर व्यापार नहीं है। उसका नाम उसने 'मरणमाला' रक्खा था।

उसकी उमर अभी कुल बीस बरस की थी। उसने इस रहस्यमय संसार में अभी प्रवेश मात्र किया था। उसे अच्छी तरह देखने, समझने और अनुभव करने का अवसर नहीं मिला। क़ानून उसके प्रतिकूल था, इसलिए सारे देश की प्रार्थना भी व्यर्थ हो गई।

१—हृदय-पट, २—आकांक्षा के चिह्न, ३—अस्तित्व का अँगरखा ४—आकाश, ५—अग्नि-कुण्ड, ६—आँसुओं, ७—आश्चर्य, ८—मृत्यु।

दिनेश विप्लववादी था। उसने सरकार के एक अङ्गरेज़ अफ़सर की हत्या कर डाली थी या हत्या करने में सहायता दी थी। हमें उसके कार्य से सहानुभूति हो अथवा न हो, परन्तु उसकी प्राण-भिक्षा के लिए समस्त बङ्गाल ने ही नहीं, वरन् सारे भारतवर्ष ने सरकार से प्रार्थना की थी। किन्तु यह हज़ार-हज़ार कण्ठों से निकली हुई प्रार्थना भी सरकार ने नहीं सुनी। देश के जन-मत की उसने ज़रा भी परवाह न की। गाँधी-इर्विन समझौते के बाद लोगों को विश्वास हो गया था, कि सरकार की मनोवृत्ति में कुछ परिवर्तन हुआ है। कलकत्ता हाईकोर्ट के विद्वान विचारपति जस्टिस बकलैण्ड ने भी कुछ ऐसी ही बातें कह कर लोगों के विश्वास को दृढ़ बना दिया था। परन्तु सरकार ने इन बातों पर कुछ ध्यान नहीं दिया। यही नहीं, उसने अपने विशेष अधिकार द्वारा श्रीमान सम्राट की सेवा में भेजी हुई प्रार्थना को भी रोक लिया। पराधीन जाति और असहाय माता-पिता की अश्रु-सिक्त प्रार्थना अरण्य-रुदन में परिणत हो गई! हरि इच्छा बलीयसी !!

ढाका जिले में 'यशोलङ्ग' नाम का एक छोटा-सा, किन्तु विख्यात गाँव है। इस गाँव में ज्यादातर ब्राह्मण, थोड़े से वैद्य और कायस्थ तथा अन्यान्य छोटी जातियों के लोग रहते हैं।

इसी यशोलङ्ग ग्राम के श्रीयुत सतीशचन्द्र गुप्त के यहाँ दिनेश का जन्म हुआ था। दिनेश श्री० सतीशचन्द्र का तृतीय पुत्र था। श्री० सतीशचन्द्र मेदिनीपुर जिले के अन्तर्गत ज्वालापुर पोस्ट ऑफिस के पोस्ट-मास्टर थे।

दिनेश के बाल्य-जीवन में कोई विशेषता न थी। वह बङ्गाल के साधारण बालकों की तरह मेधावी, चपल और खेलाड़ी था। परन्तु पढ़ने-लिखने में उसकी बड़ी रुचि थी। इस सम्बन्ध में ग्राम-पाठशाला के 'गुरु महाशय' से लेकर कॉलेज के प्रोफ़ेसर साहब तक को उससे कभी किसी प्रकार की शिकायत का मौक़ा नहीं मिला था।

ढाका के ही किसी हाईस्कूल से मेट्रिकुलेशन की परीक्षा पास करके वह; आज से प्रायः पाँच वर्ष पूर्व कॉलेज में भर्ती हुआ तथा गत असहयोग आन्दोलन के समय, जब कि वह बी० ए० की परीक्षा पास करने की तैयारी में था, कॉलेज छोड़ कर देश-सेवा सम्बन्धी कामों में लग गया। दिनेश के बड़े भाई श्री० ज्योतिषचन्द्र गुप्त मेदिनीपुर की दीवानी के वकील और दूसरे बड़े भाई श्री० पृथ्वीशचन्द्र डिबरूगढ़ ज़िले के मरियानी नामक स्थान में डॉक्टर हैं। मृत्यु के समय दिनेश की उमर बीस साल से कुछ अधिक थी।

गत ८ दिसम्बर को बङ्गाल के जेलखानों के इन्स्पेक्टर लेफ़्टिनेण्ट कर्नल एन० एस० सिम्पसन, कलकत्ते के 'राइटर्स बिल्डिङ्ग' में मार डाले गए। घटना का विवरण, जो उस समय अख़बारों में छपा था, वह इस प्रकार है :

दिन के प्रायः साढ़े बारह बजे, जबकि कर्नल अपने ऑफ़िस में बैठे हुए फ़ाइलों की जाँच कर रहे थे, उसी समय तीन बङ्गाली युवक वहाँ गए और उन्होंने चपरासी से कहा कि हम साहब

से मिलना चाहते हैं। चपरासी ने उत्तर दिया, साहब इस समय काम में व्यस्त हैं, वे नहीं मिल सकते। आप लोग एक पर्चे पर अपना नाम, पता और उद्देश्य लिखकर दीजिए, तो मैं साहब के पास पहुँचा दूँ। इस पर युवकों ने चपरासी को धक्का देकर एक ओर ढकेल दिया और कमरे में घुस गए। तीनो युवकों को अकस्मात कमरे में प्रवेश करते देख कर कर्नल कुछ पीछे हट गए। युवकों ने एक साथ ही उन पर पिस्तौल का वार किया। कर्नल वहीं गिर गए। तीनों युवक फिर कमरे से बाहर निकले और गोलियाँ छोड़ते हुए बरामदे की राह से पासपोर्ट ऑफ़िस में पहुँचे, जो उसी मकान के एक कमरे में है। वहाँ उन्होंने फिर अपने पिस्तौलों में गोलियाँ भरीं। और एक अमेरिकन पादड़ी पर वार किया। परन्तु वह बच गया। इसके बाद वे जुडिशियल सेक्रेटरी के ऑफ़िस में घुसे और उन पर भी वार किया। गोली उनकी जाँघ में लगी। परन्तु वे बच गए।

ये दोनों युवक भी ढाका ज़िले के और श्री० दिनेश के गाँव के पास के ही रहने वाले थे। इस हत्याकाण्ड के समय ये तीनों अङ्गरेज़ी पोशाक में थे। उस समय अखबारों में भी खबर छपी थी कि विनयकृष्ण ने ही बङ्गाल के इन्सपेक्टर जनरल मि० एफ़० जे० लोमैन की हत्या की थी।

अन्त में, घाव अच्छे हो जाने पर एक स्पेशल ट्रिब्यूनल अदालत के सामने श्री० दिनेश के मामले का विचार आरम्भ हुआ। श्री० दिनेश ने अपने को निर्दोष बताया था और अपने

बयान में कहा था कि मैं कौतूहलवश राइटर्स बिल्डिङ्ग में घुस गया था। मुझे मालूम ही न था, कि यहाँ क्या है। मैं इस शहर में केवल दो-तीन बार आया हूँ। इसलिए मुझे मालूम भी न था, कि इसमें कौन-सा ऑफ़िस है। जब मैं ऊपर गया तो मुझे किसी चीज़ का धड़ाका सुनाई दिया। इस आवाज़ से डर कर मैं भागा तो किसी यूरोपियन ने मुझे गोली मार दी। मेरे पास कोई सूट-केस न था और न मेरा कोई साथी ही था। मेरे पास केवल दस रुपए थे और अपने पिता के पास भागलपुर जाना चाहता था।

परन्तु २ फ़रवरी १९३१ को स्पेशल ट्रिब्यूनल ने श्री० दिनेश को फाँसी की सज़ा सुना दी।

इसके बाद हाईकोर्ट तथा प्रिवी कौन्सिल में अपीलें हुईं, परन्तु सब स्थानों से फ़ैसला बहाल रहा। कलकत्ता हाईकोर्ट के सहृदय न्यायाधीश जस्टिस बकलैण्ड ने उसकी कच्ची उमर का ख़्याल करके दया करने की सिफ़ारिश की थी। परन्तु कोई परिणाम नहीं हुआ। गाँधी-इर्विन समझौते से आशान्वित होकर बङ्गाल की जनता तथा अ़ख़बारों ने भी सरकार से दया की प्रार्थना की थी, परन्तु सारा प्रयास अरण्य-रुदन में परिणत हो गया।

अन्त में उसकी अभागिनी माता की ओर से श्रीमान सम्राट महोदय की सेवा में भी एक प्रार्थना-पत्र भेजा गया, परन्तु सरकार ने उसे अपने विशेष अधिकार द्वारा रोक लिया। इस

विषय में श्री० दिनेश के वकील ने बड़ी लिखा-पढ़ी की; बङ्गाल-सरकार के जुडिशियल सेक्रेट्री से मिले भी, परन्तु कोई नतीजा नहीं निकला!

यद्यपि श्री० दिनेशचन्द्र ने ट्रिब्यूनल के सामने अपने को निर्दोष बताया था और अपने बचाव की चेष्टा की थी, परन्तु फाँसी की आज्ञा का उसके शरीर और मन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था। मृत्यु से डरने को वह कायरता समझता था। फाँसी की कठोर आज्ञा सुनने के बाद से, जैसा कि उसके निम्न-लिखित पत्रों से प्रतीत होता है, उसकी आत्मा सदैव आध्यात्म-जगत में ही विचरण करती थी। वह बड़ी दृढ़ता से अपने परिजनों को सान्त्वना दिया करता था। इस दरमियान में उसने अपनी माता, बहिन और भौजाइयों को कई पत्र लिखे थे, जिनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं। उसने अन्तिम पत्र अपनी स्नेहमयी जननी और बड़ी बहिन को लिखा था,

अलीपुर सेण्ट्रल जेल

२६-३-३१

श्रीचरणेषु!

भाभी, कल तुम्हारी चिट्ठी मिली। आज माँ और भैया आए थे। भैया से मालूम हुआ, हमारी फाँसी की आज्ञा बहाल रक्खी गई है।

भाभी, मैं अब तुम लोगों से सदा के लिए विदाई चाहता हूँ। यह मैं जानता हूँ, विदाई देते समय तुम लोगों का हृदय विदीर्ण हो जायगा, किन्तु क्या करूँ विदाई तो लेनी ही होगी।

आज बहुत-सी पुरानी बातें मुझे याद हो आई हैं। जिस दिन मैंने तुम्हें अपनी भाभी के रूप में पाया था, उस दिन से लेकर आज तक की सारी बातें मेरी आँखों के सामने नाच रही हैं। मैंने दस वर्ष की उम्र से लेकर बीस वर्ष तक तुम्हें अनेक यन्त्रणाएँ दी हैं; वह सभी तुमने स्नेह का अत्याचार समझ, हँसते हुए सह लिया है; तुम कभी मेरे प्रति विरक्त न हुईं, कभी तुम रुष्ट न हुईं। यह तुम अच्छी तरह जानती हो, कि बीमार पड़ने पर तुम्हारे हाथ की बनी हुई बार्ली, और तुम्हारे ही हाथ का रींधा हुआ भोजन मुझे अच्छा लगता था। मुझे ही क्यों, हम सबों को तुमने अपने आन्तरिक प्रेम से जीत लिया था। यदि मेरे पास रुपए होते, तो मैं कौन-कौन सी चीजें तुम्हें उपहार देता, उसकी उद्भत कल्पना मैं अब भी किया करता हूँ। खैर छोड़ो इन सब बातों को; भगवान से मेरी यही प्रार्थना है कि जन्म-जन्मान्तर तक तुम्हारे ही समान भाभी मुझे मिले।

तुमने मुझसे पूछा है, कि ऐसा कौन उपाय है, जिससे मन को शान्ति मिल सके। मैं इस सम्बन्ध में क्या कहूँ? लेकिन हाँ, मेरे मन में यह बात उठती है, कि हम लोग मृत्यु से बहुत अधिक डरते हैं, इसीलिए मृत्यु के सामने हमें पराजित होना पड़ता है। यदि हम इस भय को जीत सकें तो मृत्यु हमें बहुत

तुच्छ दिखाई पड़ेगी। मृत्यु का भय न कर, हमें उसे प्रशान्त चित्त से वरण करना होगा। और हम तो हिन्दू हैं, मृत्यु का भय करने से धर्म की पहली ही सीढ़ी पर हम नहीं चढ़ सकते। हम जानते हैं, कि हमारी मृत्यु नहीं होती। यह नश्वर शरीर ही नष्ट होता है, आत्मा का नाश नहीं होता। वही आत्मा ही तो हम हैं और वही आत्मा भगवान भी हैं। मनुष्य जिस समय अपने आपको पहचान लेता है, उसी समय वह कह सकता है कि "मैं ही वह हूँ" आग मुझे जला नहीं सकती, जल मुझे गला नहीं सकता, वायु मुझे सुखा नहीं सकती, मैं अजर हूँ, अमर हूँ और अव्यय हूँ। गीता में कहा है—न तो शस्त्र इसे काट सकता है, न आग इसे जला सकती है, न जल इसे भिगो सकता है और न हवा इसे सुखा सकती है! यह आत्मा अछेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, नित्य और सर्व-व्यापी है।

तुम कहोगी—"यह सब बातें तो मैं भी जानती हूँ, किन्तु इससे मन को तो शान्ति नहीं मिलती।" मन को शान्ति देने के लिए एकमात्र उपाय है, भगवान को आत्म-समर्पण। शान्ति प्राप्त करने के लिए इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। हम कितना भी जप-तप क्यों न करें, कितना भी तिलक-चन्दन-क्यों न करें, किन्तु इससे क्या, हमारे हृदय में भगवान के प्रति भक्ति उत्पन्न हो सकती है? जो भगवान का भक्त है, उसके लिए मृत्यु एक शब्द मात्र है। उनके साथ प्रेम किया

था बङ्गाल के निमाई ने, प्रेमावतार ईसा मसीह ने और हमारे ही देश के उन बच्चों ने, जिन्होंने हँसते हुए, मृत्यु का आलिङ्गन किया था।

मन के आवेग में आज मैंने बहुत-सी बात लिख डाली हैं। यह जान कर कि तुम लोगों के कष्ट का कारण मैं हूँ, मुझे भी अपने मन में कुछ कम व्यथा नहीं हुई है। तुम लोग मुझे क्षमा करना।

मेरा साथी इस समय अच्छी तरह से है। अब दुख-सुख नहीं है। मैं भी अच्छी तरह हूँ। मेरा प्रेम जानना। इति

—तुम्हारा स्नेह-भाजन देवर

*　　*　　*

अलीपुर सेण्ट्रल जेल

१८ जून, १९३१

भाभी,

तुम्हारी लम्बी चिट्ठी मिली। बिना समय आए किसी के जीवन का अन्त नहीं हो सकता। भगवान ने जिसके हाथ में जो कार्य सौंपा है, उसके समाप्त होने पर ही वे उसे अपने पास बुला लेते हैं। कार्य समाप्त होने के पहले वे किसी को नहीं बुलाते।

तुम्हें याद होगा, मैं तुम्हारे बालों को पकड़ कर पुतली नचाया करता था। पुतली आकर गाती थी—"ऐ सुन्दर बालों

वाली मुझे क्यों बुलाती हो ?" जिस पुतली का पार्ट समाप्त हो जाता था, उसे फिर स्टेज पर नहीं आना पड़ता था। भगवान भी हम लोगों को उसी पुतली की तरह नचाया करते हैं, हम प्रत्येक संसारवासी संसार के रङ्ग-मञ्च पर अपना-अपना पार्ट कर रहे हैं। अभिनय समाप्त हो जाने पर हमारा प्रयोजन भी शेष हो जाता है। तब भगवान हमें रङ्ग-मञ्च से हटा ले जाते हैं। इसमें दुख की क्या बात है ?

संसार के किसी धर्म के मानने से आत्मा की अविनश्वरता भी माननी पड़ती है। अर्थात् शरीर की मृत्यु हो जाने से आत्मा की मृत्यु नहीं हो जाती, यह बात स्वीकार करनी पड़ती है। हम हिन्दू हैं और हिन्दू धर्म में इस सम्बन्ध में क्या कहा गया है, यह कुछ-कुछ जानते हैं। मुसलमानी धर्म में भी कहा गया है, कि मनुष्य जिस समय मरता है उस समय .खुदा के फ़रिश्ते उसकी रूह क़ब्ज़ करने के लिए आते हैं और मनुष्य की आत्मा को पुकार कर कहते हैं—"ऐ रूह, निकल इस क़ालिब से और चल .खुदा की जन्नत में" अर्थात् तुम देह छोड़ कर भगवान के पास चलो। इससे यह मालूम होता है कि मुसलमान धर्म वाले भी यह विश्वास रखते हैं कि मनुष्य की मृत्यु हो जाने से ही उसका सब कुछ नष्ट नहीं हो जाता। ईसाई धर्म कहता है—"*Very quickly there will be an end of thee here; consider what will become of thee in the next world.*" अर्थात्—"तुम्हारे यहाँ के दिन

तो शीघ्र ही समाप्त होने वाले हैं, अब परलोक की चिन्ता करो, कि वहाँ तुम्हारा क्या होगा।" इससे मालूम होता है, कि ईसाई धर्म वाले भी यह विश्वास रखते हैं कि देह की मृत्यु हो जाने पर भी आत्मा नहीं मरती। अब इन तीन धर्मों में से किसी एक धर्म पर भी विश्वास करने से, यह मानना पड़ेगा कि हमारी मृत्यु नहीं हो सकती। हम अमर हैं। हमें मारने की शक्ति किसी में भी नहीं हैं।

हम भारतवासी बड़े धर्म-प्रवीण होते हैं न। धर्म का नाम ही सुन कर भक्ति के मारे हमारे पण्डितों की शिखा खड़ी हो जाती है, किन्तु तब हमें मृत्यु से इतना भय क्यों है? क्या वास्तव में हमारे देश में धर्म है? जिस देश में दस वर्ष की अबोध बालिका धर्म के नाम पर एक पचास वर्ष के बूढ़े के साथ ब्याही जाती है, वहाँ धर्म कहाँ? उस देश में तो धर्म के मुख में आग लगी हुई है। जिस देश में मनुष्य को स्पर्श करने से मनुष्य का धर्म नष्ट हो जाता है, वहाँ धर्म को गङ्गा में बहा कर निश्चिन्त हो जाना चाहिए। मनुष्य का विवेक ही सब से बड़ा धर्म है। उसी विवेक की उपेक्षा कर हम धर्म के नाम पर, अधर्म के स्रोत में अपना शरीर डुबो रहे हैं। केवल एक तुच्छ गौ के लिए या, ढोल की आवाज़ सुन कर हम भाई-भाई आपस में लड़ पड़ते हैं। इससे क्या भगवान हमें बैकुण्ठ में स्थान देंगे या ख़ुदा अपने बहिश्त में हमें स्थान देने के लिए तैयार होंगे?

जिस देश को मैं सदा के लिए छोड़ रहा हूँ, जिसकी धूलि

का प्रत्येक कण हमारे लिए पवित्र है, उसके सम्बन्ध में ये सब बातें बड़ी कष्ट से कही हैं।

हम लोग अच्छी तरह हैं। मेरा प्रेम और प्रणाम ग्रहण करना।

—तुम्हारा स्नेह-भाजन देवर

* * *

मणिदीदी,

वचन देकर भी मैं उसकी रक्षा नहीं कर सका। कहा था, रविवार को आपकी चिट्ठी का उत्तर दूँगा, परन्तु दो दिन बीत गए। किन्तु इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। सन् १३३७ (बङ्गला सन्) ने अपने को १३३८ में लय कर दिया है। नए के सामने पुराने ने अपनी हार स्वीकार कर ली है। पेड़ों के पुराने पत्तों ने झड़ कर नव-किसलयों के लिये स्थान खाली कर दिया है। प्रकृति का नियम है, भगवान की चिर नवीन सत्य मूर्ति निरन्तर इसी रूप में प्रकट हुआ करती है। परन्तु हमारे देश में, हम लोगों का क़ायदा-क़ानून इस विधि-विधान से ठीक उलटा है। यहाँ के बूढ़ों ने, समाज और राष्ट्रीय क्षेत्र में अपने को अटल-अचल बना लिया है। गद्दी तो ये छोड़ेंगे ही नहीं, साथ ही समय-असमय पर आँखें दिखाएँगे और चिल्ला कर कहेंगे कि बूढ़े होकर आँख, कान और आत्म-सम्मान की हत्या किए बिना कोई किसी काम करने के योग्य नहीं होता। हमारे देश के नवयुवक भी साँप के सिर पर धूल पड़ जाने की

तरह ये बातें सुन कर अपना बल और बुद्धि सभी खो डालते हैं। वे यह कभी नहीं विचार करते कि युवकों और बूढ़ों का पथ तथा मत सदैव विभिन्न हुआ करता है। दोनों में मत्यैक स्थापित करने के लिए या तो नौजवानों को वृद्ध होना पड़ेगा या वृद्धों को नौजवान। मेरा प्रेम स्वीकार कीजिएगा।

❁ ❁ ❁

फाँसी के एक दिन पहले दिनेश के माता-पिता उससे मिलने के लिए जेल में गए थे। इस मिलन का दृश्य बड़ा ही हृदयग्राही और कारुणिक था। दिनेश ने बड़ी भक्ति से माता और पिता के चरणों में प्रणाम किया और उनकी चरण-धूलि लेकर सिर और आँखों में लगाया। स्नेहमयी जननी उसके लिए आम और मिठाई ले गई थीं। दिनेश ने प्रेम से पलथी मार कर आम और मिठाइयाँ खाईं। यह दृश्य बड़ा ही मनोरम था। इसके बाद वह उठ कर खड़ा हुआ और माँ की गोद में लोटने लगा। इसके बाद एक अबोध शिशु की तरह उसने बार-बार माता का मुँह चूमना आरम्भ कर दिया और माता साश्रु नयनों से उसके शरीर और मस्तक पर हाथ फेर रही थीं। इसके बाद उसने अन्तिम बार माता को 'माँ' शब्द से सम्बोधित करने की साध पूरी की। माँ पुत्र को गोद में लेकर प्यार कर रही थी, पुत्र 'माँ माँ' चिल्ला रहा था, इतने में निष्ठुर राज-विधान ने याद दिलाया—समय हो गया!

चलने के समय दिनेश के पिता ने पुत्र से पूछा था, क्या तुम्हें कुछ कहना है? दिनेश ने उत्तर दिया—मैं बड़ी प्रसन्नता

से अपने सृष्टि-कर्त्ता के पास जा रहा हूँ। मेरी एकमात्र आकांक्षा थी कि मरने से पहले मातृ-भूमि को स्वतन्त्र देख लेता। परन्तु वह पूरी नहीं हुई।

पिता ने फिर कहा—क्या तुम्हें मालूम है कि यह हम लोगों का अन्तिम मिलन है?

दिनेश ने उत्तर दिया—मैं जानता हूँ।

इसके बाद उसने माता से क्षमा-प्रार्थना करते हुए कहा—मैंने तुम्हें बड़ा कष्ट दिया, इसके लिए मुझे क्षमा करना और मेरे लिए शोक न करना।

माता ने कहा—मैं यह दुख सह न सकूँगी।

इस पर दिनेश ने पिता की ओर देख कर कहा—दादा, माँ को मेक्सिम गोर्की का जीवन-चरित्र पढ़ कर सुनावें तो यह समझ सकेंगी कि पुत्र-वियोग का दुख किस प्रकार बर्दाश्त किया जाता है।

इसके बाद माता-पिता सदा के लिए पुत्र से विदा हो गए। यह विदा का दृश्य भी एक अपूर्व दृश्य था। इसका वर्णन करना लोहे की लेखनी का काम नहीं, सहृदय पाठक स्वयं उसकी कल्पना कर सकते हैं।

८ जुलाई १९३१ को सवेरे चार बजे अलीपुर के सेन्ट्रल जेल में श्री० दिनेश को फाँसी दे दी गई। फाँसी की तिथि और समय आदि जानने की उसके भाई ने बड़ी चेष्टा की थी। परन्तु अधिकारियों ने साफ़ जवाब दे दिया कि हमें मालूम नहीं।

फाँसी की रस्सी गले में डाल लेने पर उसने कहा था—माँ, अगर मैं तुम्हारे कष्ट का कारण हुआ होऊँ, तो मुझे क्षमा करना।

फाँसी के बाद जेल के अन्दर ही उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया भी सम्पन्न हुई थी। चिता का धुआँ देख कर लोगों ने अनुमान कर लिया था कि फाँसी हो गई।

श्री० दिनेश और श्री० रामकृष्ण नाम के एक ऐसे ही अपराधी के मुक़दमे की पैरवी के लिए बङ्गालियों ने 'दिनेश-रामकृष्ण रक्षा-समिति' नाम की एक संस्था की स्थापना की थी। उसके सेक्रेटरी श्री० दुर्गापद दास गुप्त ने इस फाँसी के सम्बन्ध में जो विवृत्ति अख़बारों में छपवाई थी, वह इस प्रकार थी—

मङ्गलवार को सवेरे चार बजे दिनेश को फाँसी दे दी गई। उस समय वह गाढ़ निद्रा में सो रहा था। इसी समय जेलर ने उसे जगा कर कहा—"तुम्हारे जीवन-नाटक की यवनिका के गिरने का समय हो गया है।" दिनेश ने बड़ी प्रसन्नता से यह समाचार सुना और झट-पट नित्य-कर्म तथा स्नान आदि से निवृत्त हो तथा कपड़े पहन कर जेलर से कहा कि मैं तैयार हूँ। अलीपुर के मैजिस्ट्रेट, जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट, जेलर, तीन डिप्टी-मैजिस्ट्रेट और कई गोरे वॉर्डर फाँसी के समय मौजूद थे। फाँसी-मञ्च की ओर अग्रसर होते हुए दिनेश ने कहा था—

"देश-माता की बलि-वेदी पर आत्मोत्सर्ग करने का सुयोग पाकर मैं अपने को धन्य समझता हूँ।"

फाँसी के पूर्व अन्तिम क्षण तक दिनेश बहुत ही प्रसन्न था। बड़े उत्साह से अग्रसर होकर फाँसी का फन्दा उसने स्वयं अपने गले में डाल लिया था।

जिस समय उसे फाँसी दी गई थी, उस समय सेण्ट्रल जेल के आसपास के तमाम रास्तों पर पुलिस का कड़ा पहरा बिठाया गया था। गाड़ियों तथा मोटरों का चलना भी बन्द कर दिया गया था। इसके अलावा, उस दिन सारे शहर में पुलिस का विशेष पहरा और पुलिस लॉरियों का 'पेट्रोल' (गश्त) जारी था। शव-संस्कार के अन्त तक जेल के सभी क़ैदी अपने-अपने निवास-स्थानों में बन्द रक्खे गए थे।

फाँसी के कुछ दिन पूर्व श्री० दिनेश गुप्त ने अपनी माँ और बहिन को दो पत्र लिखे थे, जिनका अविकल अनुवाद नीचे दिया जाता है :

माता के नाम पत्र

सेण्ट्रल जेल, अलीपुर
३० जून, १९३१

माँ,

यद्यपि यह सोचता हूँ, कि कल सबेरे ही तुम आओगी तथापि तुम्हें पत्र लिखे बिना नहीं रह सका।

शायद तुम सोचती होगी की 'भगवान बड़े निष्ठुर हैं, तुमने इतनी कातर प्रार्थना की, तो भी उन्होंने न सुनी! निश्चय ही वे बड़े पाषाण-हृदय हैं, किसी का हृदय-विदारक आर्तनाद भी उन के कानों तक नहीं पहुँचता।' भगवान क्या हैं, यह मैं नहीं जानता, उनके स्वरूप की कल्पना करना मेरे लिए सम्भव नहीं है, परन्तु इतना तो अवश्य ही समझता हूँ, कि उनकी सृष्टि में कभी अविचार नहीं हो सकता। उनके विचारालय का द्वार सदैव खुला रहता है, उनका विचार-कार्य नित्य ही जारी रहता है। उनके विचार पर अविश्वास न करना, उसे सन्तुष्ट-चित्त से सिर झुका कर स्वीकार कर लेने की चेष्टा करना, किस उद्देश्य से वह क्या करते हैं, यह भला हम लोग कैसे समझ सकते हैं?

मृत्यु को हम बहुत बड़ा रूप देकर देखते हैं, इसी से वह हमें भयभीत कर सकती है। ठीक, जैसे छोटे बच्चे 'हौवा' से डरते हैं। जिस मृत्यु का स्वागत एक दिन सभी को करना पड़ेगा, वह हमारे हिसाब से दो दिन पहले ही आ जाती है, बस, इसीलिए हम इतने विक्षुब्ध, इतने चञ्चल हो रहे हैं? वह बिना सूचना दिए ही आती है, परन्तु इस समय सूचना दे कर आ रही है! तो क्या इसलिए हम उसे अपना परम शत्रु समझें? यह भूल है, सरासर भूल! मृत्यु ने मित्र रूप में ही मुझे दर्शन दिया है। मेरा प्यार और प्रणाम स्वीकार करना।

तुम्हारा,

'नसू' (दिनेश)

बड़ी बहिन के नाम पत्र

सेण्ट्रल जेल, अलीपुर
३ जुलाई, १९३१

मणि दीदी,

आज तुम्हारा पत्र मिला।

जिन्हें भगवान का आशीर्वाद प्राप्त होता है, उन्हीं के भाग्य में अशेष दुःख भी बदा होता है। यह तो नहीं जानता, कि उन दुखों की वर माला पहनने का सौभाग्य और शक्ति कितने लोगों को प्राप्त होती है, जिन्हें होती है, उनका जीवन सार्थकता से परिपूर्ण हो उठता है।

परमात्मा जिसे अपने कार्य के लिए चुन लेते हैं, उसके सारे सुख-सम्पद् को धूल में मिला कर उसे पथ का भिखारी और रिक्त कङ्काल बना देते हैं। वह जिसे वरण करते हैं, मरण-माला भी उसी के गले में पहना देते हैं। वह माला क्या कोई साधारण वस्तु है ?

यह न तुम्हारा हार देव, यह है तेरी तलवार !
अग्नि शिखा की लपटें इसमें, करतीं वज्र प्रहार !
हाय ! कैसी तेरी तलवार !

आनन्द का उपभोग करना इस जीवन में बड़ी बात हो सकती है। परन्तु उससे भी बड़ी बात है, दुःखों का आलिङ्गन करना ! आन्दन तो सभी भोग सकते हैं, परन्तु अपनी इच्छा से दुःख का बोझ उठाने के लिए कितने तैयार हैं ?

जो शक्तियों का मूल स्रोत है, वह अपने कार्य का भार सौंपता है, उसे दुख को ढोने की शक्ति भी प्रदान करता है ! अन्यथा वह उस गुरु-भार को एक क्षण भी कैसे ढो सकता ?

जिसमें जीवन है, श्रेय का स्वागत करने की जिसमें श्रद्धा है, वह क्या कभी 'उनके' महाशङ्ख की आह्वान-ध्वनि को सुन कर स्थिर रह सकता है ? संसार की क्या मजाल है—इस मिथ्या-मोह में कहाँ ऐसा बल है, जो उसे रोक सके ? उसके आह्वान में कौन सी शक्ति है—मैं नहीं जानता ।

मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि—

जो तेरा आह्वान-गीत सुन लेते हैं एक बार,
विश्व विसर्जन कर; सङ्कट में कूद पड़ें मँझधार ।
हिय अञ्चल फैला, स्वागत करते कष्टों का हार,
मृत्यु गर्जना में तेरी सुनता सङ्गीत उदार !

प्यारी दीदी ! आज बिदा दो !! शायद आज का यह मेरा अन्तिम प्रणाम है !!!

स्नेहभाजन

—दिनेश

ऊपर जिन पत्रों तथा कविताओं का उल्लेख किया गया है, ये बङ्गला में लिखे गए थे । पाठकों के लाभार्थ उनका हिन्दी अनुवाद कर दिया गया है ।

श्री० दिनेश की अन्त्येष्टि हिन्दू रीत्यनुसार कलकत्ते के नीमतल्ला घाट श्मशान के पुरोहित द्वारा कराई गई थी। अधिकारियों ने कृपा करके भाई श्री० यतीश गुप्त को चिता के पास तक जाने दिया था। परन्तु उनसे यह शर्त करा ली गई थी कि—(१) मैजिस्ट्रेट के साथ जाना होगा और मैजिस्ट्रेट के साथ ही चला आना होगा, (२) संस्कार-व्यापार में वे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेंगे और न आवेश में आकर कुछ करने पाएँगे। (३) चिता-भस्म नहीं ले जा सकेंगे। श्री० यतीश गुप्त ने प्रार्थना की थी कि जेल से सटी हुई काली गङ्गा में मुट्ठी भर भस्म डालने की अनुमति दे दी जाए, परन्तु यह प्रार्थना भी स्वीकृत नहीं हुई। अन्त में मैजिस्ट्रेट साहब ने कहा कि चिता-भस्म उनके सामने ही गङ्गा में बहा दी जाएगी। इसके बाद ज़िला मैजिस्ट्रेट के साथ ही श्री० यतीश गुप्त जेल से बाहर आ गए !!

सरदार भगतसिंह

सरदार भगतसिंह जिस वंश के गौरव थे, वह गत पचीस वर्षों से अपनी देशभक्ति और क़ुर्बानियों के लिए काफ़ी ख्याति प्रप्त कर चुका है। कहते हैं, इस ख़ानदान के रक्त में कुछ ऐसे बीज हैं, जिसके कारण कोई भी व्यक्ति परतन्त्रता की हवा में रहना पसन्द नहीं करता। आपके पूज्य पिता सरदार

किशनसिंह पञ्जाब के विख्यात देशभक्तों और स्व० लाला लाजपत-राय के साथियों में हैं। आपके इतिहास-प्रसिद्ध चचा स्वर्गीय सरदार अजीतसिंह को कौन नहीं जानता ? आपके दूसरे चचा सरदार स्वर्णसिंह की देशभक्ति की कहानी भी पञ्जाब के प्रत्येक घर में कही और सुनी जाती है।

सरदार भगतसिंह का जन्म १३ असौज, सम्वत् १८६४ शनिवार को लायलपुर (पञ्जाब) के बङ्गा नामक ग्राम में हुआ था। आपके जन्म से कई महीने पूर्व आपके पिता तथा आपके दोनों चचा—सरदार अजीतसिंह और सरदार स्वर्णसिंह पञ्जाब से भाग कर नेपाल चले गए थे। परन्तु जिस रोज़ सरदार का जन्म हुआ और लोग उनकी दादी को बधाइयाँ दे रहे थे, ठीक उसी समय आपके चचा सरदार स्वर्णसिंह जी घर आ पहुँचे। परन्तु सरदार किशनसिंह जी जेल में थे। आपके पास पुत्र उत्पन्न होने की ख़बर पहुँची, तो बड़े ख़ुश हुए और ईश्वर को धन्यवाद दिया।

सरदार भगतसिंह की दादी आपको बहुत प्यार करतीं तथा आपको 'भागोंवाला' अर्थात् भाग्यवान कहा करती थीं इसीसे आपका नाम भी 'भगतसिंह' रक्खा गया था।

सरदार की बाल्यावस्था का अधिकांश समय आपकी दादी तथा आपकी माता की निगरानी में गुज़रा। इन दोनों महिलाओं के धार्मिक आदर्शों का बालक भगतसिंह पर काफ़ी प्रभाव पड़ा। आपकी मेधा-शक्ति भी अच्छी थी, इसलिए तीव्र

वर्ष की अवस्था में ही आपको गायत्री मन्त्र याद हो गया। इसके बाद जब इनकी उम्र पाँच वर्ष की हुई, तो गाँव के प्राइमरी स्कूल में पढ़ने के लिए भेजे गए। वहाँ आपने कई साल तक शिक्षा प्राप्त कर बड़ी सफलता के साथ प्राइमरी परीक्षा पास की।

प्रारम्भिक पाठशाला में भरती होने के कुछ दिन बाद ही आपको एक बार अपने घर वालों के साथ लाहौर जाने का अवसर मिला। ये लोग वहाँ सरदार किशनसिंह के परम मित्र लाला आनन्दकिशोर के यहाँ उतरे थे, लाला जी ने बड़े प्यार से भगतसिंह को गोद में बिठा लिया और कंधेलों पर थपकियाँ देते हुए पूछा—तुम क्या करते हो ?

बालक ने अपनी तोतली बोली में उत्तर दिया—मैं खेती करता हूँ।

लाला जी—तुम बेचते क्या हो ?

बालक—मैं बन्दूकें बेचता हूँ।

यह बातचीत इतनी प्यारी थी, कि इसका जिक्र कभी-कभी उनके बड़े हो जाने पर भी हुआ करता था। लड़कपन में भगतसिंह बड़े चतुर, चपल और खिलाड़ी थे। लड़कपन में ये शिवाजी की तरह दल बना कर अपने साथियों के साथ युद्ध-क्रीड़ा किया करते थे। आपको वीरतापूर्ण खेलों से अधिक प्रेम था।

लड़कपन में सरदार भगतसिंह को तलवार, बन्दूक़ से बड़ा प्रेम था। एक बार अपने पिता के साथ खेतों की ओर गए। किसान खेतों में हल चला रहे थे। बालक भगतसिंह ने पिता से पूछा; ये क्या कर रहे हैं? पिता ने समझाया—'हल से खेत जोत रहे हैं। इसके बाद अनाज बोएँगे।' इस पर भोले बालक ने कहा—अनाज तो बहुत पैदा होता है, मगर तलवार-बन्दूक़ सब जगह नहीं होती। ये किसान तलवार-बन्दूक़ की खेती क्यों नहीं करते?

लाहौर-षड्यन्त्र वाले मुक़दमे में, एक दिन सरकारी वकील के किसी कथन पर सरदार भगतसिंह को हँसी आ गई। इस पर सरकारी वकील ने अदालत से शिकायत की कि सरदार भगतसिंह हँस कर अदालत की तौहीन कर रहे हैं। सरदार ने हँस कर उत्तर दिया—"मुझे तो ईश्वर ने हँसने के लिए ही पैदा किया है। मैं तमाम जिन्दगी हँसता रहा हूँ, हँसता रहूँगा। आज अदालत में हँस रहा हूँ, और ईश्वर ने चाहा तो फाँसी के तख्ते पर भी हँसूँगा। वकील साहब इस समय तो मेरे हँसने की शिकायत कर रहे हैं, परन्तु जब मैं फाँसी के तख्ते पर हँसूँगा, तब किस अदालत से शिकायत करेंगे?"

प्राइमरी परीक्षा पास करके भगतसिंह लाहौर चले आए और दयानन्द एङ्ग्लो-वैदिक विद्यालय में शिक्षा पाने लगे। यहाँ आपने नवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की। इसी समय सन् १९२१ में महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ

किया। सारे देश में सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों का बहिष्कार आरम्भ हुआ, इसलिए भगतसिंह ने भी डी० ए० वी० स्कूल छोड़ दिया और लाहौर के भारतीय विद्यालय में चले आए। उस समय इस स्कूल के प्रधान प्रबन्धकर्त्ता स्व० भाई परमानन्द जी थे। आपने भगतसिंह की परीक्षा लेकर इन्हें एफ़० ए० क्लास में भर्त्ती कर लिया। सन् १९२३ में आपने एफ़० ए० की परीक्षा पास की और इसी समय आपकी श्री० सुखदेव तथा अन्यान्य क्रान्तिकारियों से जान-पहचान हुई। इधर घर वालों ने आपके विवाह का प्रबन्ध किया। कई जगह से बातचीत आरम्भ हुई। परन्तु इसकी खबर सरदार को मालूम हुई तो उन्होंने चट बोरिया-बिस्तर उठाया और लाहौर छोड़ कर अन्यत्र चले आए। कई दिनों के बाद आपके पिता को एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था, कि मैं विवाह नहीं करना चाहता, इसी से घर छोड़ दिया है। आप मेरे लिए कोई चिन्ता न करें। मैं बहुत अच्छी तरह से हूँ। अस्तु।

लाहौर से भाग कर आप दिल्ली आए और वहाँ के 'अर्जुन' नामक हिन्दी-पत्र के कार्यालय में सम्वाददाता का कार्य करने लगे। इसके बाद कानपुर आए और 'प्रताप' में काम करने लगे। यहाँ आप बलवन्तसिंह के नाम से विख्यात थे और इसी नाम से 'प्रताप' में लेख आदि भी लिखा करते थे। हिन्दी भाषा से आपको विशेष प्रेम था और लिखते भी सुन्दर थे।

इस साल गङ्गा और जमुना नदियों में भयङ्कर बाढ़ आई

थी। संयुक्त प्रान्त के कई स्थानों में गाँव के गाँव इस भयङ्कर बाढ़ के कारण तबाह हो गए थे। श्री० बटुकेश्वर दत्त उन दिनों कानपुर में ही रहते थे। बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए उन्होंने एक समिति स्थापित की, सरदार भगतसिंह भी इस समिति के सदस्य बने और बड़े उत्साह से बाढ़-पीड़ितों की सेवा की। बहुत दिनों तक एक साथ रह कर कार्य करने के कारण श्री० बटुकेश्वरदत्त से आपकी घनिष्टता भी ख़ूब बढ़ गई। इन दोनों युवकों की सेवाओं का कानपुर की जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। लोग इन्हें बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। विशेषतः कानपुर के विख्यात राष्ट्र-सेवक स्वर्गवासी श्री० गणेशशङ्कर विद्यार्थी इनके कामों से अत्यन्त प्रसन्न हुए और भगतसिंह को एक जातीय स्कूल का हेड-मास्टर नियुक्त करा दिया।

इसी समय सरदार किशनसिंह जी को ख़बर मिली कि भगतसिंह कानपुर में हैं। उन्होंने अपने एक मित्र को तार दिया कि भगतसिंह का पता लगा कर कह दो कि उनकी माता अत्यन्त बीमार हैं।

माता की बीमारी का समाचार सुनते ही सरदार भगतसिंह पञ्जाब के लिए रवाना हो गए और पिता को तार भी दे दिया कि मैं आता हूँ। इन दिनों 'गुरु का बाग़' वाला इतिहास-प्रसिद्ध अकाली आन्दोलन आरम्भ था। सारे पञ्जाब में एक तहलक़ा-सा मचा हुआ था। सत्याग्रही अकालियों का जत्था

दूर-दूर से 'गुरु का बाग़' की ओर बढ़ रहा था। परन्तु कुछ 'हाँ-हुजूरी' दल इस आन्दोलन के विरुद्ध था। उसे यह आन्दोलन फूटी आँखों भी अच्छा नहीं लगता था। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि बङ्गा ग्राम की ओर से अकाली जत्थे का स्वागत न किया जावे और उन्हें यहाँ ठहरने तक न दिया जाए। कुछ लोगों ने इस बात की ख़बर सरदार किशनसिंह को, जो उन दिनों किसी कार्यवश लाहौर में थे, दी। उत्तर में सरदार साहब ने लिखा कि भगत वहाँ मौजूद है। वह जत्थे के ठहरने और 'लङ्गर' (भोजन) का सब प्रबन्ध कर लेगा, आप लोग किसी बात की चिन्ता न करें।

सुयोग्य पुत्र ने पिता के इस आदेश और इच्छा का पूर्णतया पालन किया। बङ्गा में जत्थे का ख़ूब स्वागत हुआ। लङ्गर का प्रबन्ध भी बड़ी धूमधाम से हुआ। विरोधी दल अड़ङ्गा लगाने से बाज़ नहीं आया। परन्तु सरदार भगतसिंह के सामने उसकी एक न चली। सरदार भगतसिंह ने स्वयं आटा और घी जत्थे के प्रबन्धक के पास पहुँचाया, इससे गाँव वाले और भी उत्साहित हुए। जत्थे को १०१) रुपए की एक थैली भेंट की गई। भगतसिंह ने इस अवसर पर एक छोटी सी वक्तृता देकर, सत्याग्रह-सिद्धान्त को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए उन्हें बधाई दी।

लायलपुर में सरदार भगतसिंह ने एक वक्तृता दी और कलकत्ता में मि० डे नाम के एक अङ्गरेज़ को गोली मार देने

वाले श्री० गोपीनाथ साहा की प्रशंसा की। पुलिस ने इसकी रिपोर्ट ली और लायलपुर में आप पर मामला चला। आपके पिता भी चाहते थे कि भगतसिंह को थोड़ा-सा जेल का अनुभव हो जाय, परन्तु अवसर न मिला। इसके बाद भगतसिंह लाहौर चले आए और वहाँ से कानपुर होते हुए बेलगाँव कॉङ्ग्रेस में चले गए।

कॉङ्ग्रेस से लौटने पर आपने अमृतसर के 'अकाली' नामक अख़बार के कार्यालय में काम करना आरम्भ किया और बलवन्तसिंह के नाम से बहुत दिनों तक 'अकाली' का सम्पादन करते रहे। इसी बीच में आप किसी काम से लाहौर आए। पुलिस आपकी तलाश में थी। इसलिए लाहौर आते ही आप गिरफ़्तार कर लिए गए और छः हज़ार की जमानत पर छोड़े गए।

सन् १९२७ में, अपने पिता की आज्ञा से सरदार ने लाहौर-वासियों को विशुद्ध दूध पहुँचाने के लिए एक स्कीम तैयार की और लाहौर के पास ही एक गाँव में एक वृहत् 'डायरी फ़ॉर्म' (दूध का कारख़ाना) स्थापित किया। यह कारख़ाना कुछ दिनों तक बहुत अच्छी तरह चला। परन्तु भगतसिंह के जीवन का उद्देश्य दूध बेचना न था, अतः वे किसी उद्देश्य से एक सप्ताह के लिए एकाएक ग़ायब हो गए। यह बात आपके पिता जी को बहुत बुरी मालूम हुई और जब आप वापस आए तो पिता ने नाराज़ होकर आपकी पीठ पर दो सोंटे रसीद किए। फलतः इसी समय से 'डायरी फ़ॉर्म' की भी इतिश्री हो गई।

सन् १९२८ में सरदार भगतसिंह ने पञ्जाब के शाहन्शाह

चक नामक स्थान में रहना आरम्भ किया । इस दरमियान में वे कभी-कभी लाहौर भी आते और हफ्तों और महीनों तक लापता रहते । इसी समय सरदार किशनसिंह के किसी मित्र ने कहा कि अगर आप भगतसिंह को हमें सौंप दें तो मैं आपको एक हज़ार रुपए मासिक दिया करूँ । पिता ने यह बात स्वीकार कर ली । भगतसिंह नौकरी करने के लिए घर से चले, परन्तु इसके बाद से फिर पता न चला कि कहाँ गए, किधर गए ।

इसके बाद विगत ८ अप्रैल, सन् १९२९ को दिल्ली में एसेम्बली बम-केस में आपकी और आपके साथी श्री० बटु-केश्वरदत्त की गिरफ्तारी हुई । मामला चला और न्यायालय ने आपको आजीवन कालेपानी की सज़ा दी । इस मामले में अदालत के सामने आपने जो वक्तव्य दिया था, उसमें एसेम्बली में बम फेंकने का उद्देश्य बताते हुए आपने कहा था कि "समस्त देश के विरोध को ठुकराते हुए सरकार ने साइमन कमीशन भेज कर अपने बहरेपन का जो परिचय दिया है, इसी को दूर करने की इच्छा से हमने यह बम फेंका है । वास्तव में हमारा उद्देश्य किसी की हत्या करना न था ।" परन्तु इतने पर भी आप पर तथा श्री० बटुकेश्वर पर हत्या की चेष्टा का अपराध लगाया गया और दोनों को उपर्युक्त दण्ड दे दिया गया ।

जिस समय मशहूर साइमन कमीशन भारत के कई स्थानों में भ्रमण करता हुआ लाहौर पहुँचा था, उस सयय उसके विरोध में वहाँ के नागरिकों ने एक जुलूस निकाला था और उसके

अध्यक्ष थे, पञ्जाब-केसरी स्वर्गवासी लाला लाजपतराय। इस जुलूस को तितर-बितर करने के लिए, लाहौर की पुलिस ने मि० सॉण्डर्स नाम के एक पुलिस कर्मचारी की अध्यक्षता में जुलूस वालों पर लाठियाँ चलाई थीं। स्व० लाला जी को भी चोट लगी थी, और इसके परिणाम-स्वरूप विगत १७ नवम्बर सन् १९२८ को लाला जी का स्वर्गवास हो गया। इस घटना के ठीक एक महीने बाद १७ दिसम्बर को मि० सॉण्डर्स और सरदार चाननसिंह को गोली मारी गई और उन दोनों का देहान्त हो गया। पुलिस को सन्देह हुआ कि इस काण्ड से सरदार भगतसिंह का भी सम्बन्ध है, इसलिए पुलिस उन्हें ढूँढ रही थी। इतने में एसेम्बली बम-काण्ड हुआ, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं।

एसेम्बली बम-विस्फोट के बाद पुलिस को पञ्जाब में किसी बम के कारखाने का सन्देह हुआ। वह और बड़ी मुस्तैदी से इस बात का पता लगाने लगी। अन्त में १६ अप्रैल १९२९ को लाहौर के काश्मीरी बिल्डिङ्ग में उसे एक बम का कारखाना मिला और सरदार भगतसिंह के साथी श्री० सुखदेव गिरफ़्तार किए गए। इस कारख़ाने के मिलने के साथ ही पुलिस ने घोषणा की कि इसके साथ ही भयङ्कर षड्यन्त्र भी है और इस षड्यन्त्र से सरदार भगतसिंह का भी सम्बन्ध है। अन्त में षड्यन्त्र सम्बन्धी मुक़द्मा आरम्भ हुआ और मि० सॉण्डर्स तथा सरदार चाननसिंह की हत्या का अपराध सरदार भगतसिंह, श्री० राजगुरु और श्री० चन्द्रशेखर 'आज़ाद' पर लगाया गया।

रायसाहब पण्डित श्रीकिशन स्पेशल मैजिस्ट्रेट की अदालत में लाहौर षड्यन्त्र का मामला पेश हुआ। इस मुक़दमे के दौरान में समय-समय पर सरदार भगतसिंह ने जो बातें कहीं और जो काम किए, वे इतिहास में अनुपम हैं। जेल के कष्टों को दूर कराने के लिए आपके साथी श्री० यतीन्द्रनाथ ने तो जेल में अनशन करके अपनी बलि दे दी। इसी बीच में सत्याग्रह-आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और गवर्नर-जनरल लॉर्ड इर्विन ने इस मुक़दमे को जल्दी समाप्त करने के लिए एक ख़ास ऑर्डिनेन्स बना कर तीन जजों का एक ट्रिब्यूनल क़ायम कर दिया। इस ट्रिब्यूनल में मामला फिर से चालू हुआ। अदालत के रुख़ को देख कर अभियुक्तों ने मुक़दमे में हिस्सा लेने से इन्कार कर दिया। इन लोगों ने सफ़ाई भी नहीं दी। आख़िर इन लोगों की ग़ैर-मौजूदगी में अदालत ने हुक्म भी सुना दिया। इस केस के दौरान में पूरे ११५ दिन अनशन-व्रत करके सरदार भगतसिंह ने सारे संसार को चकित कर दिया था!

७ अक्टूबर, १९३० को सरदार भगतसिंह, श्रीयुत सुखदेव और श्रीयुत राजगुरु को फाँसी की सज़ा दे दी गई। ट्रिब्यूनल ने फाँसी की तारीख़ भी मुक़र्रर कर दी और फाँसी के वॉरण्ट भी बना दिए। ख़ास ऑर्डिनेन्स होने के कारण इस मामले की अपील हाईकोर्ट में नहीं हो सकी। हाईकोर्ट में इस बात की अपील की गई कि वॉयसरॉय को ट्रिब्यूनल बनाने का कोई अधिकार नहीं था—पर वह अपील ख़ारिज कर दी गई। प्रिवी-

काउन्सिल में अपील की गई, पर वह भी नामञ्जूर हुई। हाईकोर्ट में वकीलों ने अपील की, कि फाँसी की सजा रद्द कर दी जाय, पर वह भी नामञ्जूर हो गई।

ट्रिब्यूनल ने फाँसी देने की तारीख़ अक्टूबर १९३० में मुक़र्रर की थी—वह तारीख़ निकल गई। उधर ऑर्डिनेन्स का समय समाप्त हो जाने से ट्रिब्यूनल भी समाप्त हो गया। वकीलों ने हाईकोर्ट में अपील की कि भारतीय दण्ड विधान के अनुसार अब उन्हें फाँसी दिलाने का किसी को अधिकार नहीं है। पर यह अपील भी न मानी गई। सरदार भगतसिंह की ओर से दया की प्रार्थना करने के लिए एक अपील वॉयसरॉय के नाम लिखी गई, पर सरदार ने दया की भीख माँगना अस्वीकार करके हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। यह दरख्वास्त और लोगों की ओर से भेजी गई, पर वॉयसरॉय ने इसे मञ्जूर नहीं किया। आपके साथी श्री० चन्द्रशेखर 'आज़ाद' को पकड़ने की पुलिस ने बहुत कोशिश की, पर वे पकड़े न जा सके। पाँच हज़ार का पारितोषक भी उन्हें पकड़ा न सका। आख़िर २७ फ़रवरी १९३१ को प्रयाग में वे पुलिस से भिड़कर और गोली मार कर मर गए। सरदार भगतसिंह को फाँसी से बचाने के लिए एक बार फिर हाईकोर्ट से अपील की गई, पर वह भी मञ्जूर न हुई।

महात्मा जी ने लॉर्ड इर्विन से कई दिन तक बातचीत करके सन्धि की शर्तें तय कीं और उनके अनुसार ४ मार्च को सत्या-

यह आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। इन शर्तों में महात्मा जी ने वॉयसरॉय से यह समझौता भी किया था कि इन्हें फाँसी अभी न लगाई जाय। इस सम्बन्ध में महात्मा जी का षड्यन्त्र-कारियों की जान बचाने का उद्योग तो निष्फल हुआ ही, वॉयस-रॉय का समझौता भी पूरा न हुआ। जब सरदार भगतसिंह को महात्मा जी के उद्योग का पता लगा तो आपने स्पष्ट कह दिया कि महात्मा जी हमें नहीं बचा सकते। हम राजबन्दी हैं। सरकार को चाहिए कि या तो हमें लड़ाई समाप्त होने पर छोड़ दे या गोली से उड़ा दे। हमें फाँसी लगाना, हमारा अपमान करना है। लाखों आदमियों के हस्ताक्षर से जो अपील की गई, उसका भी कोई फल नहीं हुआ, महात्मा जी की बात भी नहीं मानी गई। इस प्रकार लोकमत का निरादर करते हुए सरदार भगत-सिंह, श्री० सुखदेव और श्री० राजगुरु को २३ मार्च, १९३१ को रात को पौने आठ बजे फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इन नवयुवकों ने हँसते-हँसते फाँसी की रस्सी को चूमा और "इन्क़लाब जिन्दाबाद" के नारे लगाते हुए परम-धाम को सिधार गए। फाँसी के समय सरदार की उम्र कुल २३ वर्ष की थी!

'जेल मेनुअल' के अनुसार फाँसी देने का नियम प्रातःकाल है, पर सरदार और उनके साथी रात के अन्धकार में लटकाए गए। उनके निकट सम्बन्धियों और प्रियजनों के लिए उनसे अन्तिम भेंट करने की भी वाञ्छनीय सुविधा नहीं दी गई। यहाँ तक कि प्रदर्शन के भय से उनकी लाशें भी उनके घर वालों

को नहीं दी गई, और रातोंरात मोटर-लॉरियों में भर के वे लाहौर से प्रायः चालीस मील की दूरी पर सतलज नदी के किनारे ले जाकर चुपचाप जला दी गईं। उनके भस्मावशेष से भी इतना भय किया गया कि वह सतलज की मझधार में प्रवाह कर दिया गया !!!

× × ×

सरदार भगतसिंह ने फाँसी के पूर्व अपने छोटे भाई के नाम जो पत्र लिखा था, वह इस प्रकार था :

अज़ीज़ कुलतार,

आज तुम्हारी आँखों में आँसू देख कर बहुत रञ्ज हुआ। तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था, तुम्हारे आँसू मुझ-से बर्दाश्त नहीं होते।

बर्ख़ुर्दार हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना, और सेहत का ख़्याल रखना।

हौसला रखना, और क्या कहूँ :

उसे यह फ़िक्र है हरदम नया तर्ज़े जफ़ा क्या है,
हमें यह शौक़, देखें तो सितम की इन्तहा क्या है ?
दहर से क्यों ख़फ़ा रहें चर्ख़ का क्यों गिला करें,
सारा जहाँ उदू सही, आओ मुक़ाबला करें !
कोई दम का मेहमाँ हूँ, ऐ अहले महफ़िल,
चिराग़े - सेहर हूँ, बुझा चाहता हूँ !

मेरी हवा में रहेगी ख़्याल की बिजली,

यह मुश्ते ख़ाक है, फ़ानी रहे या न रहे !

अच्छा आज्ञा ! "खुश रहो अहले वतन हम तो सफ़र करते हैं।" हौसले से रहना। नमस्ते !

तुम्हारा भाई,

—भगतसिंह

आज़ादी के परवाने

परिशिष्ट

भारत की स्वाधीनता-साधना

हिंसात्मक आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास

यद्यपि इतिहासकारों का कथन है, कि धार्मिक विभिन्नता तथा विचार-वैचित्र्य के कारण विदेशियों के आक्रमणों से बचने के लिए भारत ने कोई सङ्गठित चेष्टा नहीं की तथापि यह मानना ही पड़ेगा, कि समय-समय पर स्वाधीनता के उपासकों ने अपने धर्म, सभ्यता तथा अपनी राष्ट्रीय-विशेषता की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व तक अर्पण कर देने में भी आनाकानी नहीं की। विश्व-विजयी सिकन्दर से लेकर, मुसलमानों के आक्रमण-काल तक का भारतीय इतिहास भारतीय वीरों के अद्भुत आत्मोत्सर्ग की कथाओं से भरा पड़ा है। मुसलमानी राजत्वकाल में भी भारत ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए यथेष्ट चेष्टा की थी।

कौन नहीं जानता कि राजपूताना के स्वतन्त्रता-प्रेमी वीरों ने अपनी मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए केवल अपना ही नहीं, बल्कि अपने बच्चों और स्त्रियों-तक का बलिदान कर दिया था! स्वतन्त्रता का वह अनन्य-पुजारी अपना राज सिंहासन छोड़ कर भूखे बच्चों और असूर्यम्पश्या राजराजेश्वरी के साथ, एक-दो नहीं, लगातार पच्चीस वर्षों तक बनों की ख़ाक छानता रहा। गुलाब के फूल-से भी कोमल बच्चों को भूख से तड़पते देखा, घास की रोटी के लिए उन्हें बिलखते देखा, कोमल-शय्या पर विश्राम करने वाले अपने कलेजे के टुकड़ों को पत्थर की कठिन और खुरखुरी चट्टानों पर सोते देखा, कङ्कड़ीले रास्तों पर चलने के कारण नवनीत-कोमल पैरों से रक्त की धारा बहते देखा; परन्तु..

अपने प्रण से विचलित नहीं हुआ। दिल को दहला देने वाली मुसीबतों का सामना किया, परन्तु स्वतन्त्रता के कौस्तुभ-मणिमाल को एक क्षण के लिए भी वक्षस्थल से अलग नहीं किया। वह कोमलाङ्गी रमणियाँ, जिनकी रूप-राशि से राजमहल उद्भासित हो उठता था, स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए नङ्गी तलवारें लेकर शत्रु-सागर में कूद पड़ी थीं। माताओं ने अपने दुध-मुँहे बच्चों की कमरों में अपने हाथों से तलवारें बाँध कर उन्हें समर-क्षेत्र में भेजा था। नव-विवाहिता वधू ने अपनी तमाम आशा और हृदय के मधुर अरमानों को हँसते-हँसते मातृ-भूमि के चरणों पर अर्पित कर दिया था। हज़ारों वीर बालाएँ जातीय सम्मान और गौरव की रक्षा के लिए आग की गगनचुम्बी लपटों से लिपट गई थीं। आह! उन जौहर व्रत-धारिणी देवियों के आत्मोत्सर्ग की कथा किस कठोर हृदय की आँखों को अश्रुसिक्त नहीं कर देती? स्वतन्त्रता के लिए इतना त्याग किस जाति ने स्वीकार किया है? किस जौहरी ने उस महारत्न का इतना मूल्य दिया है, जितना राजपूताना ने दिया है। स्वतन्त्रता की रक्षा में इस महातीर्थ के कण कितनी बार रक्त-रञ्जित हुए हैं, इसका हिसाब कौन बतलाएगा? स्वतन्त्रता के लिए राजपूताना कितनी बार पुरुष-शून्य हो चुका है, कौन नहीं जानता है? महाराणा-प्रताप, छत्रपति शिवाजी, राणा राजसिंह और राठौर-वीर दुर्गादास की अमर कीर्तियाँ देश की विलुप्त स्वाधीनता की रक्षा का उद्योग ही तो हैं। गुरु गोविन्दसिंह, वीरवर फत्ता, प्रतापादित्य आदि महावीरों ने भी इस सम्बन्ध में स्तुत्य प्रयत्न किया है। महारानी लक्ष्मीबाई, ताँतिया टोपी, बाबू कुँवरसिंह और नाना साहब के कारनामे भी किसी से छिपे नहीं हैं। इतिहास साक्षी

है कि इन प्रातः स्मरणीय वीरों ने स्वतन्त्रता देवी के चरणों पर अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया है। यद्यपि हमें यह स्वीकार करना ही पड़ेगा, कि यदि समस्त राष्ट्र को सङ्गठित कर के देश को परतन्त्रता के बन्धन से मुक्त करने की चेष्टा की गई होती, तो शायद यह दिन देखने को नहीं मिलते। परन्तु वास्तव में उस समय की परिस्थिति ही कुछ और थी, सङ्गठन के इतने साधन भी मौजूद न थे और न उन वीरों को इसके लिए यथेष्ट सुयोग ही प्राप्त हुआ था। अस्तु।

सन् ५७ के बाद

सन् १८५७ के ग़दर के बाद से भारत में शान्ति रही। सरल हृदय, निरीह भारतवासियों को परलोकवासिनी महारानी विक्टोरिया के उस घोषणा-पत्र पर, जिसे उसने ग़दर की समाप्ति के बाद प्रचारित कराया था, अगाध विश्वास था। उन्हें स्वप्न में भी इस बात की आशङ्का न थी, कि वह मधुर शब्दों का एक जाल-मात्र है और उन्नीसवीं शताब्दी के अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञ इच्छा करते ही उसे रद्दी की टोकरी में डाल देंगे तथा स्पष्ट शब्दों में कह देंगे, कि वह एक राजनीतिक चालबाज़ी-मात्र थी। अगर उन्हें एक क्षण के लिए भी मालूम हो जाता, कि महारानी का वह घोषणा-पत्र अनायास ही ठुकरा दिया जायगा, तो यह सम्भव न था, कि वे अर्द्ध-शताब्दी तक निश्चेष्ट भाव से बैठे रह जाते। क्योंकि विप्लव आन्दोलन की उपशान्ति के कुछ काल बाद ही बङ्गाल के विख्यात समाज-सुधारक राजा राम मोहन राय ने राजनीतिक अधिकार-लाभ की आवश्यकता का अनुभव किया था और अपनी समस्त शक्ति लगा कर बङ्गालियों को उसके

उपयुक्त बनाने की चेष्टा में लग गए थे। इस अद्भुत कर्मशील व्यक्ति के उद्योग से बङ्गाल के साहित्य, समाज और धर्म-क्षेत्र में एक साथ ही जागृति के लक्षण दिखाई देने लगे थे!

इसके बाद स्वर्गवासी सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी का आविर्भाव हुआ। इनकी वाणी में अद्भुत शक्ति थी। इन्होंने देशवासियों के राजनीतिक अधिकार की रक्षा के लिए सरकारी नौकरी छोड़ दी और स्व० कविराज उपेन्द्रनाथ सेन की सहायता से 'बङ्गाली' नाम का एक अख़बार निकाला। कुछ दिनों के बाद ही तत्कालीन राजनीतिज्ञ स्व० आनन्दमोहन बसु ने भी बैनर्जी महाशय का साथ दिया और सन् १८७६ में 'इण्डियन एसोसिएशन' या भारत-सभा नाम की एक राजनीतिक संस्था की स्थापना हुई। उन दिनों बैनर्जी महाशय नवयुवक थे और धारा-प्रवाह अङ्गरेज़ी बोल सकते थे, इसलिए बङ्गाल के नवयुवकों पर उन्होंने शीघ्र ही अच्छा प्रभाव जमा लिया। भारत-सभा के सदस्यों की संख्या सौ तक पहुँच गई। परन्तु बैनर्जी महाशय इतने से ही सन्तुष्ट होने वाले न थे। उन्होंने बङ्गाल के बाहर भी अपने कार्य-क्षेत्र का विस्तार करना चाहा और प्रचार के लिए समस्त भारत का भ्रमण करने का विचार किया। फलतः देश के शिक्षित युवकों पर इनकी वाग्मिता का अच्छा प्रभाव पड़ा और कलकत्ता की तरह पूना में भी 'सार्वजनिक सभा' नाम की एक राजनीतिक संस्था की स्थापना हुई।

सन् १८८० में लॉर्ड रिपन भारत के वॉयसरॉय नियुक्त हुए। ये बड़े सहृदय और न्याय-प्रिय अङ्गरेज़ थे। इन्होंने 'स्थानीय स्वायत्त-शासन' विधान का निर्माण किया और म्युनिसिपैलिटी तथा लोकल बोर्डों में

थोड़ा-सा अधिकार भारतवासियों को दिला दिया। उस समय यह तुच्छ अधिकार भी भारतवासियों के लिए एक अलभ्य वस्तु थी। इसलिए आनन्दोल्लास के साथ ही सारे देश में लाट साहब के सुयश का डङ्का पिट गया।

इसी समय मि० अलबर्ट नाम के एक सज्जन ने प्रस्ताव किया कि भारतीय विचारक अङ्गरेज़-अभियुक्तों के मामलों का भी विचार कर सकेंगे। उस समय गोरी दुनिया में एक तुमुल आन्दोलन आरम्भ हुआ। काले और विचार करेंगे? गोरों का इससे बढ़ कर अपमान की बात और क्या हो सकती है?

परन्तु अलबर्ट साहब की इस ग़लती से भारतवासियों का थोड़ा-सा उपकार हुआ। उनकी आँखों के सामने से माया-मरीचिका हट गई और उन्हें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा, कि काले और गोरे रङ्गों में दिन और रात का सा अन्तर है—कालों का स्वार्थ अलग है और गोरों का अलग। साथ ही उन्हें इस बात का भी पता लग गया, कि हमारे गौराङ्ग प्रभु-गण हमें किस हेय दृष्टि से देखते हैं।

कॉङ्गरेस का इतिहास

इस घटना के कुछ दिन बाद ही बम्बई में 'इण्डियन नेशनल कॉङ्गरेस' या भारतीय राष्ट्रीय महासभा का प्रथम अधिवेशन हुआ। सभापति थे श्री० उमेशचन्द्र बैनर्जी। उस समय भारत सरकार के स्वराष्ट्र मन्त्री मि० ह्यूम थे। सन् १८८५ में उन्होंने शासक और शासितों में भाव-विनिमय की इच्छा से इस 'कॉङ्गरेस' की स्थापना कराई। उद्देश्य रक्खा गया—शासन-कार्य में थोड़ा बहुत अधिकार प्राप्त करना और सरकार के

कानों तक अपनी आवश्यकताओं की पुकार को पहुँचाना। सन् १८८६ में इसका दूसरा अधिवेशन कलकत्ता में हुआ और श्री० दादाभाई नौरोजी ने सभापति का आसन सुशोभित किया। सन् १८८५ से १८९६ तक महासभा केवल परमुखापेक्षी थी। अपनी आवश्यकताओं और अभियोगों के सम्बन्ध में कुछ प्रस्ताव पास कर लेना और एक प्रार्थना-पत्र के साथ उनकी नकल सरकार की सेवा में भेज देना, बस, यही कॉङ्ग्रेस का काम था! बड़े दिन की छुट्टियों में इसका एक अधिवेशन हो जाता और कुछ अङ्गरेज़ी पढ़े-लिखे लोग वहाँ जाकर अपनी वाग्मिता का परिचय दे आया करते थे। सरकार भी उनकी प्रार्थनाओं और प्रस्तावों के लिए 'प्राप्ति-स्वीकार' लिख कर भेज देती थी। इस प्रकार दोनों ही अपने कर्तव्यों का पालन कर निश्चिन्त हो जाते थे।

सन् १८९७ में कुछ जागृति के लक्षण दृष्टिगोचर हुए। लोकमान्य श्री० बाल गङ्गाधर तिलक का सम्बन्ध कॉङ्ग्रेस से आरम्भ से ही था। परन्तु वे आवेदन-निवेदन और कोरे प्रस्ताव पास कर लेने के पक्षपाती न थे। वे देश को जाग्रत करना चाहते थे। वे जानते थे कि जिस तरह स्वयं मरे बिना स्वर्ग नहीं दिखाई देता, उसी तरह अपने पैरों के बल खड़े हुए बिना राजनीतिक अधिकार भी प्राप्त नहीं होते। वे प्रारम्भ से ही देश को जाग्रत करने की चेष्टा में थे। इसके लिये उन्होंने 'केसरी' और फिर 'मराठा' नाम के दो शक्तिशाली समाचार-पत्र भी निकाले। इसके सिवा सन् १८९५ में उन्होंने 'शिवाजी उत्सव' मनाने का अयोजन किया। लोकमान्य की चेष्टा नौकरशाही की नज़रों में खटक रही थी। 'केसरी' की निर्भीकता-पूर्ण आलोचनायें और शिवाजी-उत्सव में लोगों का लाठी और तलवार

के खेल दिखाना उसे फूटी आँखों भी नहीं सुहाता था । इनका एक अन्यतम कारण और भी था । पूना-निवासी श्री० दामोदर चापेकर और श्री० बालकृष्ण चापेकर नाम के दो उत्साही युवकों ने 'चापेकर-ब-कार्य' नाम की एक संस्था की स्थापना की थी । इस सङ्घ का उद्देश्य था, देशालियों युवकों के शरीरों और मनों को देश-सेवा के उपयुक्त बनाना । इसके स परन्तु रक्खे गए थे व्यायाम-चर्चा द्वारा शरीर की तथा श्री० शिवाजी महाराज की कीर्तियों के मनन और अनुशीलन द्वारा मन की उन्नति करना ! लोकमान्य इस सङ्घ के प्रधान पृष्ठपोषक थे । शिवाजी-उत्सव का आयोजन भी इसी सङ्घ द्वारा ही उन्होंने कराया था । सन् १८९७ में, तीसरे शिवाजी-उत्सव के उपलक्ष में लोकमान्य ने अपने पत्र में एक वीररसपूर्ण कविता छापी थी और एक वक्ता ने खुली सभा में घोषणा की थी, कि हम लोग अपनी खोई हुई स्वाधीनता का पुनरुद्धार करना चाहते हैं; हम अपनी समवेत चेष्टा द्वारा उसे प्राप्त करेंगे ।

मि० रैण्ड की हत्या

इस साल एक बड़ी दुखदाई दुर्घटना हुई । पूना में प्लेग फैला था । सरकारी कर्मचारियों ने नगर को इस भीषण महामारी से बचाने की चेष्टा आरम्भ की परन्तु नगर-निवासियों के लिए यह चेष्टा प्लेग से भी अधिक असह्य हो उठी । लोकमान्य तिलक ने 'केसरी' में इस रक्षा-काण्ड की घोर निन्दा की और उन अत्याचारों का भी वर्णन किया, जो प्लेग-निवारण के बहाने पूनावासियों पर किए जाते थे। इधर श्री० दामोदर चापेकर ने इन अत्याचारों से उत्तेजित होकर

प्लेग-निवारक कर्मचारी मि० रैण्ड और इनके सहकारी को जान से मार डाला। इसके लिए चापेकर को फाँसी दी गई।

स्वर्गवासी लोकमान्य तिलक इन दिनों बड़ी निर्भीकता के साथ ...नता-मन्त्र का प्रचार कर रहे थे। वीरत्व-व्यञ्जक एक कविता तो ...ही छाप चुके थे। नौकरशाही के लिए ये बातें असह्य थीं। उसने उनके ऊपर राजद्रोह-प्रचार का इल्ज़ाम लगाया और वे १८ महीने के लिए जेल भेज दिए गए। इस साल कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन मध्य-प्रान्त के अमरावती नगर में हुआ। श्रो० शङ्करन नायर सभापति थे। कॉङ्ग्रेस ने पूना के प्लेग-काण्ड और श्री० तिलक के कारा-दण्ड की तीव्र निन्दा की। कॉङ्ग्रेस के मञ्च पर ऐसी गर्मागर्म वक्तृताएँ इससे पहले कभी नहीं हुई थीं।

नरम और गरम दल

तिलक के कारादण्ड का जनता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। कॉङ्ग्रेस का एक दल इस घटना से बेतरह विक्षुब्ध हो उठा। अङ्ग्रेज़ी न्यायालयों पर से लोगों का विश्वास बहुत हद तक उठ गया और आत्म-शक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त करने का विश्वास दिनोंदिन दृढ़ होता गया। परन्तु दूसरा दल अङ्ग्रेज़ों का परम-भक्त था! उसे उनकी न्याय-परायणता, सहृदयता और उदारता पर दृढ़-विश्वास था। उसकी दृष्टि में आत्म-निर्भरता अपराध था—राजद्रोह था। वह प्रार्थना महामन्त्र का कट्टर उपासक था, उसके मतानुसार सब रोगों की वही एक-मात्र दवा थी। इस तरह कॉङ्ग्रेस में दो दलों की सृष्टि हो गई! अङ्ग्रेज़ी अख़बार

वालों ने व्यङ्ग से एक का नाम रक्खा 'मॉडरेट' या नरमपन्थी और दूसरे का 'इक्स्ट्रीमिस्ट' यानी चरमपन्थी।

बङ्गाल का विच्छेद

३ दिसम्बर सन् १९०३ को सरकार ने घोषणा की कि शासन-कार्य की सुविधा के लिए बङ्गाल दो भागों में बाँट दिया जाएगा। बङ्गालियों ने इसका विरोध किया। बरसों तक घोर आन्दोलन हुआ। परन्तु सरकार ने एक न सुनी और १६ अक्टूबर सन् १९०६ को यह घोषणा कार्यरूप में परिणत कर दी गई—बङ्गाल का बटवारा हो गया।

परन्तु बङ्गाली इस अपमान को चुपचाप नहीं सह सके। इसके कारण उनके हृदयों में जो तीव्र आग धधक उठी थी, वह धीरे-धीरे सारे भारतवर्ष में फैल गई। वाग्मिप्रवर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी और श्री० विपिनचन्द्र पाल ने अपनी ओज-भरी वक्तृताओं द्वारा बङ्गाल में एक नवजीवन का सञ्चार कर दिया। बङ्गालियों ने ब्रिटिश माल का बहिष्कार आरम्भ किया। साथ ही स्वदेशी प्रचार और जातीय शिक्षा के लिए भी उद्योग करने लगे। इस समय कवि-सम्राट स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ भी 'विश्व-प्रेमी' नहीं, केवल स्वदेश-प्रेमी ही थे। उनकी भावपूर्ण कविताओं ने सोने में सुगन्ध का काम किया। कायर कहाने वाले बङ्गालियों में उनकी लेखनी ने रूह फूँक दी। इधर पाण्डीचेरी के तपस्वी श्री० अरविन्द घोष और उपाध्याय ब्रह्म-बान्धव की लेखनियाँ भी ग़ज़ब ढाने लगीं।

बङ्गाल के कुछ नवयुवक स्वाधीनता के लिए पागल हो उठे। उन्होंने वैध मार्ग का अवलम्बन परित्याग किया। ऋषिराज बङ्किमचन्द्र

के 'बन्देमातरम्' मन्त्र का प्रचार पहले ही हो चुका था। इस महामन्त्र के कई युवक-साधक केवल 'बन्देमातरम्' का ज़ोर से उच्चारण करने के कारण जेल की हवा भी खा चुके थे। मन्त्र सिद्ध हो चुका था, उसने बङ्गालियों की विशीर्ण शिराओं के शीतल शोणित को ऊष्ण कर दिया। वक्र मेरु-दण्ड सीधे हो गए। बङ्गालियों का यह नवीन उत्थान देख कर मानो उनकी चिर-सङ्गिनी कायरता जान लेकर भागी। राजद्रोह, सम्राट के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की तैयारी और गुप्त षड्यन्त्रों के मामलों की रिपोर्टों से अख़बारों के कॉलम भर गए। सरकारी 'सिडिशन सरकुलरों' के मारे सभा-समितियाँ त्राहि-त्राहि पुकारने लगीं। चिर-शान्तिपूर्ण विशाल भारत अशान्ति का घर बन गया। कारादण्ड, अर्थ-दण्ड, वेत्राघात, द्विपान्तर और फाँसी का बाज़ार ऐसा गरम हुआ कि लोग आश्चर्य में पड़ गए।

इधर कॉङ्ग्रेस में दो दलों की सृष्टि तो पहले ही हो चुकी थी, विप्लव-पन्थियों का रङ्ग और आत्म-निर्भरता वाले चरम-पन्थियों का ढङ्ग देख कर बेचारे 'मॉडरेटों' का कलेजा दहल उठा। उन्होंने जातीय आन्दोलन से धीरे-धीरे किनारा-कशी आरम्भ की, परन्तु राष्ट्रीयतावादियों के मार्ग में अड़ङ्गा लगाने से बाज़ नहीं आए।

कॉङ्ग्रेस का ध्येय स्वराज्य

यह १६०६ का ज़माना था। कॉङ्ग्रेस का २२वाँ अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी ने तीसरी बार कॉङ्ग्रेस के सभापति के आसन को अलङ्कृत किया था। राष्ट्रवादियों ने लोकमान्य तिलक को सभापति के आसन पर बिठाना चाहा था,

परन्तु मॉडरेट तो उनके नाम से घबराते थे। उन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया। इसके सिवा वे विदेशी बहिष्कार के भी विरुद्ध थे। परन्तु कॉङ्ग्रेस का यह अधिवेशन अत्यन्त उत्साहपूर्ण था। अन्त में विजय भी राष्ट्रीय दल वालों की ही हुई। कॉङ्ग्रेस ने विदेशी वस्तु बहिष्कार सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रह कर औपनिवेशिक स्वतन्त्रता लाभ करना कॉङ्ग्रेस का ध्येय माना गया। सुयोग्य सभापति ने अपने भाषण में इसके लिए 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया था। इस शब्द के साथ स्वर्गीय नौरोजी महाशय की स्मृति सदैव विजड़ित रहेगी।

श्यामजी कृष्ण वर्मा का उद्योग

मातृ-भूमि की गोद से अलग—विदेशों में वास करने वाले कुछ भारतीय नवयुवक बड़ी आशा और उत्सुकता से इस राष्ट्रीय उत्थान की गति-विधि लक्ष्य कर रहे थे। उन्होंने वहीं बैठे-बैठे इस राष्ट्रीय महा-यज्ञ में भाग लेने का विचार किया। प्लेग-काण्ड के समय पूने में जो हत्या हुई थी, उसके सम्बन्ध में नाटूभाई की आख्या से विख्यात दो महाराष्ट्र युवकों को देशान्तर-वास की सज़ा दी गई थी। इससे श्याम जी कृष्ण वर्मा नाम के एक गुर्जर युवक के मन पर विचित्र प्रभाव पड़ा। ये महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिष्यों में थे। क्रान्ति की लहर से इनका हृदय ओत-प्रोत था। पूना के प्लेगी-कर्मचारियों की हत्या के कारण जिस भीषण अत्याचार की सृष्टि हुई थी, उसके प्रतिकार की चेष्टा के लिए वर्मा जी इङ्गलैण्ड चले गए। शायद उन्हें आशा थी कि इङ्गलैण्ड वाले उनसे सहानुभूति दिखाएँगे। परन्तु यह आशा केवल आशा ही

रह गईं; सफल नहीं हुईं। साथ ही स्वतन्त्रता प्रेमी वर्मा जी भी फिर इस पराधीन देश में न आए और वहीं रह कर इसे बन्धन-मुक्त करने की चेष्टा में लग गए! सन् १९०५ में उन्होंने 'इण्डियन होमरूल सोसाइटी' नाम की एक संस्था की स्थापना की और 'इण्डियन सोशलिस्ट' नाम का एक अख़बार भी निकाला। इस अख़बार में उन्होंने घोषणा की कि भारतवासियों में स्वतन्त्रता के भावों का प्रचार करने के लिए वे ऐसे छः आदमी चाहते हैं, जो विदेशों में जाकर इसके सम्बन्ध में शिक्षा लाभ करें। इसके लिए वे उन्हें एक हज़ार रुपए की वृत्ति भी प्रदान करेंगे। इस घोषणा को पढ़ कर कई भारतीय नवयुवक उनके साथ हुए। जिनमें नासिक के श्री० विनायक दामोदर सावरकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने भारतीय नवयुवकों के दिलों में देशात्मबोध की जागृति के लिए 'मित्र-मेल' नाम की एक संस्था की स्थापना की थी। परन्तु अन्त में उस समिति का कार्य-भार अपने छोटे भाई श्री० गणेश दामोदर सावरकर को सौंप कर वे लन्दन चले गए। सावरकर-जैसा उत्साही साथी पाकर वर्मा जी ने फ़ौरन 'इण्डिया हाउस' नाम की एक संस्था की स्थापना कर डाली और प्रवासी भारतीय युवकों को विप्लव-मन्त्र की दीक्षा प्रदान करने लगे।

राष्ट्र की जाग्रति

इधर भारतवर्ष में विशेषतः बङ्गाल में चापेकर सङ्घ की तरह समितियों की स्थापना होने लगी। युवकों ने बड़े उत्साह से लाठी, तलवार और छुरी आदि चलाने का अभ्यास कर लिया। कुछ दिनों के बाद

कई बड़ी-बड़ी समितियों का सम्बन्ध लन्दन के इण्डिया हाउस के साथ स्थापित हो गया।

सन् १९०६ की कॉङ्ग्रेस के बाद नौकरशाही ने इस राष्ट्रीय जागरण को बलपूर्वक कुचल डालने का विचार किया। पुलिस का अत्याचार ज़ोरों से चलने लगा। पञ्जाब के दो शेर—स्वर्गीय लाला लाजपतराय और स्वर्गीय सरदार अजीतसिंह—बिना विचार के ही क़ैद कर के माण्डले (बर्मा) भेज दिए गए।

सन् १९०७ में कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन नागपुर में होने वाला था। यद्यपि उस समय देश में राष्ट्रीयता की दुन्दुभी बज चुकी थी, परन्तु कॉङ्ग्रेस की बागडोर मॉडरेटों के ही कम्पमान हाथों में थी। वे नागपुर में कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन करने को तैयार न हुए। क्योंकि वहाँ तिलक-दल के महाराष्ट्रों का विशेष प्रभाव था; इसलिए बम्बई के विख्यात मॉडरेट नेता सर फ़ीरोज़शाह मेहता ने सूरत में कॉङ्ग्रेस के अधिवेशन करने का आयोजन किया। मेहता महोदय की यह कुटिल चाल राष्ट्रीय दल वालों को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कॉङ्ग्रेस को छोड़ कर अपनी अलग संस्था क़ायम करने का विचार किया। परन्तु लोकमान्य तिलक इसके लिए तैयार नहीं हुए। वे कॉङ्ग्रेस को मॉडरेटों के हाथों से छीन लेने के पक्षपाती थे। लाला लाजपतराय माण्डले से लौट आए थे। इसलिए राष्ट्रीय दल वाले उन्हीं को कॉङ्ग्रेस का सभापति बनाना चाहते थे। परन्तु मॉडरेटों को भय था, कि उनके सभापति होने से सरकार नाराज़ हो जाएगी, इसलिए उन्होंने बङ्गाल के मॉडरेट (सर) रासबिहारी घोष को सभापति चुना। इसके साथ ही उन्होंने यह भी

घोषणा की कि 'स्वराज्य बहिष्कार' और 'जातीय शिक्षा' सम्बन्धी प्रस्तावों की आलोचना कॉङ्ग्रेस मे नहीं हो सकेगी । राष्ट्रीय दल वाले मॉडरेटों की इस मनोवृत्ति से अत्यन्त क्षुब्ध हुए । उन्होंने सूरत में श्री० अरविन्द घोष के सभापतित्व में एक सभा की। निश्चय हुआ, कि भीरुता और दुर्बलता को प्रश्रय प्रदान कर कॉङ्ग्रेस की मर्यादा को न बिगड़ने दिया जाए । लोकमान्य ने श्री० रासबिहारी घोष से मिल कर उन प्रस्तावों को ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया। परन्तु उन्होंने ऐसा करने से साफ़ इन्कार कर दिया। राष्ट्रीय दल वाले हताश होकर लौट आए और निश्चय किया कि कॉङ्ग्रेस के खुले अधिवेशन में ये प्रस्ताव रक्खे जाएँ और घोष महाशय के सभापतित्व का विरोध किया जाए । मॉडरेट भी अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए तैयार थे। अधिवेशन आरम्भ हुआ। तिलक कुछ कहने के लिए उठे । इतने में किसी बदमाश ने उन पर एक जूता फेंका, जो तिलक को तो नहीं लगा, परन्तु बङ्गाल के सुप्रसिद्ध मॉडरेट नेता श्री० सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी की दाढ़ी को चूम कर एक दूसरे मॉडरेट सज्जन के ऊपर जा पड़ा ! सारी सभा में हूलस्थूल मच गया । कुर्सियाँ चलीं, डण्डे चले, हाथा-पाई हुई और अन्त में कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन ही स्थगित कर देना पड़ा।

सन् १९०८ में कॉङ्ग्रेस का वही स्थगित अधिवेशन मद्रास में हुआ । सभापति भी वही श्री० रासबिहारी घोष महाशय हुए। मैदान साफ़ था । महाराष्ट्र-केसरी श्री० तिलक देव राजद्रोह के प्रचार के अपराध में ब्रिटिश न्यायालय द्वारा छः वर्षों के लिए माण्डले के जेल-ख़ाने में भेजे जा चुके थे। बङ्गाल के स्वदेशी-प्रचारक नेता श्री० श्याम-

सुन्दर चक्रवर्ती, श्री० कृष्णकुमार मित्र, श्री० शचीन्द्रप्रसाद बोस, श्री० अश्विनीकुमार दत्त, श्री० सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय, राजा सुबोधचन्द्र मल्लिक, श्री० मनोरञ्जन गुह ठाकुरता, श्री० पुलिनबिहारी दास और श्री० भूपेन्द्रनाथ नाग, सन् १९१८ के तीसरे रेगूलेशन के अनुसार बिना विचार के ही निर्वासित कर दिए गए थे। बङ्गाल के इन नौ नेताओं का निर्वासन इतिहास में 'नौ रत्नों के निर्वासन' के नाम से विख्यात है। इस घटना ने उस समय सारे देश में एक विचित्र सनसनी फैला दी थी।

१९०७–८ का विप्लव-काण्ड

सन् १९०७ की ६ठी दिसम्बर को बङ्गाल के छोटे लाट अपनी स्पेशल ट्रेन द्वारा मेदिनीपुर जा रहे थे। विप्लववादियों ने बम द्वारा उनकी गाड़ी उलट देने का आयोजन किया, परन्तु तक़दीर अच्छी थी, बेचारे लाट साहब बच गए। केवल कुछ गाड़ियाँ चूर होकर रह गईं।

इसी साल की २३वीं दिसम्बर को ग्वालन्दो के स्टेशन पर किसी ने ढाका के भूतपूर्व मैजिस्ट्रेट मि० एलेने पर पिस्तौल का वार किया। साहब को चोट तो करारी लगी थी, परन्तु मरे नहीं। इस घटना के कई दिन बाद बङ्गाल में कुष्टिया नामक स्थान में एक अङ्गरेज़-पादड़ी पर भी गोली छोड़ी गई थी। परन्तु इन दोनों अपराधियों का आज तक पता नहीं लगा।

सन् १९०८ की १०वीं अप्रैल को चन्दननगर के मेयर के घर में एक बम फटा। परन्तु मेयर बच गया। ३० अप्रैल को खुदीराम बोस और प्रफुल्लचन्द्र चाकी ने मुज़फ़्फ़रपुर में श्रीमती केनेडी और उनकी

कन्या कुमारी केनेडी को बम फेंक कर मार डाला। ये दोनों विप्लववादी युवक कलकत्ते के प्रेज़ीडेन्सी मैजिस्ट्रेट मि० किङ्ग्सफ़र्ड को मारने आए थे, जो मुज़फ़्फ़रपुर में जज नियुक्त हुए थे, परन्तु धोखे में पड़ जाने के कारण बेचारी दोनों स्त्रियों को चोट लगी और वे मर गईं।

घटना के दूसरे दिन खुदीराम बैनी नाम के एक गाँव में पकड़ा गया था। अन्त में उसे फाँसी की सज़ा दी गई थी और चाकी ने आत्म-हत्या करके न्याय के शिकञ्जे से अपना पिण्ड छुड़ाया था।

इस घटना के कुछ दिन बाद ही, ता० २ मई सन् १९०८ को कलकत्ते के माणिकतल्ला नामक महल्ले में पुलिस ने बम बनाने के एक बड़े कारख़ाने का पता लगाया। यहाँ बहुत से बम, रिवॉल्वर, बन्दूकें और कारतूस आदि युद्ध-सम्बन्धी सामान पाए गए। इसके सिवा कलकत्ता के हैरिसन रोड के एक मकान में भी कुछ ऐसे ही सामान पाए गए थे। इसी साल कलकत्ता के ग्रे-स्ट्रीट नामक एक स्थान में एक बम फटा था और ढाका ज़िले के बाढ़ा ग्राम में एक भीषण डकैती भी विप्लववादियों द्वारा हुई थी। यह डकैती बड़ी साहसपूर्ण थी। चार आदमी क्रान्तिकारियों द्वारा मारे गए थे।

इन भयङ्कर घटनाओं के कारण सारे देश में सनसनी फैल गई। अख़बार वालों ने इस विप्लवकाण्ड की घोर निन्दा की, विप्लवपन्थियों को आततायी, पागल और देशद्रोही कहा गया। मॉडरेट ही नहीं, कितने ही 'एक्स्ट्रीमिस्ट' भी इन घटनाओं के कारण सन्नाटे में आगए और कुछ दिनों के लिए काँङ्ग्रेसी आन्दोलन दब गया।

माणिकतल्ले में जो कारख़ाना पकड़ा गया था, उसके सम्बन्ध में श्री० अरविन्द घोष के छोटे भाई श्री० वारीन्द्रकुमार घोष श्री० उल्लासकर दत्त आदि ३४ नवयुवकों पर मामला चला। इसके बाद श्री० अरविन्द घोष आदि भी इसी मामले में पकड़े गए। इस मुक़दमे का नाम 'अलीपुर षड्यन्त्र-केस' रक्खा गया था। वर्षों तक बड़ी धूम के साथ मामला चलने पर श्री अरविन्द आदि कई आदमी तो छूट गए परन्तु बाक़ी १५ अभियुक्तों को कालापानी तथा कठोर कारा-वास का दण्ड दिया गया था। इस मामले में श्री० वारीन्द्रकुमार और श्री० उल्लासकर दत्त आदि कई अभियुक्तों ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए, गरमागरम बयान भी दिये थे।

इन्हीं अभियुक्तों में नरेन्द्र गोस्वामी नाम का एक नवयुवक भी था। वह सरकारी गवाह हो गया और उसने विप्लववादियों के सारे षड्यन्त्रों का भण्डाफोड़ कर दिया। फलतः अलीपुर की सेण्ट्रल जेल के अन्दर ही श्री० कन्हाईलाल दत्त और श्री० सत्येन्द्रनाथ बोस ने पिस्तौल की गोलियों द्वारा नरेन्द्र का काम तमाम कर दिया। जिस समय यह अद्भुत दुर्घटना हुई थी, उस समय श्री० कन्हाईलाल को १०५ डिग्री ज्वर था। कहते हैं, पुलिस को आज तक इस बात का पता न लगा कि जेल के अन्दर इन्हें पिस्तौल कहाँ से मिल गई। अस्तु।

नन्दलाल बैनर्जी नाम के एक पुलिस-इन्स्पेक्टर ने, मुज़फ़्फ़रपुर बम-काण्ड के अन्यतम नायक श्री० प्रफुल्ल को पकड़ने की चेष्टा की थी। जिस दिन श्री० कन्हाईलाल को फाँसी दी गई थी, उसके एक

दिन पहले कलकत्ता के सरपेण्टाइन लेन में किसी ने नन्दलाल को गोली मार दी और वह वहीं ढेर हो गया !

जिस रोज़ नन्दलाल मारा गया था, उसके दो रोज़ पहले एक और बड़ी सनसनीपूर्ण घटना हुई । कलकत्ता के मध्य भाग में 'ओवर-टून हॉल' नाम की एक अट्टालिका है, वहीं 'यङ्गमेन क्रिश्चियन एसोसिएशन' का कार्यालय है । उस दिन वहाँ कोई जलसा था। बङ्गाल के तत्कालीन लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर एण्ड्रू फ्रेज़र भी जलसे में आए थे। सैकड़ों गण्य-मान्य अङ्गरेज़ और हिन्दुस्तानी वहाँ मौजूद थे । उसी समय जितेन्द्रनाथ नाम के एक बङ्गाली युवक ने उन पर हमला किया। परन्तु सर एण्ड्रू के भाग्य से उसकी छः नली पिस्तौल ख़राब थी, इसलिए उसकी चेष्टा विफल हो गई और लाट साहब बाल-बाल बच गए ।

इस साल, अर्थात् १९०८ ईस्वी में, केवल बङ्गाल में ही इस तरह की कुल २१ वैप्लविक घटनाएँ हुई थीं।

कॉङ्ग्रेस का वैध आन्दोलन

सन् १९०८ से लेकर १९२४ तक कॉङ्ग्रेस के वैध आन्दोलन में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ा । १९०८ में भारत को मॉर्ले-मिण्टो शासन संस्कार प्राप्त हुआ । 'मॉडरेट' नेताओं ने इसे अपने परिश्रम का फल समझ कर सिर और आँखों पर चढ़ाया। उन्हें विश्वास था, कि इसी तरह वैध आन्दोलन करते रहने से और अधिकार भी प्राप्त होंगे, इसलिए उन्होंने कॉङ्ग्रेस को भी अच्छी तरह अपने क़ब्ज़े में रक्खा। इसके लिए एक 'क्रीड' बनाया गया और जो इस क्रीड पर हस्ताक्षर कर देता था, वही कॉङ्ग्रेस का प्रतिनिधि हो सकता था।

परन्तु राष्ट्रीय दल इस क्रीड के विरुद्ध था इसलिए छः वर्षों तक कॉङ्ग्रेस सम्पूर्ण रूपेण मॉडरेटों के हाथ में रही। इस समय कॉङ्ग्रेस का उद्देश्य यह था—

"ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वायत्त-शासन सम्पन्न देशों की तरह शासन-प्रणाली प्राप्त करना और देश के शासन-कार्य में उन्हीं की तरह अधिकार लाभ करना।" इसके लिए उपाय निर्धारित हुआ, वैध आन्दोलन और धीरे-धीरे अधिकार प्राप्त करते जाना। इसके साथ ही राष्ट्रीय एकता की वृद्धि, राष्ट्रीय भावों का प्रचार तथा देश की मानसिक, नैतिक, आर्थिक और वाणिज्य सम्बन्धी उन्नति करना भी कॉङ्ग्रेस का ध्येय रखा गया।

विप्लव की प्रगति

इधर विप्लवपन्थियों का आन्दोलन ज़ोरों के साथ चल रहा था। अलीपुर षड्यन्त्र केस में तथा नरेन्द्र की हत्या वाले मामले में आशुतोष बिस्वास नाम के एक बङ्गाली ने सरकार के पक्ष का समर्थन किया था, इसलिए सन् १९०९ की १० फ़रवरी को एक नवयुवक ने बिस्वास को गोली मार दी और इसके लिए उसे फाँसी की सज़ा दी गई।

पुलिस के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट मियाँ शमसुल आलम अलीपुर षड्यन्त्र-केस के पैरवीकार थे। इसलिए सन् १९१० की २४ जनवरी को श्री० वीरेन्द्रनाथ गुप्त नाम के एक नवयुवक ने उन्हें दिन-दहाड़े और कलकत्ता हाईकोर्ट के जनाकीर्ण फाटक पर गोली मार दी। वीरेन्द्र को फाँसी की सज़ा दी गई थी।

इस तरह के क्रान्तिकारी अनुष्ठानों की बढ़ती देख कर सरकार ने विशेष सतर्कता का अवलम्बन किया । उसने सन् १९०८ के फ़ौजदारी क़ानून में यह सुधार किया कि वैप्लविक अपराधों का विचार सनातन नियमानुसार न कर, 'चट मँगनी और पट विवाह' के अनुसार होगा। इसके बाद ही बङ्गाल के विभिन्न स्थानों की, प्रायः आधी दर्जन समितियों और सभाओं को ग़ैर-क़ानूनी संस्था क़रार दे दिया गया।

सन् १९०९ में फ़रीदपुर ज़िले के फ़तहजङ्ग नामक गाँव में पुलिस के एक गुप्तचर के धोखे में उसका भाई मार डाला गया। इसी साल बङ्गाल के नागला, हल्दबाड़ी और हावड़ा आदि कई स्थानों में डकैती तथा गुप्त साज़िश आदि के अभियोग में बहुत सी गिरफ़्तारियाँ हुईं और कई मामले चले। हावड़ा के षड्यन्त्र-केस में ५० युवकों पर मामला चलाया गया था। इनमें छः हल्दबाड़ी की डकैती वाले मामले में पहले ही सज़ा पा चुके थे। बाक़ी ४४ कई महीने के बाद बेदाग़ छोड़ दिए गए। इस साल की वैप्लविक घटनाओं में सब से बड़ी घटना ढाके का षड्यन्त्र-केस था। इसके सम्बन्ध में कुल ४४ नवयुवक पकड़े गए थे, जिनमें १५ दण्डित हुए और बाक़ी छूट गए।

सन् १९१० में, विप्लव की बाढ़ रोकने के लिए सरकार ने प्रेस-क़ानून पास किया। फल-स्वरूप कितने ही अख़बार बन्द हो गए। देश ने इस क़ानून का घोर प्रतिवाद किया था, परन्तु कोई फल नहीं हुआ। इस साल विप्लववादियों ने पुलिस के तीन गुप्तचरों की हत्याएँ कीं। एक ढाका ज़िले के एक गाँव में मारा गया, दूसरा मैमनसिंह ज़िले में और तीसरा बारीसाल में। २१ फ़रवरी को कलकत्ते में

श्री० शरचन्द्र नाम का एक जासूस भी मारा गया। ढाका ज़िले के सोनारङ्ग नाम के गाँव में कुछ युवकों ने एक राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना की थी। आस-पास के गाँवों के कुछ आदमियों ने, कहा जाता है; पुलिस से मिल कर, विद्यालय वालों के विरुद्ध एक जाली मामला दायर कर दिया। इससे कुछ नवयुवक अत्यन्त उत्तेजित हो उठे और कई आदमियों को मार डाला।

सन् १९११ में नवाखाली में विप्लववादियों ने एक विप्लववादी को ही मार डाला। बात असल यह थी, कि शारदाचरण चक्रवर्ती नाम का एक विप्लववादी विप्लवी-दल की कुछ बन्दूकें तथा अन्यान्य सामान लेकर अलग हो गया था और अपना एक दल बना कर कुछ स्वार्थ-साधन करना चाहता था। इसलिए विप्लववादियों ने एक दिन उसका काम तमाम कर दिया। इसके सिवा इस साल ढाका और मेदिनीपुर में दो पुलिस के चर भी मारे गए थे।

सन् १९१२ में विप्लव-काण्ड कुछ शिथिल था। इस साल कहीं कोई उल्लेख योग्य घटना नहीं हुई। परन्तु सन् १९१३ में फिर आग भड़की। इस साल २९वीं सितम्बर को कलकत्ता के 'कॉलेज स्क्वायर' नामक मैदान में पुलिस का एक बङ्गाली हेड-कॉन्स्टेबिल मार डाला गया। इसके दूसरे दिन मैमनसिंह के एक दरोगा पर बम फेंका गया। इससे पहले दो बार और उसे मार डालने की चेष्टा की गई थी, परन्तु सफलता नहीं प्राप्त हुई। इसके कुछ दिन बाद ही बारीसाल के षड्यन्त्र केस का सूत्रपात हुआ। इस मामले में सरकार और विद्रोहियों में एक समझौता हुआ। १२ अभियुक्त अपराध स्वीकार कर जेल गए

और बाक़ी सोलह छोड़ दिए गए। इसी साल कलकत्ता राजाबाज़ार नाम के मोहल्ले में पुलिस ने एक बम का कारख़ाना पकड़ा और श्री० अमृतलाल हाज़रा नाम का एक युवक १६ साल के लिए जेल भेजा गया।

१९१४ की बङ्गाल के विप्लव सम्बन्धी घटनाओं में चटगाँव के सत्येन्द्रसेन की हत्या और ढाका के रामदास की हत्या विशेष उल्लेख योग्य है। सत्येन्द्र पुलिस का वेतनभोगी जासूस था। विप्लवपन्थियों में आ मिला और सारा भेद पुलिस को बतला दिया। इसलिए १९ जून को दिन-दहाड़े वह मार डाला गया। रामदास का भी वही हाल था। पहले वह विप्लववादी था, पर अन्त में पुलिस का जासूस बन गया फलतः उसे भी जान से हाथ धोना पड़ा। १९ जुलाई को वह ढाका के बकलैण्ड पुल पर वसन्त चटर्जी नाम के जासूस के साथ टहल रहा था। इसी समय किसी विप्लवी ने उस पर आक्रमण किया। वसन्त ने पानी में कूद कर अपनी रक्षा कर ली।

१९०८ से १९१४ तक में विप्लव की आग सारे भारतवर्ष में फैल गई। उसका वर्णन हम आगे चल कर करेंगे। अस्तु।

महासमर और विप्लव

सन् १९१४ में यूरोप में महासमर की आग भड़क उठी। राजशक्ति को व्यतिव्यस्त देख कर मॉडरेटों ने निश्चय किया, कि इस साल कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन न किया जावे। परन्तु अन्त में, उस साल मद्रास में और दूसरे साल अर्थात् १९१५ में बम्बई में कॉङ्ग्रेस के अधिवेशन हुए और निश्चय हुआ कि इस सङ्कट के समय में ब्रिटिश सरकार की सहायता की जाय। इस प्रतिश्रुति का केवल कॉङ्ग्रेस ने ही नहीं, वरन्

सारे देश ने ख़ूब पालन किया। साधारण से साधारण मनुष्य ने भी युद्ध-फ़ण्ड में रुपए दिए। केवल धन ही नहीं, जान देने में भी देश ने अपनी उदारता और त्याग-शीलता का ख़ूब परिचय दिया।

परन्तु विप्लवी किसी और ही धुन में थे। जिस समय देश ब्रिटिश सरकार की सहायता करने में जुटा था, उस समय वे उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करने में लगे थे। उन्होंने इस अवसर से लाभ उठा कर सशस्त्र विद्रोह की तैयारी आरम्भ कर दी। ज़ोरों से आयोजन आरम्भ हुआ। कलकत्ते की एक दूकान से ५० पिस्तौलें और ४६ हज़ार कारतूस लूट कर उसी समय देश के विभिन्न केन्द्रों में बाँट दिए गए। हथियार पा जाने पर विप्लववादी और भी उत्साहित हुए। इस साल के आरम्भ में ही कलकत्ता के शोभा बाज़ार के पास एक पुलिस का इन्स्पेक्टर मार डाला गया था। बसन्तकुमार नाम के पुलिस कर्मचारी को, जिसने ढाके के बकलैण्ड पुल से कूद कर अपनी रक्षा की थी, मारने के लिए फिर चेष्टा हुई। परन्तु इस बार भी वह बच गया। उसके बदले एक दूसरे हेड-कॉन्स्टेबिल की हत्या हुई और दो कॉन्स्टेबिल घायल हुए।

आए दिन की इन हत्याओं और उत्पातों के कारण सरकार विशेष विचलित हो उठी। उसने इसके प्रतिकार के लिए 'भारत-रक्षा-क़ानून' या डिफ़ेन्स ऑफ़ इण्डिया एक्ट के नाम से एक क़ानून पास किया। परन्तु लोगों को सन्देह हुआ, कि इस क़ानून के कारण जौ के साथ घुन भी पिस जाएँगे। इसलिए इसका घोर विरोध किया गया। परन्तु सरकार ने इस क़ानून को पास करके ही दम लिया। बात वही सामने

आई। इस क़ानून की बदौलत बङ्गाल के बाहर के सैकड़ों नवयुवक बिना विचार के ही यत्र-तत्र नज़रबन्द कर दिए गए।

१९१५ का ज़माना था। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने 'होमरूल' आन्दोलन आरम्भ किया। देश के अधिकांश नेताओं ने उनका साथ देने का वचन दिया। १९१६ में लखनऊ में कॉङ्गरेस के इकतीसवें अधिवेशन की तय्यारियाँ आरम्भ हुईं। मॉडरेटों की अहम्मन्यता के कारण जो लोग कॉङ्गरेस से अलग थे, वे भी इस साल उसमें शरीक हुए। इसके सिवा मुसलमान भी आए। वहीं मुस्लिम लीग का अधिवेशन भी हुआ। दोनों ही राष्ट्रीय संस्थाओं ने होमरूल सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार किया। इस सम्बन्ध में लोकमत तैयार करने की इच्छा से लोकमान्य तिलक और श्रीमती बेसेण्ट ने प्रचार-कार्य आरम्भ किया।

इधर नौकरशाही ने एक ओर शासन-संस्कार और दूसरी ओर लाल आँखें दिखा कर इस राष्ट्रीय भावना को कुचल डालने की चेष्टा की। भारत-रक्षा-क़ानून के फन्दे में हज़ारों युवक फाँसे गए। यहाँ तक कि श्रीमती एनी बेसेण्ट, मौ० शौकतअली और मौ० मोहम्मद अली भी नज़रबन्द किए गए। परन्तु इस दमन से आन्दोलन का बाल भी बाँका नहीं हुआ। एक ओर कॉङ्गरेस का वैध आन्दोलन और दूसरी ओर विप्लव आन्दोलन पूर्ण उत्साह के साथ चलने लगे। बल्कि विप्लव आन्दोलन ने तो दूसरा ही रूप धारण किया। सन् १९१५ की १२वीं फ़रवरी को कलकत्ते के गार्डनरीच नामक स्थान पर दिन-दहाड़े बर्ड कम्पनी का ख़ज़ाना लूट लिया गया। कम्पनी के कर्मचारी एक मोटरगाड़ी पर रुपए लाद कर ले जा रहे थे। विप्लवियों ने रास्ते में गाड़ी रोक ली और सैकड़ों

आदमियों के देखते-देखते १८ हज़ार रुपए लेकर चल दिए। इसके ठीक दस दिन बाद बेलियाघाटा (कलकत्ता) के एक चावल के व्यापारी के २० हज़ार रुपए लूटे गए और एक मोटरगाड़ी चलाने वाला भी मार डाला गया।

एक दिन विख्यात विप्लववादी श्री० यतीन्द्रनाथ मुकर्जी पथरियाघाटा (कलकत्ता) के एक मकान में अपने साथियों से कुछ परामर्श कर रहा था। इतने में वहाँ नीरद नाम का एक अजनबी आदमी पहुँच गया। यतीन्द्र ने उसे पुलिस का आदमी समझ कर फ़ौरन गोली दाग़ दी। २८ फ़रवरी को कलकत्ता के कॉर्नवालिस स्क्वायर के पास एक पुलिस कर्मचारी मारा गया। यह गया था, चित्तप्रिय नाम के एक विद्रोही को गिरफ़्तार करने। इसी वर्ष के ३० नवम्बर को कलकत्ते में एक कॉन्स्टेबिल मारा गया था। २५ अगस्त को पुलिस की सहायता करने के अपराध में मुरारीमोहन नाम का एक युवक मारा गया था। ३ मार्च को कुम्मिले में एक हेड-मास्टर की हत्या हुई। १९ अक्टूबर को मैमनसिंह का पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री० यतीन्द्रमोहन अपने बच्चे के साथ मारा गया। १९ दिसम्बर को विश्वासघात के अपराध में धीरेन्द्र विश्वास की हत्या हुई।

श्री० यतीन्द्रनाथ मुकर्जी का ज़िक्र ऊपर आ चुका है। गत महासमर के दिनों में इसने अपना एक मज़बूत दल बना लिया था। विदेशों से शस्त्रास्त्र मँगाने की तैयारियाँ की गई थीं। परन्तु कई कारणों से इस विषय में सफलता प्राप्त नहीं हुई। पथरियाघाटा में नीरद की हत्या करने के कारण यतीन्द्र को कलकत्ता छोड़ देना पड़ा। वह चन्द साथियों

को लेकर उड़ीसा प्रान्त के बालेश्वर नामक स्थान में जाकर रहने लगा। वहाँ एक दिन उसे ख़बर मिली, कि पुलिस उसका पीछा कर रही है। साथी उस समय वहाँ मौजूद न थे। उन्हें ख़बर देने में कुछ देर हो गई। जब साथी आ गए तो उसने भागने की चेष्टा की। वह महानदी पार करके किसी निर्जन स्थान में निकल जाना चाहता था। परन्तु पुलिस ने घेर लिया। दोनों ओर से गोलियाँ चलीं। कई पुलिस वाले और ग्रामवासी मारे गए। यतीन्द्र अपने साथियों सहित नदी पार करके एक जङ्गल में छिप गया। पुलिस ने आकर चारों ओर से घेर लिया। यतीन्द्र को ख़बर लगी तो उसने तथा उसके साथियों ने निश्चय किया कि जीते जी आत्म-समर्पण नहीं करेंगे। उस समय यतीन्द्र के साथ चित्तप्रिय, नरेन्द्र, मनोरञ्जन और ज्योतिषचन्द्र नाम के चार युवक थे। उधर पुलिस थी, सैकड़ों की संख्या में। कुछ देर के बाद पुलिस की सहायता के लिए घुड़सवारों की एक टोली भी आ पहुँची। इन पाँचों युवकों ने पुलिस वालों का मुक़ाबला किया। पुलिस जलधारा की तरह गोलियाँ चलाने लगी। यतीन्द्र-दल भी मुँहतोड़ उत्तर दे रहा था। अन्त में चित्तप्रिय को गोली लगी और वह धराशायी हुआ। यह देख कर यतीन्द्र मानो और भी उत्साहित हो गया और दोनों हाथों में पिस्तौल लेकर दनादन गोलियाँ छोड़ने लगा। अन्त में घायल होकर गिर पड़ा। थोड़ी देर के बाद दोनों (यतीन्द्र और चित्तप्रिय) मर गए। नरेन्द्र और मनोरञ्जन को अदालत ने फाँसी की सज़ा दी थी। ज्योतिषचन्द्र को आजन्म के लिए कालेपानी की सज़ा दी गई थी, परन्तु बहरामपुर के जेल में ही उसकी मृत्यु हो गई !

इस प्रकार १९०६ से लेकर १९१६ तक केवल बङ्गाल में २१० वैप्लविक अनुष्ठान हुए और १०१ चेष्टाएँ विफल हो गईं। इन तमाम घटनाओं से १,३०८ मनुष्यों का सम्बन्ध था। ३६ मामले चले थे, जिनमें ८४ आदमियों को सज़ा दे दी गई। दस साज़िश के मामले चले थे, जिनसे १९२ आदमियों का सम्बन्ध था। इनमें से ६३ को कड़ी सज़ाएँ दी गई थीं। फ़ौजदारी क़ानून के अनुसार ८२ आदमियों से नेकचलनी के लिए ज़मानत और मुचलके लिए गए थे। अस्त्र-आईन और विस्फोटक पदार्थों को रखने को अपराध में ५९ मामले चले, जिनमें ५८ आदमियों को सज़ाएँ दी गई थीं।

शासन-संस्कार

२० अगस्त सन् १९१७ को इङ्गलैण्ड की पार्लामेण्ट के उद्घाटन के समय सम्राट ने श्रीमुख से कहा कि "भारतवासियों को धीरे-धीरे दायित्व-मूलक शासन-प्रणाली प्रदान करना ही भारत में ब्रिटिश शासन-नीति का उद्देश्य है। यह सुन कर मॉडरेटों को बड़ी ख़ुशी हुई। परन्तु राष्ट्रीय दल अपने आत्म-निर्भरता वाले सिद्धान्त पर डटा रहा। इस कॉङ्ग्रेस का बत्तीसवाँ अधिवेशन कलकत्ते में हुआ था। श्रीमती एनी बेसेण्ट निर्वासन से छुटकारा पा चुकी थीं। राष्ट्रीय-दल वालों ने बड़े उत्साह से उन्हें सभानेत्री निर्वाचित किया। इस साल कॉङ्ग्रेस सोलहों आने राष्ट्रीय दल वालों के हाथ में थी। परन्तु शासन संस्कार की आशा से मॉडरेटों ने भी कॉङ्ग्रेस का साथ दिया था। बड़ा ही उत्साह-पूर्ण अधिवेशन था। सभानेत्री का ऐसा अपूर्व स्वागत हुआ, कि जिसका वर्णन करना मुश्किल है। लोकमान्य तिलक भी इस अधिवेशन में

उपस्थित थे। लखनऊ के १५वें अधिवेशन को छोड़ कर, दूसरे किसी अधिवेशन की प्रतिनिधि-संख्या इससे अधिक नहीं हुई थी।

सम्राट महोदय की उपर्युक्त घोषणा के अनुसार १८ जुलाई, सन् १९१२ को भारत-सचिव और बड़े लाट ने एक रिपोर्ट दाख़िल की। महासमर के समय तो सब्ज़ बाग़ दिखाया गया था, उससे लोग अत्यन्त आशान्वित हो गए थे। कितने ही तो भारत में किसी नवयुग के आने का स्वप्न देख रहे थे। परन्तु उपर्युक्त रिपोर्ट ने उनकी तमाम आशाओं पर पानी फेर दिया। फलतः कॉङ्ग्रेस ने बम्बई में अपना एक ख़ास अधिवेशन करके इस नवीन शासन-संस्कार को एक स्वर से अग्राह्य कर दिया।

इस समय भारत-रक्षा-क़ानून का ख़ूब दौर-दौरा था। अधिकांश विप्लवी जहाँ-तहाँ नज़रबन्द करके रक्खे गए थे, परन्तु विप्लववाद ने देश का पिण्ड नहीं छोड़ा। १९१६ की १६वीं जनवरी को कलकत्ते के मेडिकल कॉलेज के सामने आम रास्ते पर और दिन-दहाड़े एक पुलिस का दरोग़ा मार डाला गया। ३० जुलाई को डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट बसन्त चटर्जी मारा गया। इसके अलावा इसी साल ढाका, सिराजगञ्ज और वाजिदपुर में कई पुलिस-कर्मचारी विप्लववादियों द्वारा मारे गए थे।

१९१७ में बङ्गाल के बचे हुए विप्लववादियों ने आसाम में जाकर आश्रय लिया। पुलिस को ये ख़बर लग गई और गोहाटी में उनका स्थान घेर लिया गया। परन्तु विप्लववादियों ने आत्म-समर्पण नहीं किया। ख़ूब गोलियाँ चलीं और अन्त में कई घायल विद्रोही पुलिस द्वारा पकड़े गए और कई पुलिस की आँखों में धूल डाल कर उसी समय नौ-दो-ग्यारह हो गए। उन्हीं भागने वालों में नलिनी नाम का एक नौजवान

था, जो कई स्थानों में भ्रमण करता हुआ ढाका पहुँचा! पुलिस ने उसका वास-स्थान घेर लिया। नलिनी और उसके साथी तारिणी ने निकल भागने की कोशिश की, परन्तु कामयाब न हुए। तारिणी तो पुलिस की गोली खाकर वहीं ढेर हो गया और नलिनी घायल होने पर भी भाग खड़ा हुआ। परन्तु चोट करारी लग चुकी थी, इसलिए शीघ्र ही पकड़ लिया गया और अस्पताल में जाकर मरा। इस समय विप्लववादियों का दल छिन्न-भिन्न हो गया था। उनके कई दलपति पुलिस द्वारा पकड़ कर नज़रबन्द कर दिए गए थे। कोई सञ्चालन करने वाला न था।

इसके बाद नवीन शासन-संस्कार जारी हुआ। सरकार ने उदारता दिखाई। अधिकांश विप्लववादी छोड़ दिए गए। परन्तु उसके साथ ही महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ कर दिया, इसलिए विप्लववादियों ने अपनी चेष्टा स्थगित कर दी।

रौलट-एक्ट

१९१८ से १९२४ तक राष्ट्रीय अन्दोलन की ख़ासी धूम थी। महासमर के अवसान के बाद भारत-रक्षा क़ानून उठा देने का समय आया। परन्तु राजसत्ता ऐसा करने के लिए तैयार न थी। उसने उसे स्थायी रूप देने के लिए एक कमिटी बैठाई। उसका नाम था, 'रौलट-कमिटी'। कुछ दिनों जाँच-पड़ताल के बाद उसने रिपोर्ट दी कि विप्लव आन्दोलन को निर्मूल करने के लिए भारत-सरकार के हाथ में एक निरङ्कुश क्षमता की अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु देश ऐसी निरङ्कुश क्षमता देने के लिए तैयार न था! फलतः सारे देश में तीव्र असन्तोष

का सञ्चार हुआ। १९१८ में काँग्रेस का तैंतीसवाँ अधिवेशन दिल्ली में हुआ। पण्डित मदनमोहन मालवीय सभापति थे। रौलट कमिटी की रिपोर्ट का घोर विरोध हुआ, परन्तु सरकार ने इसकी कोई परवाह न की। कौन्सिल के भारतीय सदस्य भी चिल्लाते ही रह गए, परन्तु क़ानून पास ही कर डाला गया। सरकार के इस जनमत की उपेक्षा का जनता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। सारे देश ने एक स्वर से इसकी निन्दा की। महात्मा गाँधी ने इस आन्दोलन के सूत्रधार के रूप में खड़े होकर घोषणा की कि "रौलट-क़ानून भारतवासियों के न्याय-सङ्गत और मनुष्यों के जन्मसिद्ध स्वाभाविक अधिकारों का बाधक है। इसलिए जब तक क़ानून उठा न लिया जाएगा, तब तक हम लोग सम्मिलित भाव से इस अपमानजनक और असङ्गत क़ानून का विरोध करते रहेंगे। हम लोग उपद्रवहीन नीति के अवलम्बन द्वारा इस क़ानून में बाधा प्रदान करेंगे।" देश ने इस घोषणा का अन्तःकरण से समर्थन किया और असहयोग आन्दोलन की नींव पड़ी। भारत ने एक सम्पूर्ण नवीन राजनैतिक मार्ग का अवलम्बन किया। इस घोषणा के अनुसार निश्चय हुआ कि आगामी ६ अप्रैल को सारे देश में हड़ताल की जावेगी। परन्तु फिर यह तारीख़ बदल कर १३ अप्रैल कर दी गई। इधर दिल्ली वालों ने ६ अप्रैल को ही हड़ताल कर दी। क्योंकि उन्हें तारीख़ बदली जाने की सूचना ठीक समय पर नहीं मिल सकी थी। अस्तु।

जालियाँवाले बाग़ का हत्या-काण्ड

दिल्ली की पुलिस ने यह आकस्मिक भीड़-भाड़ देख कर उस पर गोली चला दी। इससे लोग और भी असन्तुष्ट हुए। प्रतिवाद-स्वरूप

अमृतसर के जलियाँवाले बाग़ में एक सभा हुई। उस समय सर माईकेल ओडायर बहादुर पञ्जाब के गवर्नर थे। उनकी आज्ञा और परामर्श से जनरल डायर नाम के एक फ़ौजी अफ़सर ने जलियाँवाले बाग़ की सभा पर गोलियों की वर्षा कर दी। कितने ही मारे गए और कितने ही घायल हुए। सारे देश में एक कुहराम-सा मच गया। जनरल डायर के इस अमानुषिक काण्ड से देशवासी इतने निराश हुए कि उन्हें प्रतिवाद, प्रस्ताव और वैध आन्दोलन पर विश्वास ही नहीं रहा।

इस साल कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में हुआ। सभापति का आसन स्वनामधन्य स्वर्गवासी पण्डित मोतीलाल जी नेहरू ने ग्रहण किया। इस अधिवेशन से पहले ही सरकार द्वारा नवीन शासन-संस्कार की घोषणा हो चुकी थी, इसलिए महात्मा गाँधी और पण्डित मदनमोहन मालवीय की सलाह से कॉङ्ग्रेस ने निश्चय किया, कि यद्यपि यह शासन-संस्कार सन्तोषजनक नहीं है, तथापि इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। महात्मा जी को आशा थी कि इङ्गलैण्ड ओडायरी अत्याचार का प्रतिकार करेगा, इसलिए उनकी जाँच के लिए एक निरपेक्ष कमिटी बैठाने की माँग भी पेश की गई। परन्तु सरकार ने इस पर भी कान नहीं दिया। अन्त में जब कमिटी के लिए चारों ओर से घोर पुकार हुई तो 'हण्टर कमिटी' बैठाई गई। महात्मा गाँधी आदि कई भारतीय नेता भी इस कमिटी में शामिल हुए। सरकार से कहा गया, कि पञ्जाब के कई नेता, जो जनरल डायर के 'मार्शल-लॉ' के कारण जेलों में हैं, उनकी भी गवाही ली जाए। परन्तु सरकार ने इसे स्वीकार नहीं किया। इधर हण्टर साहब की कमिटी निरपेक्षिता को बालाएताक़ रख

कर जाँच करने में लगी। इसलिए कॉङ्ग्रेसी नेता कमिटी से अलग हो गए और उन्होंने स्वतन्त्र रूप से जाँच आरम्भ की। डायरी और ओडायरी अत्याचार पर्दाफ़ाश हो गया। परन्तु इङ्गलैण्ड की पार्लामेण्ट ने अत्यन्त निर्विकार चित्त से इस अमानुषिक अत्याचार का समर्थन कर दिया।

असहयोग आन्दोलन

महासमर के समय इङ्गलैण्ड के प्रधान - मन्त्री महोदय ने मुसलमानों को आश्वासन प्रदान किया था, कि लड़ाई के कारण उनकी खिलाफ़त को कोई नुक़सान नहीं पहुँचाया जाएगा। तुर्क साम्राज्य में भी किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होगा। किन्तु महासमर समाप्त होते ही वे अपनी प्रतिश्रुति को एकदम भूल गए। इसलिए भारतीय मुसलमानों में भी तीव्र असन्तोष का सञ्चार हुआ। न्यायान्तर न देख कर, महात्मा गाँधी ने असहयोग का भेरी निनाद किया। १९२० के सितम्बर में कलकत्ते में कॉङ्ग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। पञ्जाब-केसरी स्व० लाला लाजपतराय उसके सभापति बनाए गए। देशबन्धु दास, श्री० विपिनचन्द्र पाल और पण्डित मदनमोहन मालवीय-जैसे धुरन्धर नेताओं के विरोध करने पर भी असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव पास हो गया। महात्मा गाँधी की विजय हुई।

इसके कुछ दिन बाद अर्थात् दिसम्बर में कॉङ्ग्रेस का नियमित अधिवेशन नागपुर में हुआ। जो देशबन्धु कॉङ्ग्रेस के विशेष अधिवेशन के समय असहयोग के विरोधी थे, उन्होंने ही वहाँ असहयोग-सम्बन्धी

प्रस्ताव उपस्थित किया। बाइस हज़ार जनता के सामने कॉङ्ग्रेस की ओर से घोषणा की गई कि—

"सर्व प्रकार वैध और शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा अपने बाहुबल से स्वराज्य लाभ करना ही कॉङ्ग्रेस का उद्देश्य है।"

बड़े धूमधाम से असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ। विलायती वस्तुओं का बहिष्कार, स्कूल-कॉलेजों का बहिष्कार और अदालतों के बहिष्कार की धूम मच गई। हज़ारों विद्यार्थी कॉलेज और स्कूल छोड़ कर असहयोग की पताका के नीचे आ गए। तिलक स्वराज-फ़ण्ड में कई लाख रुपए आए। विलायती वस्त्रों की होलियाँ भी ख़ूब जलीं। सरकार घबरा उठी। बड़े लाट ने कहा, मैं तो किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया हूँ। समस्त नेता पकड़ कर जेलों में ठेल दिए गए। प्रायः साल भर तक यही हालत रही।

१९२१ में, स्व० हकीम अजमल खाँ की अध्यक्षता में कॉङ्ग्रेस का पैंतीसवाँ अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ। इस कॉङ्ग्रेस के सभापतित्व के लिए स्व० देशबन्धु दास चुने गये थे, परन्तु सरकार ने उन्हें पहले ही पकड़ कर छः महीने के लिए जेल भेज दिया था, इसलिए हकीम साहब सभापति बनाए गए। इस कॉङ्ग्रेस में असहयोग और शान्तिपूर्ण क़ानून-भङ्ग का प्रस्ताव फिर से स्वीकार किया गया था। कॉङ्ग्रेस के सभी उत्साही कार्यकर्ता गिरफ़्तार हो चुके थे, इसलिए महात्मा गाँधी जी राष्ट्रीय आन्दोलन के एक-मात्र कर्णधार बना दिए गए। मौ० हसरत मोहानी ने इस कॉङ्ग्रेस में एक पूर्ण स्वतन्त्रता-सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित किया था। परन्तु यह स्वीकृत नहीं हुआ।

इस अहमदाबादी अधिवेशन के बाद सारे देश में 'क़ानूनतोड़' आन्दोलन आरम्भ हुआ। महात्मा जी करबन्दी के लिए बारदोली ताल्लुक़े को जगाने में लगे। वह बारदोली द्वारा असहयोग की समस्त विधियों की पूर्ति करा कर सारे भारतवर्ष के लिए एक आदर्श खड़ा करना चाहते थे। परन्तु इसी समय गोरखपुर के चौरीचौरा नामक स्थान में एक भयङ्कर दुर्घटना हो गई। पुलिस के अत्याचारों से ऊब कर वहाँ के अधिवासियों ने अपना संयम खो दिया और ईंट का जवाब पत्थर से देने पर उतारू हो गए। पुलिस का एक थाना जला दिया गया और कुछ कर्मचारी मार डाले गये। महात्मा जी का सारा सङ्कल्प व्यर्थ हो गया। उन्होंने आन्दोलन को अनिर्दिष्ट काल के लिए स्थगित कर दिया!

इसके बाद नेताओं ने निश्चय किया कि देश शान्तिपूर्ण प्रतिरोध आन्दोलन के लिये प्रस्तुत है या नहीं, इस बात की जाँच के लिए एक कमिटी बनाई जाय। वही हुआ, कमिटी बन गई। जाँच आरम्भ हुई। कई महीने के बाद उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। कमिटी ने निश्चय किया कि देश तैयार नहीं है, इसलिए कौंसिलों पर अधिकार करके अन्दरूनी आन्दोलन आरम्भ किया जाए। देशबन्धु दास आदि और कई नेताओं ने भी जेल से निकलने पर इसी मत का अवलम्बन किया। इधर महात्मा गाँधी राजद्रोह प्रचार के अपराध में कई वर्षों के लिए जेल जा चुके थे। राष्ट्रवादियों में दो विचार-धाराएँ बह रही थीं। एक दल कौंसिल-प्रवेश का पक्षपाती बना और दूसरा अपरिवर्तनवादी (No-changer) कहलाया।

स्वराज-पार्टी का आविर्भाव

१९२२ में कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन गया में हुआ था। सभापति के आसन पर स्व० देशबन्धु सी० आर० दास विराजमान थे। दोनों दलों में तुमुल द्वन्द्व चला। परन्तु अन्त में कौन्सिल विरोधियों की ही जीत रही। श्री० दास कौन्सिलों में जाने के पक्ष में थे। इसलिए कॉङ्ग्रेस के सभापतित्व से इस्तीफ़ा देकर उन्होंने पं० मदनमोहन मालवीय आदि के साथ अपना एक अलग दल बनाया और उसका नाम रक्खा गया 'स्वराज-दल'। इस दलबन्दी के कारण कॉङ्ग्रेस का कार्य ढीला पड़ गया। कुछ लोगों ने सुलह-समझौते की चेष्टा की, परन्तु उसका कोई फल नहीं हुआ।

गया के बाद कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन दिल्ली में हुआ। ताज़ा-ताज़ा जेलख़ाने से आए हुए मौलाना मुहम्मदअली ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि बाधा प्रदान करने के लिए स्वराज दल कौन्सिलों में जा सकता है। प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया। स्वराज-दल ने बड़े उत्साह से कौन्सिलों में जाने की तयारियाँ आरम्भ कर दीं।

पुनः विप्लव-काण्ड

असहयोग काल में सारा देश स्वतन्त्रता-आन्दोलन में लगा था, इसलिए विप्लवपन्थियों ने अपना आन्दोलन बन्द कर रक्खा था। परन्तु असहयोग के विफल होते ही, उन्होंने फिर अपना कार्य आरम्भ कर दिया। वे एक दिन (ता०-३ अगस्त, १९२३) शाखारी टोला (कलकत्ता) के पोस्ट ऑफ़िस में पहुँचे और पिस्तौल दिखा कर ख़ज़ाना लूटने की चेष्टा की। परन्तु कुछ हाथ न लगा। अन्त में पोस्ट-मास्टर

को मार कर वे वहाँ से चलते बने। इसी सम्बन्ध में वीरेन्द्र नाम का एक नवयुवक गिरफ़्तार हुआ था और उसे फाँसी की सज़ा दी गई। परन्तु अन्त में सरकार ने सज़ा बदल कर आजीवन के लिए उसे काला-पानी भेजा था। इस हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में एक षड्यन्त्र केस भी चलाया गया था। परन्तु अन्त में सभी अभियुक्त मुक्त कर दिए गए थे।

१२ जनवरी को गोपीमोहन साहा नाम के एक विद्रोही ने, कलकत्ता के चौरङ्गी रोड पर मि० डे नाम के एक अङ्गरेज़ को मार डाला था। यह मारने गया था कलकत्ते के पुलिस-कमिश्नर सर चार्ल्स टेगार्ट को, परन्तु धोखे में पड़ गया। इसे फाँसी की सज़ा दी गई थी।

गोपीमोहन की फाँसी के सम्बन्ध में बङ्गाल के कॉङ्ग्रेसियों में एक प्रबल मतभेद उठ खड़ा हुआ था। सिराजगञ्ज में प्रादेशिक राजनीतिक कॉन्फ्रेन्स का जलसा था। तरुण-दल चाहता था कि गोपीमोहन की देश-भक्ति की प्रशंसा की जाए। परन्तु अहिंसावादी दल इसके विरुद्ध था। अन्त में प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। इस पर एङ्गलो-इण्डियन अख़बार अत्यन्त नाराज़ हुए। स्व० महात्मा गाँधी ने भी एक लेख लिख कर इस प्रस्ताव की कड़ी निन्दा की थी। ख़ैर दूसरे साल जब फ़रीद-पुर में उक्त प्रादेशिक कॉन्फ्रेन्स का अधिवेशन हुआ, तो वह प्रस्ताव वापस ले लिया गया।

२१ जुलाई, १९२४ को कलकता के मिर्ज़ापुर स्ट्रीट में एक पिस्तौल धारी युवक गिरफ़्तार किया गया। पूछने पर उसने बताया कि इसी स्ट्रीट के शिशिरकुमार नाम के एक दूकानदार ने यह पिस्तौल मुझे दिया है। पुलिस ने उस दूकान की तलाशी ली, परन्तु कुछ हाथ नहीं लगा।

दूसरे दिन उस दूकान पर एक बम गिरा और एक दूकानदार मर गया। पुलिस ने शान्तिलाल नाम के एक आदमी को सन्देह में गिरफ़्तार किया और अन्त में वह छोड़ दिया गया। परन्तु छूटने के कई दिन बाद बेलियाघाटा के स्टेशन के पास रेलवे लाइन पर उसकी लाश पाई गई थी।

१९२३ में विप्लवपन्थियों ने चटगाँव में एक दूकान से १७,००० रुपए लूट लिए। एक दरोग़ा ने इस सम्बन्ध में, एक आदमी को गिरफ़्तार किया था, जो कुछ दिनों बाद किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा मार डाला गया था।

१९२४ में कलकत्ता और फ़रीदपुर में पुलिस ने दो बम बनाने के कारख़ानों का पता लगाया था। यह देख कर बङ्गाल की सरकार ने एक ऑर्डिनेन्स जारी किया और उसके अनुसार ६३ आदमी नज़रबन्द किए गए। इसके सिवा सन् १९२२ के तीसरे रेगुलेशन के अनुसार भी १९ आदमी नज़रबन्द थे। इनमें श्री० सुभाषचन्द्र बोस, श्री० सत्येन्द्रचन्द्र मित्र और श्री० अनिलवरण राय भी शामिल थे।

१९२५ में कलकत्ते के पास दक्षिणेश्वर नामक स्थान में एक बम का कारख़ाना पकड़ा गया था। इसी सम्बन्ध में एक षड्यन्त्र का मामला भी चला था, जिसमें कई नवयुवकों को कई साल की सख़्त सज़ाएँ दी गई थीं।

जेल में हत्या

दक्षिणेश्वर बम विभ्राट के क़ैदी अलीपुर के प्रेज़िडेन्सी जेल में थे। २८ मई, सन् १९२८ को रायबहादुर भूपेन्द्रनाथ चटर्जी नाम का

एक पुलिस अफ़सर वहाँ किसी काम के लिए गया था। कैदियों ने उसे वहीं मार डाला। इस मामले में दो अपराधी फाँसी पर लटकाए गए और बाक़ी आठ आजीवन के लिए कालेपानी भेजे गए थे।

असहयोग का अन्त

१९१४ में कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन बेलगाँव में हुआ था। उस समय महात्मा गाँधी जेलख़ाने से आ गए थे। उन्होंने ही सभापति का आसन सुशोभित किया। इस कॉङ्ग्रेस में असहयोग-नीति स्थगित की गई और स्वराजियों की नीति बहाल रक्खी गई, अर्थात् उन्हें कॉङ्ग्रेस के नाम पर कौन्सिलों में जाने का अधिकार प्राप्त हो गया। इसके बाद महात्मा गाँधी ने अपनी सारी शक्ति चर्खा और खद्दर के प्रचार में लगा दी।

उन दिनों भारत के प्रधान-मन्त्री लॉर्ड बर्कनहेड थे। उनके और स्वराज-पार्टी के साथ समझौते की बातचीत चल रही थी। परन्तु अन्त में लॉर्ड बर्कनहेड ने कोरा जवाब दे दिया। देशबन्धु इससे बहुत हताश हुए और इस घटना के कुछ दिन बाद ही दार्जिलिङ्ग में उनकी मृत्यु हो गई। १९२५ में कानपुर में और १९२६ में गोहाटी में कॉङ्ग्रेस के अधिवेशन हुए, पर इन दिनों अधिवेशनों में कोई विशेष उल्लेख योग्य बात नहीं हुई। केवल हिन्दू-मुसलमानों का विरोध मिटाने की कुछ चेष्टाएँ हुई थीं। १९२७ में मि० जिन्ना ने मेल-मिलाप के लिए मुसलमानों की ओर से चौदह शर्तें पेश की थीं, तब से आज तक वही इस सम्बन्ध में कॉङ्ग्रेस का आलोच्य विषय है।

साइमन कमीशन

मॉण्टेगू चेम्सफ़र्ड रिफ़ॉर्म जारी करने के समय कहा गया था, कि इस विधान के अनुसार कार्य करके अगर भारतवासी अपनी योग्यता का परिचय देंगे, तो दस वर्ष के बाद इसकी दूसरी क़िश्त भी उन्हें दी जायगी। इस वादे को पूरा करने के लिए इङ्गलैण्ड की पार्लामेण्ट ने साइमन कमीशन की नियुक्ति की। उद्देश्य था, भारतवासियों की योग्यता की जाँच करना। भारतवासियों ने इस कमीशन का एक स्वर से बहिष्कार किया। जहाँ-जहाँ कमीशन गया, वहाँ-वहाँ लोगों ने काले झण्डे और मातमी जुलूस निकाल कर उसका निरादर किया। अन्त में सब दल के भारतीय राजनीतिज्ञों के सहयोग से एक शासन-विधान तैयार किया गया। इसके लिए स्वर्गवासी पण्डित मोतीलाल जी नेहरू की अध्यक्षता में एक 'नेहरू कमिटी' बिठाई गई थी। उसने एक विधान तैयार किया, जो कलकत्ते की कॉङ्ग्रेस में स्वीकृत हुआ था। इस कॉङ्ग्रेस के सभापति स्वयं पण्डित जी थे। इससे वहीं सर्वदल सम्मेलन भी हुआ था, उसमें मुसलमानों तथा सिक्खों ने इस विधान का विरोध किया था। क्योंकि वे अपने लिए कुछ विशेष अधिकार चाहते थे और हिन्दू उन विशेष अधिकारों के विरोधी थे। ख़ैर, कलकत्ते की यह कॉङ्ग्रेस विशेष महत्वपूर्ण थी। इसमें प्रस्ताव पास हुआ कि अगर साल भर के अन्दर सरकार नेहरू रिपोर्ट के विधानानुसार भारत को औपनिवेशिक स्वराज न प्रदान करेगी, तो अगले साल की १ ली जनवरी को कॉङ्ग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता को अपना ध्येय बनाएगी।

स्वतन्त्रता की घोषणा

परन्तु सरकार ने इस प्रस्ताव की ओर ध्यान नहीं दिया। वह साइमन कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार ही कार्य करना चाहती थी। बड़े लाट साहब ने यह कहा भी था कि भारत को औपनिवेशिक स्वराज प्रदान करना ही पार्लमेंट का उद्देश्य है। परन्तु वह कब तक मिलेगा, यह नहीं कहा जा सकता।

इसके बाद कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने सभापति का आसन सुशोभित किया। कलकत्ता कॉङ्ग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार गत ३१ दिसम्बर १९३० की आधी रात के बाद कॉङ्ग्रेस ने अपना ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता विघोषित कर दिया। यह देखकर सरकार कुछ घबराई। अधिकारियों ने इस प्रस्ताव की हँसी उड़ाई, धमकियाँ दीं और अन्त में राउण्ड-टेबुल कॉन्फ्रेन्स की चर्चा आरम्भ हुई। इधर कॉङ्ग्रेस ने सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया।

कर्ज़न वेली की हत्या

इस लेख के आरम्भ में हम लन्दन में एक इण्डिया हाउस नाम की संस्था की स्थापना का ज़िक्र कर चुके हैं। १ जुलाई, सन् १९०९ को इस हाउस के सदस्य श्री० मदनलाल ढींगरा ने ब्रिटिश सरकार के इण्डिया-हाउस के पोलिटिकल ए० डी० सी० कर्नल सर विलियम कर्ज़न वेली को गोली से मार दिया। इसे फाँसी की सज़ा दी गई थी। उसने अपने अदालती बयान में कहा था, कि भारतीय नवयुवकों को जिस अमानुषिक ढङ्ग से निर्वासन-दण्ड और फाँसी आदि की सज़ाएँ दी जा रही हैं, उसके सामान्य प्रतिवाद-स्वरूप मैंने जान-बूझ कर एक

अङ्गरेज़ का रक्त बहाया है। इसका जन्म एक पञ्जाबी क्षत्रिय-वंश में हुआ था। यहाँ से बी० ए० पास करके बैरिस्टरी पास करने वह इङ्गलैण्ड गया हुआ था।

कुछ और विप्लवी कार्य

नासिक के श्री० विनायक दामोदर सावरकर के भाई श्री० गणेश दामोदर सावरकर को आजीवन द्वीपान्तर की सज़ा दी गई। नासिक के मैजिस्ट्रेट मि० जैकसन ने इन्हें दौरा सुपुर्द किया था। एक दिन मि० जैकसन किसी भोज-सभा में बैठे थे, वहीं किसी ने उन्हें गोली मार दी। इस घटना के बाद नासिक षड्यन्त्र नाम का एक विराट मामला चला। ३८ अभियुक्तों में से २७ को सज़ाएँ हुईं, जिनमें तीन मि० जैकसन की हत्या करने के अपराध में फाँसी पर लटकाए गए।

इसी साल के नवम्बर महीने में बड़े लाट साहब अपनी लेडी साहबा के साथ अहमदाबाद गए तो उनकी गाड़ी में एक बम फेंका गया। परन्तु वह फटा नहीं, इसलिए लाट-दम्पति सही-सलामत बच गए।

संयुक्तप्रान्त में विप्लव का श्रीगणेश

१९०७ में इलाहाबाद से 'स्वराज' नाम का एक पत्र निकलता था। यह क्रान्ति का प्रचारक था। इसी के जन्मकाल से संयुक्त-प्रान्त में भी क्रान्तिकारी भावों का प्रचार आरम्भ हुआ। शान्तिनारायण नाम का एक पञ्जाबी युवक इस पत्र का प्रवर्तक था। मुज़फ़्फ़रपुर हत्याकाण्ड के बाद तीव्र लेख प्रकाशित करने के कारण उसे कठोर कारावास की सज़ा दी गई थी। इसके बाद आठ सम्पादकों ने मिल कर इस पत्र का सम्पादन आरम्भ किया, जिनमें तीन को कारावास

की सज़ा दी गई थी। सन् १९१० में प्रेस-क़ानून के कारण यह अख़बार सदा के लिए बन्द हो गया।

१९०८ में श्री० होतीलाल वर्मा ने अलीगढ़ के छात्रों में राजद्रोह का प्रचार किया था, इसलिए उन्हें दस साल तक कालापानी निवास का दण्ड दिया गया।

बनारस षड्यन्त्र

इसके बाद बनारस षड्यन्त्र की बारी आई। कई पञ्जाबी नवयुवकों ने संयुक्त प्रान्त में विप्लव आन्दोलन आरम्भ किया था। परन्तु उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हुई। इसके बाद बङ्गाली विप्लववादियों का आविर्भाव हुआ और वे ही यहाँ कुछ सफल भी हुए। सन् १९०८ में श्री०शचीन्द्र-नाथ सान्याल ने काशी के बङ्गाली टोले में एक 'अनुशीलन समिति' की स्थापना की। १९१३ तक इस संस्था का कार्य निर्विघ्न रूप से चलता रहा। परन्तु उसके बाद पारस्परिक मतभेद के कारण श्री० शचीन्द्र ने 'युवक समिति' नाम की एक दूसरी संस्था का निर्माण किया। विप्लववाद का प्रचार करना ही इस समिति का भी उद्देश्य था। शचीन्द्र ने कलकत्ते के विप्लववादियों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर अपने उद्देशय की पूर्ति आरम्भ की। सन् १९१४ में श्री० रासबिहारी बोस ने कलकत्ते से आकर इस संस्था का सञ्चालन-भार ग्रहण किया। श्री० रासबिहारी दिल्ली और लाहौर षड्यन्त्र के फ़रार अभियुक्त थे। परन्तु पुलिस की आँखों में धूल झोंक, निर्विघ्न रूप से काशी में रहने लगे। इसी समय महाराष्ट्र के विप्लवी युवक श्री० विष्णुगणेश पिङ्गले से रासबिहारी की जान-पहचान हुई। श्री० शचीन्द्र अपने उद्देश्य

पूर्ति के लिए पञ्जाब चला गया और अमेरिका की ग़दर पार्टी से सम्बन्ध स्थापित कर भारतव्यापी विप्लव की तैयारी करने लगा। इधर रास-बिहारी भारत छोड़ कर विदेशों में कार्य करने के लिए चला गया। यहाँ का काम श्री० शचीन्द्र और श्री० नगेन्द्रनाथ दत्त (जो विप्लवी दल में 'गिरिजा दादा' के नाम से प्रसिद्ध था) सँभालते रहे। परन्तु कुछ दिनों के बाद ही बनारस षड्यन्त्र-केस में ये लोग पकड़ लिए गए। इस मामले में बहुत से विप्लववादियों को सज़ाएँ हुई थीं और इसके बाद जब 'मॉण्टेगू चेम्सफ़र्ड' शासन संस्कार को प्रवर्तन हुआ तो सरकार ने मेहरबानी करके इन्हें छोड़ दिया था। श्री० नगेन्द्रनाथ का जेलख़ाने में ही देहान्त हो गया।

असहयोग आन्दोलन की विफलता के बाद विल्पवपन्थियों ने फिर सिर उठाया। श्री० शचीन्द्र आदि ने फिर एक नए दल का सङ्गठन कर डाला। इस दल का प्रधान केन्द्रस्थान लखनऊ बनाया गया। देश ने इस का पहले-पहल परिचय प्राप्त किया था, ९ अगस्त सन् १९२५ को। उसी दिन अवध रुहेलखण्ड रेलवे के काकोरी स्टेशन पर रेलगाड़ी रोक कर सरकारी ख़ज़ाना लूटा गया था। इस समय कई यात्रियों की हत्याएँ भी हुईं। फिर काकोरी षड्यन्त्र-केस चला। श्री० राम-प्रसाद 'बिस्मिल', राजेन्द्र लाहिड़ी, श्री रौशनसिंह, श्री० अशफ़ाक़ उल्लाह को फाँसी की सज़ा दी गई; श्री० शचीन्द्र तथा अन्यान्य कई व्यक्तियों को आजीवन कालापानी तथा जेल की सज़ाएँ दी गईं।

मध्यप्रदेश

१९१५ में मध्यप्रदेश में भी विप्लव की चेष्टा की गई थी, परन्तु

सफलता नहीं प्राप्त हुई। श्री० रासबिहारी ने अपने साथी श्री० नलिनी-मोहन सान्याल को सिपाहियों में राजद्रोह का प्रचार करने के लिए जबलपुर भेजा परन्तु कोई सफलता नहीं प्राप्त हुई। ढाका के श्री० नलिनीकान्त घोष और मध्य प्रान्त के श्री० विनायकराव कापले ने भी वहाँ विप्लव-प्रचार की चेष्टा की थी। श्री० कापले ने एक छोटा-सा दल भी तैयार कर लिया था, परन्तु वह पकड़ लिया गया और कापले नौ-दो-ग्यारह हो गए। सन् १९१८ की ९ फ़रवरी को लखनऊ में किसी ने कापले को गोली मार दी। लोगों का अनुमान है कि सम्भवतः इसने अपने दल वालों के साथ विश्वासघात किया था, इसी से मार डाला गया।

बिहार में चेष्टा

बिहार में भी श्री० अर्जुनलाल सेठी, मोतीचन्द्र माणिकचन्द्र, जयचन्द्र और ज़ोरावरसिंह ने विप्लव-प्रचार की चेष्टा की थी। परन्तु कोई सफलता नहीं मिली। १९१३ में श्री० शचीन्द्र आदि ने बाँकीपुर में एक शाखा समिति की स्थापना की थी। बिहार नेशनल कॉलेज का श्री० बङ्किमचन्द्र मित्र इस शाखा समिति का सञ्चालक था, परन्तु अन्त में वह बनारस षड्यन्त्र में पकड़ लिया गया, इसलिए बाँकीपुर की शाखा समिति टूट गई। इसके बाद डिफ़ेन्स ऑफ़ इण्डिया एक्ट या 'भारत-रक्षा क़ानून' का जन्म हुआ। इसलिए विप्लववाद दुर्बल हो गया।

मद्रास का विप्लव-आन्दोलन

मद्रास में विप्लव आन्दोलन का सूत्रपात पहले-पहल सन् १९०८ में हुआ था। श्री० सुब्रह्मण्य शिव और श्री० चिदम्बरम् पिले ने पराधीनता के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन किया। ९ मार्च को श्री० पिले ने तिन्नेवेली में

एक गर्मागरम भाषण दिया था, इसलिए वे श्री० सुब्रह्मराय के साथ पकड़ लिए गए। इन गिरफ़्तारियों से तिन्नेवेली की जनता बेतरह बौखला उठी। कई पुलिसवालों को पीटा, सरकारी दफ़्तरों में आग लगा दी और म्युनिसिपैलिटी का कार्यालय भस्म कर दिया गया। अन्त में बहुत से आदमी पकड़े गए और २७ को कड़ी सज़ाएँ दी गईं।

१९०८ में किसी ने मद्रास से 'इण्डिया' नाम का एक अख़बार निकाला। यह राजद्रोह का प्रचारक समझा गया और इसके सञ्चालक श्री० श्रीनिवास आयङ्गर को सज़ा दी गई। इसके बाद 'इण्डिया' का छापाख़ाना पॉण्डीचेरी चला गया। एम० पी० तिरुमल नाम का एक नवयुवक इस छापेख़ाने में काम करता था। वह कुछ दिन के बाद लन्दन के श्री० श्यामजी कृष्णजी के इण्डिया हाउस में चला गया और मद्रास के विप्लववादियों से सम्बन्ध स्थापित किया। उन दिनों नील-कण्ठ ब्रह्मचारी और शङ्कर कृष्ण अय्यर मद्रास में विप्लववाद का प्रचार कर रहे थे। सन् १९१० में वैञ्ची अय्यर नाम का एक और युवक इनके साथ मिल गया। इसी साल के दिसम्बर में वी० वी० एम० अय्यर नाम का एक नवयुवक लन्दन के इण्डिया हाउस से भारत आया और पॉण्डिचेरी में एक गुप्त समिति की स्थापना करके नवयुवकों को पिस्तौल चलाने की शिक्षा प्रदान करने लगा। थोड़े दिनों के बाद मद्रास का वैञ्ची अय्यर भी उसी के साथ जा मिला।

१९११ की १७वीं जून को इन दोनों युवकों ने तिन्नेवेली के मैजिस्ट्रेट की हत्या की। इस सम्बन्ध में एक तिन्नेवेली षड्यन्त्र-केस चला और ९ आदमियों को सज़ाएँ दी गईं।

श्रीराम राजू

मद्रास के विप्लवपन्थियों में श्रीराम राजू का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह गोदावरी ज़िले का रहने वाला था। थोड़ा सा पढ़ लिख कर इसने सन्यास ले लिया और विगत असहयोग आन्दोलन के दिनों में विज़गापट्टम और गोदावरी के ज़िलों में घूम-घूम कर शराब के विरुद्ध प्रचार करता रहा और पञ्चायतें स्थापित करता रहा। सन् १९२२ में अफ़वाह उड़ी कि राजू विप्लववादी है और विप्लव करने के लिए अपना एक दल बना रहा है। पुलिस ने उसे गिरफ़्तार किया, परन्तु अन्त में प्रमाणाभाव के कारण छोड़ दिया गया।

गोदावरी एजेन्सी में एक तहसीलदार रहता थो। वह तहसीलदार भी था और ठीकेदार भी। सरकार कुलियों को रोज़ाना छः आना मज़दूरी दिया करती थी, परन्तु तहसीलदार साहब उसमें चार आने अपने पॉकेट में रख लेते और दो आने कुलियों को देते। राजू को तहसीलदार की इस बेईमानी की ख़बर लगी, वह इसके प्रतिकार का उपाय सोचने लगा। शीघ्र ही एक दल तैयार हुआ और उसका उद्देश्य भी तहसीलदार से प्रतिशोध लेने की सीमा का उल्लङ्घन कर गया। राजू ने सशस्त्र विद्रोह की तैयारी आरम्भ कर दी। गूदमगिरि की गहन गुफ़ाओं में एक गुप्त सङ्घ की स्थापना हुई और पुलिस-थानों पर आक्रमण करके बहुत से हथियार आदि संग्रहीत हुए। सरकार की पुलिस राजू के तलाश में लगी। छः बार राजू-दल से पुलिस का प्रत्यक्ष-सङ्घर्ष हुआ। कई सङ्घर्ष तो बड़े ही भीषण हुए। पेदाभोला नामक ग्राम के पास जो भीषण सङ्घर्ष हुआ था, उसमें सरकार के दो अङ्गरेज़

कर्मचारी खेत रहे और कई घायल हुए। परन्तु राजू बेदाग़ निकल गया। सन् १९२४ में सरकारी सेना दल ने एकाएक आक्रमण करके राजू की सेना को हरा दिया। सरकारी इश्तहार से पता चला की राजू मारा जा चुका है।

पञ्जाब का विप्लव-आन्दोलन

जिस तरह बङ्गाल में बङ्ग-विच्छेद के कारण विप्लव आन्दोलन की सृष्टि हुई थी, उसी तरह पञ्जाब में चनाब नदी के किनारे के उपनिवेश के कारण विप्लव आन्दोलन का आविर्भाव हुआ था। इस आन्दोलन के नेता स्वर्गवासी लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह थे। सरकार ने इन दोनों नेताओं को बिना विचार निर्वासित किया। परन्तु आन्दोलन बन्द नहीं हुआ। छः महीने के निर्वासन के बाद सरदार साहब मुक्त कर दिए गए। इसके बाद उन्होंने अपने भाई सरदार किशनसिंह (सरदार भगतसिंह के पिता) और कविवर लालचन्द्र 'फ़लक' को साथ लेकर तुमुल आन्दोलन आरम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ, कि सरकार की पुलिस उनके पीछे पड़ गई। यह देख कर सरदार अजीतसिंह तो फ़ारस चले गए; परन्तु सरदार किशनसिंह और लाला लालचन्द्र पकड़ लिए गए। इन दोनों सज्जनों पर राजद्रोह-प्रचार का मामला चला था और कठिन कारावास की सज़ा दी गई थी।

लाला हरदयाल

लाला हरदयाल पञ्जाब विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट थे। सरकार से वज़ीफ़ा पाकर ये शिक्षा प्राप्त करने के लिए ऑक्सफ़र्ड गए। परन्तु पाश्चात्य शिक्षा पर उनकी श्रद्धा नहीं हुई। इसलिए ऑक्सफ़र्ड से लौट कर

हिन्दुस्तान चले आए। यहाँ उन दिनों स्वदेशी आन्दोलन की धूम थी। लाला जी ने इस आन्दोलन में बड़े ज़ोरों से भाग लिया। विदेशी बहिष्कार और जातीय भावों का प्रचार करने लगे। इसके साथ ही सन् १९०८ में उन्होंने अपनी एक पार्टी बना डाली तथा धीरे-धीरे विप्लव-वाद का प्रचार करने लगे। परन्तु कुछ दिनों के बाद ही उन्हें मालूम हुआ कि इस प्रकार के काम देश की अपेक्षा विदेशों में रह कर अच्छी तरह किया जा सकता है, इसलिए पार्टी का काम श्री० दीनानाथ और श्री० अमीरचन्द को सौंप कर वे स्वयं अमेरिका चले गए। अन्त में कुछ दिनों पार्टी का काम बङ्गाल के विख्यात विप्लवी श्री० रासबिहारी बोस ने सम्भाला था। अमेरिका जाकर लाला हरदयाल ने जो विप्लव-सम्बन्धी अनुष्ठान किया था, उसका उल्लेख हम आगे चल कर करेंगे।

लाला हरदयाल और उनके बाद श्री० रासबिहारी के विदेश चले जाने के बाद भी पार्टी का प्रचार-कार्य चलता रहा था। दिसम्बर सन् १९१५ में भारत के वॉयसरॉय लॉर्ड हार्डिञ्ज दिल्ली गए। वहाँ बड़े समारोह से उनके स्वागत का सामान किया गया था। एक बड़े से हाथी पर सवार होकर जब वे नगर की ओर बढ़े, तो किसी ने उनके ऊपर बम फेंका। परन्तु संयोग अच्छा था, निशाना चूक गया और लाट साहब तो बच गए, परन्तु उनका अरदली मर गया। इस घटना के पाँच महीने बाद लाहौर के लॉरेन्स गार्डन में एक बम फटा था, जिससे एक आदमी मर गया। पुलिस का अनुमान है कि ये दोनों काण्ड उसी लाला हरदयाल की स्थापित की हुई पार्टी ने किया था। अन्त में इन

दोनों घटनाओं का आश्रय लेकर 'दिल्ली षड्यन्त्र' वाले मामले की सृष्टि हुई थी। जिसमें श्री० अमीरचन्द, बालमुकुन्द, अवधबिहारी और वसन्तकुमार विश्वास को फाँसी की सज़ा दी गई थी।

उधर अमेरिका पहुँच कर लाला हरदयाल ने बड़े ज़ोर-शोर से प्रचार-कार्य आरम्भ किया और शीघ्र ही एक 'ग़दर पार्टी' की स्थापना हुई और 'ग़दर' नामक एक अख़बार भी निकाला गया। उद्देश्य यह था, कि यहाँ से धन, जन और हथियारों का संग्रह कर के भारत में सशस्त्र विद्रोह आरम्भ कर दिया जाय। परन्तु थोड़े दिनों के बाद ही अमेरिकन सरकार को इस पार्टी के उद्देश्यों का पता लग गया। और लाला हरदयाल गिरफ़्तार कर लिए गए। अन्त में १६ मार्च, सन् १९१६ को वे ज़मानत पर छोड़ दिए गए और वहाँ से स्वीटज़रलैण्ड चले गए। परन्तु उनकी पार्टी बनी रही और उसका कार्य-सञ्चालन उनके सहकर्मी श्री० रामचन्द्र करते रहे।

कोमागाता मारू

कनाडा नामक प्रदेश में बहुत से सिक्ख सङ्गठित रूप से रहते थे। उनका काम था, मेहनत-मज़दूरी करके जीविका अर्जन करना। यह बात कनाडावासियों को बहुत बुरी मालूम हुई। फलतः वहाँ की सरकार ने क़ानून बनाया कि जिस एशियावासी के पास २०० डॉलर न होंगे, वह कनाडा में पैर भी नहीं रखने पाएगा। इस क़ानून के कारण वहाँ के प्रवासी भारतवासियों में बड़ी खलबली मची। उन्होंने इस क़ानून के विरुद्ध घोर आन्दोलन आरम्भ किया। सन् १९१३ में कुछ प्रवासी उसी आन्दोलन के सिलसिले में यहाँ भी आए थे। हमें जहाँ तक

स्मरण है, कनाडा की सरकार ने यह भी नियम बनाया था, कि जिस एशियावासी का अपना जहाज़ होगा, उस पर यह २०० डॉलर वाला नियम लागू न होगा। फलतः विख्यात पञ्जाबी-वृद्ध बाबा गुरुदत्तसिंह ने सिक्खों के एक दल के साथ कैनाडा जाने का विचार किया। उन्होंने हॉङ्गकॉङ्ग से कोमागाता मारू नाम का एक जहाज़ भाड़े पर लिया और शङ्घाई, मोजी तथा योकोहामा से बहुत से भारतीय यात्री लेकर २३, मई १९१४ को वैङ्कोवर पहुँचे। उस समय उस जहाज़ में ३५१ सिक्ख और २१ मुसलमान यात्री थे। वैङ्कोवर के अधिकारियों ने उन्हें जहाज़ से उतरने नहीं दिया। फलतः यात्रियों और पुलिस में मुठभेड़ हुई। सिक्खों ने पुलिस को मार भगाया। इसके बाद दल पर सशस्त्र पुलिस का हमला हुआ, यात्रियों की हार हुई और वे जहाज़ लौटा लेने को बाध्य किए गए। इससे उनमें भयङ्कर असन्तोष का सञ्चार हुआ।

जिस समय यह जहाज़ लौट रहा था, उस समय यूरोप का महा-समर आरम्भ हो चुका था। जापान आने पर यात्रियों ने सुना, कि उन्हें ब्रिटिश सरकार के विख्यात एशियाई बन्दरगाह हॉङ्गकॉङ्ग में भी उतरने नहीं दिया जाएगा। इसलिए मजबूर होकर उन्होंने अपना जहाज़ कलकत्ते की ओर चलाया। रास्ते में हॉङ्गकॉङ्ग तथा सिङ्गापूर में उन्होंने उतरने की चेष्टा की थी, परन्तु अधिकारियों ने नहीं उतरने दिया। अन्त में, २९ दिसम्बर सन् १९१४ को कोमागाता मारू कलकत्ते के बजबज नामक बन्दरगाह पर पहुँचा। बङ्गाल-सरकार ने उन्हें तुरन्त पञ्जाब भेज देने के लिए एक स्पेशल ट्रेन का प्रबन्ध पहले से ही कर रक्खा था। परन्तु सिक्खों

ने तुरन्त ही स्पेशल ट्रेन पर सवार होना स्वीकार नहीं किया। इधर पुलिस ने उन्हें ज़बरदस्ती गाड़ी पर चढ़ाने का उद्योग आरम्भ किया। इधर यात्री बिगड़ उठे। उधर पुलिस भी गरम हो गई। दोनों ओर से गोलियाँ चलने लगीं। इस लड़ाई में १८ सिक्खों ने प्राण-विसर्जन किया। रङ्ग बेढब देख कर २८ सिक्खों को लेकर बाबा गुरुदत्तसिंह ग़ायब हो गए। ६० सिक्खों को उठा-उठा कर ट्रेन में चढ़ाया गया। बाक़ी गिरफ़्तार किए गए और जनवरी महीने तक हवालात में रख कर फिर छोड़ दिए गए। ३१ नज़रबन्द किए गए।

इस घटना के कारण विदेशों से लौटे हुए सिक्खों में तीव्र असन्तोष का सञ्चार हुआ। उन्होंने सरकार को एकदम ध्वंस कर डालने का विचार किया। भयङ्कर षड्यन्त्र आरम्भ हुआ। कनाडा, अमेरिका, हाङ्गकाङ्ग, फ़िलीपाइन, जापान और चीन से बहुत से भारतवासियों ने आकर इस षड्यन्त्र में योग दिया। सरकार भी विचलित हुई। दमन आरम्भ हुआ। एक नए क़ानून की सृष्टि करके विदेश से लौटे हुए सिक्खों को कष्ट दिया जाने लगा। परन्तु यह विप्लव आन्दोलन मरा नहीं। सरकार की सतर्कता से बच कर वह अपनी शक्ति बढ़ाने लगा। १६ अक्टूबर १९१४ को फ़ीरोज़पुर, लुधियाना ब्राञ्च लाइन के चौकीमान स्टेशन पर विप्लवपन्थियों के लिए कुछ हथियार आने वाले थे। अमेरिका से लौटे हुए कुछ सिक्ख उन्हें लेने के लिए चौकीमान पहुँचे और स्टेशन पर आक्रमण कर के स्टेशन-मास्टर तथा पानी पाँड़े को मार डाला। स्टेशन को भी लूट लिया। परन्तु वहाँ कोई हथियार आदि नहीं मिला।

२९ अक्टूबर को 'तोसामारू' नाम का एक जापानी जहाज़ अमेरिका से भारत आया था। इसमें १२७ पञ्जाबी यात्री थे। ये पञ्जाब के विप्लव-वादियों से मिल कर सङ्गठित विद्रोह करने के लिए आए थे। कई टोलियाँ बना कर विभिन्न स्थानों में एक साथ ही लाल-क्रान्ति की आग भड़काना चाहते थे। परन्तु भारत पहुँचते ही सरकार ने उनमें से १०० को गिरफ़्तार कर के नज़रबन्द कर लिया। जो नज़रबन्द नहीं किए गए थे, उनमें से ६, इसके बाद विभिन्न षड्यन्त्रों में लिप्त रहने के कारण फाँसी पर लटकाए गए। ६ को कारावास की सज़ाएँ दी गईं, ६ आजीवन के लिए कालेपानी भेजे गए थे।

२७ नवम्बर को १५ विप्लवपन्थी फ़ीरोज़पुर में सरकारी ख़ज़ाना लूटने जा रहे थे। रास्ते में एक पुलिस के दरोग़ा तथा ग्राम-पञ्चायत के कुछ लोगों ने उन्हें रोका। परन्तु विद्रोहियों ने उन्हें गोली मार दी। पुलिस ने फिर उनका पीछा किया और फिर एक संघर्ष आरम्भ हुआ। इसमें दो विप्लवी मरे, सात पकड़े गए और ६ भाग गए।

इन कार्यों के अतिरिक्त, पञ्जाबी विप्लवादियों ने उन दिनों पञ्जाब के विभिन्न स्थानों में ९ डाके डाले थे और ६ बार ट्रेनें उलटने की चेष्टाएँ की गईं थीं। एक डकैती के सम्बन्ध में सिर्फ़ एक आदमी पकड़ा गया था, जिसके पास २४५ कारतूस और एक रिवॉल्वर मिला था।

लाहौर षड्यन्त्र

हम ऊपर 'रौलट कमिटी' का उल्लेख कर आए हैं। इस कमिटी ने अपनी विस्तृत रिपोर्ट में लाहौर षड्यन्त्र-केस का उल्लेख किया है, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

कोमागाता मारू के यात्री पकड़ लिए गए थे, वे जनवरी के आरम्भ में ही छोड़ दिए गए। उसी समय अमेरिका से आए हुए कुछ पत्र पकड़े गए थे। जिनमें अङ्गरेज़ों के प्रति विद्वेष भाव फैलाने की चेष्टा की गई थी, और कुछ पत्र जर्मनी से आए थे, जिनमें जर्मनी की विजय का ज़िक्र था और बहुत सी उत्तेजनापूर्ण बातें थीं। इन पत्रों द्वारा सरकार को इस बात का भी पता लग गया, कि पञ्जाब के विप्लववादी दल से अमेरिका की 'ग़दर पार्टी' का सम्बन्ध है। १९१४ में विष्णुगणेश पिङ्गले नाम का एक महाराष्ट्र युवक पञ्जाब आया और वहाँ की पार्टी को बङ्गाल की पार्टी से सहयोग कराने का वचन दे गया। पिङ्गले पूना ज़िले का रहने वाला था और थोड़ी ही उमर में अमेरिका चला गया था। जिस समय ग़दर पार्टी वाले सिक्ख यहाँ आए थे, उसी समय वह भी अमेरिका से यहाँ चला आया था। उसके पञ्जाब आने पर विप्लवपन्थियों की एक सभा हुई। इस सभा में सरकारी ख़ज़ाना लूटने, भारतीय सैनिकों में विद्रोह का प्रचार करने, अस्त्र संग्रह करने, बम बनाने और डकैती द्वारा अर्थ-संग्रह करने की बातें तय हुईं। पिङ्गले ने कहा था, कि वह बम बनाने वाले एक निपुण बङ्गाली को यहाँ ला देगा। उसका प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। बम बनाने के लिए उपादान संग्रह करने को आदमी भी नियुक्त कर दिए गए। लुधियाना के कई विद्यार्थियों ने इस काम में सहायता दी। इसके बाद बनारस से श्री० रासबिहारी बोस आए। उनके लिए अमृतसर में एक मकान लिया गया। वह कई बङ्गाली युवकों के साथ १९१५ के फ़रवरी महीने तक उस मकान में थे। यहाँ पर वह सिक्ख विप्लववादियों के साथ कार्य करते रहे।

२९ फ़रवरी को विद्रोह आरम्भ करने की बात तय थी और साथ ही यह भी निश्चय था, कि पहले लाहौर में ही श्रीगणेश होगा। निर्धारित तिथि को सैनिकों को सहायता करने के लिए रासबिहारी ने उत्तर भारत के कई स्थानों में आदमी भेजे। इसके साथ ही उन्होंने यह भी चेष्टा की थी कि ग्रामवासी इस विद्रोह में शामिल हों। विद्रोह के लिए कई बम तैयार हुए, अस्त्र संग्रह हुए, पताकाएँ भी बनवाई गईं और युद्ध-घोषणा का मज़मून भी तैयार कर लिया गया। रेलवे और टेलिग्राफ़ ध्वंस करने के लिए औज़ार भी एकत्र कर लिए गए। आवश्यक अर्थ-संग्रह करने के लिए कई डकैतियाँ पहले ही हो चुकी थीं।

परन्तु एक गुप्तचर के द्वारा सरकार को इन बातों का पता लग चुका था। इसलिए नियत समय से पूर्व ही पुलिस ने रासबिहारी के आवास स्थल पर धावा बोल दिया। सात आदमी पकड़े गए। कितने ही रिवॉल्वर, बम, और बम बनाने का सामान तथा पताकाएँ बरामद हुईं। दूसरे दिन दो आदमी और भी पकड़े गए। इसके बाद और भी कई स्थानों पर ख़ाना-तलाशियाँ हुईं। जिनमें चार आदमी और १२ बम पकड़े गए। इनमें पाँच बम बङ्गाली ढङ्ग के थे, जिनमें तीन पुराने और दो नए थे। इसके साथ ही कुछ ऐसे प्रमाण भी मिले, जिनसे मालूम हुआ कि लाहौर, फ़िरोज़पुर, रावलपिण्डी, बनारस, जबलपुर और पूर्व बङ्गाल में एक ही दिन सशस्त्र विद्रोह की घोषणा कर दी जाने वाली थी।

श्री० रासबिहारी और पिङ्गले पुलिस के आने से पहले ही भाग

चुके थे। कुछ दिनों के बाद पिङ्गले मेरठ की छावनी के पास पकड़ा गया था। उसके पास एक बम भी था।

२० फ़रवरी को एक हेड-कॉन्स्टेबिल और एक दरोग़ा से कुछ विप्लववादियों की भेंट हुई। पुलिस वालों ने थाने में चलने को कहा। विप्लवियों ने गोली दाग़ी, हेड-कॉन्स्टेबिल मर गया और दरोग़ा घायल हुआ।

'डिफ़ेन्स ऑफ़ इण्डिया एक्ट' पास हो जाने पर ९ भागों में बाँट कर विप्लववादियों का विचार किया गया था। पहले मामले में ६१, दूसरे मामले में ७४, और तीसरे में १२ अभियुक्त थे। इनमें २८ को फाँसी हुई, २९ छोड़ दिए गए और बाक़ी कालेपानी तथा जेलख़ाने भेजे गए। इसके अलावा कई अपराधियों का विचार सामरिक ढङ्ग (Court Martial) से हुआ था और कई साधारण अदालत द्वारा दण्डित किए गए। पहले मामले में विद्रोह का उद्योग करने वाले और नेता शामिल किए गए। दूसरे में उनके सहकारी और तीसरे में विभिन्न प्रकार के विप्लववादी थे। इसके सिवा 'डिफ़ेन्स ऑफ़ इण्डिया एक्ट' के अनुसार बहुत से आदमियों को नज़रबन्द किया गया। अन्त में पञ्जाब के कतिपय प्रतिष्ठित सज्जनों की सहायता से सरकार इस विप्लववाद को दबाने में समर्थ हुई। लाहौर षड्यन्त्र वाले मामले में जिन्हें कालेपानी की सज़ा दी गई थी, उनमें अधिकांश ५०-५० और ४०-४० वर्ष की उमर के व्यक्ति थे।

दमन चक्र

'डिफ़ेन्स ऑफ़ इण्डिया एक्ट' के अनुसार तीस आदमी जेलों में

नज़रबन्द थे। ११३ अपने-अपने गाँवों में, रोक रक्खे गए थे। भारत-प्रवेश सम्बन्धी क़ानून के अनुसार ३३१ आदमी रोके गए थे। अमेरिका से जो सिक्ख आए थे, उनमें २,५७६ अपने-अपने गाँवों में नज़रबन्द कर दिए गए।

षड्यन्त्र वाले मामले के बाद, १९१७ में जो लोग स्वदेश वापस आए थे, उनमें से ४१९ आदमी नज़रबन्द किए गये थे। इसके सिवा एडवाइज़री कमिटी ने भी इस विप्लव-व्यापार को रोकने में सरकार की काफ़ी सहायता की थी। अख़बारों पर ख़ूब कड़ी नज़र रक्खी गई थी। कितने ही पत्रों के लिए यह आज्ञा थी कि अख़बार प्रकाशित करने से पहले मज़मून पुलिस को दिखा दिया जावे। श्री० विपिनचन्द्र पाल और लोकमान्य तिलक का पञ्जाब में प्रवेश करना तक निषिद्ध था।

रौलट कमिटी की रिपोर्ट का कथन है कि इस विप्लव-काण्ड के कारण पञ्जाब में भयङ्कर ख़ून-ख़राबी होने की सम्भावना हो गई थी।

बर्मा में विप्लव

सन् १९१५ में श्री० हसन ख़ाँ और श्री० सोहनलाल पाठक नाम के एक विप्लववादी श्याम होकर बरमा पहुँचे। इन दोनों का ग़दर-पार्टी से विशेष सम्बन्ध था। इन्होंने वहाँ जाकर सरकारी मिलिटरी पुलिस को भड़काने की चेष्टा की किन्तु मेमियो की सवार-पुलिस के एक जमादार ने सोहनलाल को गिरफ़्तार करा दिया। उस समय उसके पास तीन पिस्तौल और २७० कारतूस थे। इसके पाँचवें दिन सोहन-लाल का सहकर्मी नारायण सिंह भी वहीं पकड़ा गया। उसके पास भी एक पिस्तौल थी। इस समय श्याम राज्य की सीमा पर एक रेलवे

लाइन तैयार हो रही थी। वहाँ बहुत से जर्मन इञ्जीनियर और पञ्जाबी सिक्ख काम कर रहे थे। अमेरिका की ग़दर पार्टी ने निश्चय किया था, कि ये जर्मन और सिक्ख अस्त्र चलाना सीखेंगे और जब बरमा की मिलिटरी पुलिस क़ब्ज़े में आ जायेगी तो फ़ौरन बरमा पर दख़ल कर लिया जाएगा। परन्तु अन्त में भण्डा फोड़ हो गया और बहुत से विद्रोही गिरफ़्तार करके दण्डित किए गए।

रङ्गून के मुसलमानों ने भी एक विप्लव दल बनाया। उन्होंने १९१५ को बकरीद के दिन विप्लव करने का आयोजन किया था। परन्तु तैयारी पूरी न होने के कारण यह तारीख़ बदल दी गई थी। इसके साथ ही पुलिस को इस षड्यन्त्र का भी पता लग गया और कई आदमी नज़र-बन्द कर लिए गए।

विदेशों से अस्त्र लाने की चेष्टा

ऊपर लिखा जा चुका है कि विप्लववादियों ने विदेशों से हथियार लाने की भी चेष्टा की थी। १९१५ में श्री० जितेन्द्रनाथ लाहिड़ी नाम का एक विप्लवी यूरोप से भारत आया। उसने बङ्गाली विप्लववादियों को बतलाया कि जर्मनी अस्त्र और अर्थ देने को तैयार है। व्यवस्था ठीक करने के लिए उसने कुछ आदमियों को 'बटाविया' (जर्मनी) भेजने की ज़रूरत बताई। इस प्रस्ताव के अनुसार श्री० नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य मि० मार्टिन नाम धारण कर बटाविया गया। इसके साथ ही अवनीन्द्र नाथ मुकर्जी नाम का एक युवक जापान भेजा गया।

बटाविया जाकर मी० मार्टिन ने जर्मन राजदूत से मुलाक़ात की। उसने बताया कि भारतीय विप्लववादियों की सहायता के लिए अस्त्र-

शस्त्र लेकर एक जहाज़ कराची के लिए जा रहा है। मार्टिन ने कहा, उसे बङ्गाल भेजने की व्यवस्था कर दीजिए। जर्मन राजदूत ने इसे स्वीकार कर लिया। इस जहाज़ में तीस हज़ार राइफ़ल, बन्दूकें और प्रत्येक बन्दूक़ के लिए ८०० के हिसाब से कारतूस थे। इसके सिवा दो लाख रुपए नक़द भी थे। निश्चय हुआ था, कि सुन्दरवन (गङ्गासागर सङ्गम के पास) जहाज़ से सारा सामान उतार लिया जाएगा। सब बातें तय करके मि० सी० मार्टिन उर्फ़ श्री० नरेन्द्र भारत वापस आ गया। श्री० यतीन्द्रनाथ के साथ परामर्श करके यह भी ठीक कर लिया गया, कि यह सब सामान कहाँ-कहाँ रक्खा जाएगा। यह भी निश्चय हुआ, कि पूर्व बङ्गाल के लिए कुछ हथियार 'हाथी द्वीप' में, पश्चिम बङ्गाल के लिए 'रायमङ्गल' नामक स्थान में और बाक़ी बालेश्वर में उतारा जाएगा। साथ ही यह व्यवस्था भी कर ली गई कि विप्लव आरम्भ होने पर कलकत्ते के पास की तीनों रेलवे लाइनें ध्वंस कर दी जाएँगी, ताकि सरकार विद्रोह दमन करने के लिये पलटनें न भेज सके।

१ जुलाई को 'मैवरिक' जहाज़ के रायमङ्गल पहुँचने की बात थी। कुछ लोग उसकी प्रतीक्षा के लिए रायमङ्गल पहले ही पहुँच गए थे। परन्तु दस दिन तक इन्तज़ार करने पर भी जब जहाज़ नहीं आया तो हताश होकर वे लौट आए। पीछे मालूम हुआ कि सारी चेष्टा विफल हो चुकी है।

इस परिमित स्थान पर इससे अधिक विवरण देना सम्भव ही नहीं था, हाल के होने वाले काण्डों से पाठक पूर्णतः परिचित हैं, अतएव आशा है, पाठकगण इसी से सन्तोष करेंगे।

असहयोग आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास

ईसा की बीसवीं शताब्दी का सन् १९१९ भारत के इतिहास का एक चिरस्मरणीय साल है। क्योंकि इस साल कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई थी, जिनकी अमिट छाप भारतवासियों के दिलों पर रहेगी। इसी साल समस्त भारत के एक स्वर से विरोध करने पर भी सरकार ने वह 'रौलट एक्ट' नाम का काला क़ानून पास कर डाला था, जिसे महात्मा गाँधी ने "शासक शरीर की भीतरी बीमारी का प्रकट चिन्ह" बताया था। उसी साल 'जले पर नमक, छिड़कने के लिए भारत को 'मॉण्टेगु चेम्सफ़र्ड' रिफ़ॉर्म मिला था, जिसे भारत के राजनीतिज्ञों ने शासन-सुधार की मृग-मरीचिका नहीं, वरन् भारतवासियों का उपहास माना था, उसी साल पञ्जाब में वह अमानुषिक घटना सङ्घटित हुई थी, जिसे देख कर अत्याचार का दिल भी दहल सकता था। देश के शासन-कार्य में कुछ वास्तविक अधिकार प्राप्त करने की आशा से, यूरोपीय महासमर में, दिल खोल कर भारत ने साम्राज्य की सेवा की थी। वह इसके बदले में थोड़े से मानवोचित अधिकारों की ओर आशा लगाए बैठा था, परन्तु इसकी वही दशा हुई, जो एक बूँद के लिए घनघटा की ओर टकटकी लगाए हुए चातकी की अकस्मात् वज्रपात हो जाने पर हो जाती है! जनता ने पञ्जाबी अत्याचार की जाँच के लिए एक 'रॉयल कमीशन' की पुकार मचाई। परन्तु उसके

बदले में लॉर्ड हण्टर की अध्यक्षता में एक कमिटी बैठी, जिसे स्वयँ भारत-सरकार ने नियुक्त किया, अथच उस की नृशंसतापूर्ण कार्रवाई की जाँच होने वाली थी।

जिस समय सकार कमीशन नियुक्त करने में आगा-पीछा कर रही थी, उस समय कॉङ्ग्रेस ने अपनी एक स्वतन्त्र जाँच-कमिटी नियुक्त कर ली। इस कमिटी में महात्मा गाँधी, पण्डित मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु-दास और अन्यान्य कई वकील-बैरिस्टर थे। सरकार ने जेल में बन्द नेताओं को उस कमिटी के सामने आकर अपना बयान देने की अनुमति नहीं दी, इसलिए कॉङ्ग्रेस ने सरकार की नियुक्त की हुई हण्टर कमिटी का बहिष्कार कर दिया। यहीं से असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात्र हुआ।

अमृतसर कॉङ्ग्रेस

'हण्टर कमिटी' तथा ग़ैर-सरकारी कमिटी की नियुक्ति के पहले ही, अमृतसर में कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन हुआ। हण्टर कमिटी के सामने जो गवाहियाँ हुई थीं, उससे पञ्जाब के अत्याचार का बहुत कुछ भण्डा-फोड़ हो चुका था इसलिए सारे देश में असन्तोष की आग धधक उठी। पञ्जाब के अत्याचार के सम्बन्ध में निन्दासूचक प्रस्ताव उपस्थित करते हुए लोकमान्य तिलक ने जो वक्तृता दी थी, उसमें आपने कहा था—

"प्रजा की रक्षा के लिए ही राजा होता है, न कि बेपरवाही के साथ प्रजा की हत्या करने के लिए! प्रजा की रक्षा का भार जहाँ व्यक्ति-विशेष के ऊपर न्यस्त होता है, वहाँ उसकी ज़िम्मेदारी और भी अधिक होती है। साथ ही उसका प्रभाव और वेतन भी अधिक होता है, वर्तमान क्षेत्र में इन तमाम का असद्व्यवहार किया गया है। इसलिए अगर

हम इसके विचार का दावा करें, तो इसमें कोई अन्याय की बात नहीं हो सकती। लन्दन में नहीं, यहीं जालियाँवाले बाग़ में ही उनका विचार होना चाहिए और अगर आवश्यकता हो तो वहीं उन्हें दण्ड भी मिलना चाहिए। कुछ लोगों का कहना है, कि उन्हें भारत में नहीं आने देना चाहिए! मैं पूछता हूँ क्यों? विचार के समय उपस्थित रहने के लिए और उपयुक्त दण्ड ग्रहण करने के लिए, उनका यहाँ आना अत्यावश्यक है। इस सम्बन्ध में मेरा मनोभाव अत्यन्त तीव्र है। युद्ध के बाद क़ैसर के प्रति इङ्गलैण्ड वालों का जैसा मनोभाव देखा गया है, इस सम्बन्ध में मेरा मनोभाव भी वैसा ही है। फ़ौजी क़ानून के समय पञ्जाब में जो निष्ठुर अत्याचार हुए हैं, उसकी तुलना में क़ैसर के कार्य क्या दूषणनीय हैं? क़ैसर को सारे संसार के विरुद्ध लोहा लेना पड़ा था। हमारी सरकार ने कहा है, कि देशवासियों ने विद्रोह आरम्भ किया था, इसलिए उनके विरुद्ध सरकार को भी हथियार धारण करना पड़ा। परन्तु वास्तव में बात ऐसी न थी। पञ्जाब के लोगों ने विद्रोह आरम्भ किया था, यह घोर मिथ्या है। देश के लोगों को भयभीत करने के लिए ही लापरवाही के साथ यह हत्या की गई है। अगर किसी सभ्य देश में इस प्रकार का कार्य हो, तो मैं कहूँगा धिक्कार है, उस सभ्यता को। दूसरे किसी देश में ऐसा कार्य नहीं हो सकता। इङ्गलैण्ड में यदि यह काण्ड हुआ होता, तो वहाँ के निवासी अपराधीको दण्ड दिलाने के लिए नौ महीने तक चुपचाप नहीं रह सकते थे। एक महीने में ही सब मामला ख़तम हो जाता। पार्लामेण्ट में प्रश्नों पर प्रश्न होते, वितर्क पर वितर्क होते। अपराधी को दण्ड न देने पर कोई मन्त्रि-

सभा अपने को निरापद नहीं समझ सकती। दुर्भाग्य की बात है कि हम लोग छः हज़ार मील पर हैं, और हमारी सरकार प्रजातन्त्रमूलक नहीं है। इसी से बृटिश सरकार अपने को सम्पूर्ण निरापद समझ रही है।" इसी तरह अन्यान्य कई वक्ताओं ने भी इस काण्ड की निन्दा की और सबकी यही इच्छा थी, इसके प्रतिकार की कोई तदबीर अवश्य होनी चाहिए।

इसी समय ब्रिटिश पार्लामेण्ट ने 'मॉण्ट-चेम्सफ़र्ड' सुधार को भी स्वीकार कर लिया था और अपनी उदारता का परिचय देने के लिए जिन लोगों को पञ्जाब ने बलवे (?) में सज़ाएँ दी गई थीं और जिन्होंने मार-काट में भाग नहीं लिया था, वे छोड़ दिए गए थे। इसके अनुसार पञ्जाब के कई नेता और अलीबन्धु जेल से छूटते ही सीधे कॉङ्गरेस के पण्डाल में आए तो लोगों ने बड़े उत्साह से उनका स्वागत किया।

यद्यपि पार्लामेण्ट के दिए हुए हास्यास्पद सुधारों को कॉङ्गरेस ने स्वीकार कर लिया; परन्तु जनता इससे सन्तुष्ट न थी। पञ्जाब के भयङ्कर काण्ड के बाद, इस आँसू पोंछने के प्रयत्न को उसने अपमानजनक समझा।

कॉङ्गरेस का विशेष अधिवेशन

अमृतसर कॉङ्गरेस के दो महीने बाद, मार्च सन् १९२० में कॉङ्गरेस की जाँच कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित हो गई। उसमें प्रकट की हुई बातों के कारण सारे देश में क्रोध का सञ्चार हुआ। इधर सरकार ने हण्टर कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित करने में असाधारण विलम्ब कर दिया। इससे लोगों का सन्देह और भी बढ़ गया और वह सन्देह कुछ दिनों

के बाद और भी पक्का हो गया। अब हण्टर कमिटी में 'अल्पमत' और 'बहुमत' के नाम से दो प्रकार की रिपोर्टें प्रकाशित कीं। इधर सरकार ने 'इण्डेमनिटी क़ानून' के नाम से एक नया क़ानून पास करके, अत्याचारियों के विरुद्ध क़ानूनी कारँवाई करने का रास्ता ही रोक दिया। इसके बाद भारत-मन्त्री तथा भारत-सरकार ने हण्टर कमिटी की रिपोर्ट पर अपनी असन्तोषजनक सम्मति प्रकट की। परन्तु कॉङ्ग्रेस जनमत की उपेक्षा नहीं कर सकी। उसने तुरन्त ही कलकत्ते में अपना एक 'विशेष अधिवेशन' किया। लाला लाजपतराय इस अधिवेशन के सभापति बनाए गए। पण्डित मदनमोहन मालवीय और देशबन्धु सी० आर० दास के प्रबल विरोध करने पर भी प्रतिनिधियों ने असहयोग का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया। कहा गया, कि अनन्त काल से प्रजा की शिकायतों पर ध्यान न देने वाली सरकार की सहायता न करना इस देश में धर्म माना गया है। इसका उपयोग भी प्रजा ने कई बार किया है। इसी पुरानी प्रथा के कारण बङ्गाल के विच्छेद के समय भी कुछ अंशों में सरकार की सहायता न करने का भाव उत्पन्न किया था। इसके सिवा, सन् १९०९ में, बनारस-कॉङ्ग्रेस के सभापति की हैसियत से श्री० गोपलकृष्ण गोखले ने भी इसी माँग की ओर इशारा किया था। उन्होंने कहा था—"यदि ऐसे आदमियों की राय का भी निरादर कर दिया जाय, यदि भारतवासी गूँगे पशु की तरह हाँके जाएँ, यदि ऐसे मनुष्यों को, जिनका किसी दूसरे देश में प्रसन्नता से सम्मान किया गया होता, अपने ही देश में उनकी असहाय तथा अपमानजनक अवस्था का अनुभव कराया जाय, तो मैं यही कहूँगा कि जनता के हित के

लिए नौकरशाही के साथ सब प्रकार के सहयोग की आशा को विदा कर दो। ब्रिटिश शासन के एक सौ वर्ष बाद भी यदि ऐसी अवस्था उत्पन्न होती तो ब्रिटिश शासन पर मेरी समझ में इससे बढ़ कर कोई दूसरा दोषारोपण नहीं हो सकता।"

ये वाक्य गोखले महोदय ने बङ्ग-विच्छेद के प्रतिष्ठित विरोधियों के सम्बन्ध में कहे थे। इसके दो वर्ष बाद स्वर्गीय लोकमान्य ने सत्याग्रह के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। सन्, १६०९ में लाहौर कॉङ्ग्रेस में प्रवासी भारतवासियों के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव उपस्थित करते हुए गोखले महोदय ने सत्याग्रह के सम्बन्ध में कहा था—"सत्याग्रह क्या है? वह प्रधानतः आत्मरक्षा मूलक है और नैतिक और आध्यात्मिक शस्त्रों से लड़ा जाता है। सत्याग्रही अत्याचार का विरोध स्वयं कष्ट सहन करके करता है। वह पाशविक बल का सामना आत्मिक बल से करता है। वह मनुष्य के अन्दर रहने वाले पशु का मुक़ाबला मनुष्य के अन्दर रहने वाले देवता से करता है। वह अत्याचार का मुक़ाबला सहनशीलता से करता है। बल का मुक़ाबला अन्तरात्मा से करता है। अन्याय का मुक़ाबला विश्वास से और अधर्म का मुक़ाबला धर्म से करता है।"

महात्मा गाँधी ने इस असहयोग की नीति को कार्यरूप में परिणत करने का भार लिया और असहयोगी की कर्मसूत्री तैयार करके वे संग्राम में प्रवृत्त हुए। एक ओर पञ्जाब के अत्याचारों की उपेक्षा और दूसरी ओर मुसलमानों की ख़िलाफ़त के साथ अविचार, इन दोनों घटनाओं ने असहयोग आन्दोलन के लिए मैदान साफ़ कर दिया।

खिलाफ़त कॉन्फ्रेन्स

नवम्बर, सन् १९१९ में दिल्ली में ख़िलाफ़त कॉन्फ्रेन्स का अधिवेशन हुआ। मुसलमानों में बड़ी उत्तेजना फैली थी। हिन्दू भी काफ़ी तादाद में शामिल थे। महात्मा गाँधी की सलाह से कॉन्फ्रेन्स ने निश्चय किया, कि यदि ख़िलाफ़त का मसला सन्तोषजनक भाव से हल न हो तो सरकार से सहयोगिता करना एक दम बन्द कर दिया जाय। इसके बाद कॉन्फ्रेन्स की दूसरी बैठक, १९२० की १७ अप्रैल को मद्रास में हुई। वहाँ असहयोग नीति का स्पष्टीकरण इस प्रकार हुआ—(१) ऑनरेरी पद, सरकारी उपाधियाँ और कौन्सिलों की मेम्बरी छोड़ दी जाए, (२) सरकारी नौकरी छोड़ दी जाए, (३) पुलिस और फ़ौज की नौकरियाँ छोड़ दी जाएँ, (४) सरकारी कर देने से इन्कार कर दिया जाए।

यद्यपि अभी तक असहयोग का सम्बन्ध अधिकतर ख़िलाफ़त के मसले से ही था, तो भी महात्मा गाँधी ने इसे गर्म दल के नेताओं के सामने पेश करने का निश्चय किया और इसके लिए इलाहाबाद में एक कॉन्फ्रेन्स बैठी। असहयोग का कार्यक्रम तैयार करने के लिए महात्मा गाँधी और मुसलमान नेताओं की एक कमिटी बनाई गई। इस कमिटी ने असहयोग का कार्यक्रम जुलाई में प्रकाशित किया और उसमें अदालतों के बहिष्कार का भी ज़िक्र आया।

इसके बाद कलकत्ते में कॉङ्ग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ था, जिसका ज़िक्र हम ऊपर कर आए हैं।

नागपूर कॉङ्ग्रेस

नागपूर की कॉङ्ग्रेस दिसम्बर सन्, १९२० में हुई थी। कौन्सिलों का निर्वाचन हो चुका था। राष्ट्रीय दल वाले नेता कॉङ्ग्रेस का आदेश मान कर निर्वाचन-द्वन्द्व से अलग रहे। फलतः इन चुनावों के बारे में तीन वर्ष तक विचार करने की कोई आवश्यकता न रही। स्कूल, कॉलेज और अदालतों के बहिष्कार का कई प्रभावशाली नेताओं ने घोर विरोध किया, परन्तु चौदह हज़ार प्रतिनिधियों में से अधिकांश ने कलकत्ते के प्रस्ताव पर दृढ़ रहने का ही निश्चय किया। फलतः थोड़े से रद्दोबदल के साथ यहाँ भी असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव प्रबल बहुमत से पास हो गया।

उसी समय कनाट् के ड्यूक भारत की सैर करने आ रहे थे। इसलिए कॉङ्ग्रेस ने यह भी निश्चय किया, कि राज-परिवार से किसी प्रकार का द्वेष न रखते हुए भी, ड्यूक महोदय के स्वागत-समारोह का बहिष्कार किया जाए। फलतः जब जनवरी में ड्यूक आए तो जिस शहर में भी गए वहाँ पूर्ण हड़ताल रही, मानो भारत ने दिखा दिया, कि अब वह ग़ुलाम या पराधीन नहीं रहना चाहता। दिल्ली और कलकत्ता-जैसे शहरों में जहाँ ड्यूक महोदय को सूनी सड़कों पर सरकारी स्वागत मिल रहा था, वहाँ जब महात्मा गाँधी या कोई और नेता जाता था तो उसके मुँह से स्वतन्त्रता का सन्देश सुनने के लिए लाखों की भीड़ होती थी!

नागपूर कॉङ्ग्रेस ने नवीन सङ्गठन की नियमावली बनाई। कॉङ्ग्रेस का ध्येय बदल दिया गया, कॉङ्ग्रेस तथा उससे सम्बन्ध रखने वाली कमिटियों का पुनः सङ्गठन हुआ, उनके चुनाव के सम्बन्ध में

नियम बने, प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित की गई, और कॉङ्ग्रेस के कार्य को बराबर जारी रखने के लिए एक वर्किङ्ग कमिटी भी बनाई गई।

३१ मार्च सन् १९२१ में बेजवाड़ा में कॉङ्ग्रेस की स्थाई समिति की बैठक हुई और निश्चय हुआ, कि आगामी जून तक कॉङ्ग्रेस का कार्य सञ्चालन करने के लिए एक करोड़ रुपए एकत्र कर लिए जाएँ, कॉङ्ग्रेस के एक करोड़ सदस्य बनाए जाएँ और भारत के २० लाख घरों में चर्खे चलवाने का प्रबन्ध हो। इसके बाद समिति की दूसरी बैठक बम्बई में हुई और निश्चय हुआ, कि आगामी ३० सितम्बर के अन्दर-अन्दर विदेशी वस्त्र का सम्पूर्ण रूप से बहिष्कार कर दिया जाए तथा युवराज के आने पर उनके स्वागत-समारोह का बहिष्कार भी किया जाए।

स्वयंसेवक आन्दोलन

२२ और २३ नवम्बर को समिति की एक बैठक फिर बम्बई में हुई और निश्चय हुआ कि बङ्गाल, पञ्जाब और संयुक्त प्रान्त में जहाँ सरकार ने स्वयंसेवक दल के सङ्गठन को ग़ैर-क़ानूनी क़रार दिया है, वहाँ से सब स्वयंसेवक दलों को एक सङ्गठन के अन्दर लाकर सरकार के विधान को चुनौती दी जाए। सरकार ने पहले तो आन्दोलन की दिल्लगी उड़ाई। बड़े लाट साहब ने उसे मूर्खों की योजना बता कर उपहास किया। फिर इस बात का प्रचार किया गया, कि अगर अङ्गरेज़ भारत से अपना हाथ खींच लें तो रक्त-प्रलय आरम्भ हो जायगा। यह भी घोषित किया गया कि असहयोगी लोग बोल्शेविज़्म को बुलाना चाहते हैं। अन्त में कौन्सिल के मॉडरेट नेताओं से प्रार्थना की गई, कि वे

इस मुसीबत में सरकार की सहायता करें। असहयोग आन्दोलन का दमन करने के लिये प्रान्तिक सरकारों के पास नई-नई योजनाएँ भेजी गईं। 'सिडीशस मीटिङ्ग एक्ट', क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट और १४४ धारा का मनमाना उपयोग होने लगा। सरकारी अफ़सरों ने 'अमन सभाएँ' क़ायम कीं। एङ्गलो ब्रिटिश एसोसिएशन की एमरजेन्सी कमिटी ने भी आन्दोलन के विरुद्ध अंधाधुन्ध प्रचार किया। अली-बन्धु गिरफ्तार हुए, करांची में उन पर मामला चला और उन्हें भारी सज़ा दी गई। आपके तथा अन्य राजनैतिक मुक़दमों की मनोरञ्जक कार्यवाही संस्था द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित करने की व्यवस्था हो रही है।

अली-बन्धुओं को १ नवम्बर को सज़ा दी गई। इस सज़ा में कॉङ्ग्रेस ने मत-स्वतन्त्रता को दबाने का प्रयत्न देखा, इसलिए उसने अली-बन्धुओं के अपराधों को अपनी कमिटियों में पास किए प्रस्तावों में भी किया। उसके समर्थन में हज़ारों आदमियों ने भाग लिया। सरकार पूर्णरूप से कुण्ठित हो गई। फिर किसी आदमी पर उन अपराधों के लिए मामला नहीं चलाया गया।

प्रिन्स का आगमन

१७ नवम्बर को प्रिन्स ऑफ़ वेल्स भारत का भ्रमण करने आए। उस दिन सारे भारत में हड़ताल रही। वास्तव में सरकार ने उन्हें किसी राजनीतिक से उद्देश्य की सिद्धि के लिए बुलाया था। परन्तु देश ने उनके स्वागत-समारोह का बहिष्कार करके उसे विफल कर दिया।

इसके बाद नौकरशाही ने और भी उग्र मूर्ति धारण की, इलाहाबाद

में कॉङ्गरेस कमिटी के २५ सदस्य एक साथ ही गिरफ़्तार कर लिए गए, उन पर यह मज़ेदार इल्ज़ाम लगाया गया, कि वे स्वयंसेवक भर्ती करने के लिए मसौदा बना रहे थे। इनमें से प्रत्येक को १८ महीने की सख़्त सज़ा दी गई। परन्तु अन्त में कुछ दिनों के बाद वे छोड़ दिए गए।

नेताओं की गिरफ़्तारियाँ

देशबन्धु चितरंजन दास जो अहमदाबाद कॉङ्गरेस के सभापति चुने गए थे, २३ दिसम्बर को गिरफ़्तार कर लिए गए। उन पर भी वालण्टियर बनाने के लिए अपील प्रकाशित करने का अपराध लगाया गया। दो महीने तक हवालात में रक्खे जाने पर छः महीने के लिए जेल भेजे गए। हवालात के ज़माने में कहा जाता है, कि उन्हें एक सार्जेण्ट ने मारा भी था। अपने मामले के समय देशबन्धु ने अदालत की कार्रवाई में कोई भाग नहीं लिया और न अपना पक्ष समर्थन किया।

इसके बाद ही मौ० अबुलकलाम आज़ाद की गिरफ़्तारी हुई। शायद नौकरशाही ने हिन्दू नेता के बाद एक मुसलमान नेता को गिरफ़्तार करना भी मसलहत समझा। आप पर १२४-अ धारा के अनुसार मामला चला और सज़ा दी गई। आपके बाद लाला लाजपतराय, आचार्य भगवानदास, पं० जवाहरलाल नेहरू तथा अन्यान्य सैकड़ों नेता और हज़ारों स्वयंसेवक पकड़े गए। गाँधी टोपी और खद्दर तो मानो नौकरशाही के लिए 'हौआ' बन गए थे। इनका उपयोग करने वालों का हर तरह अपमान और तिरस्कार होता था। खद्दर का कुर्ता, गाँधी टोपी पहनना ही राजद्रोही होने का चिह्न था।

सैकड़ों नहीं, वरन् हज़ारों आदमी इसी महाभयङ्कर अपराध में पकड़े गए थे। स्वयंसेवकों को पीटना और जाड़े के दिनों में उन्हें नङ्गा करके तालाबों में डाल देना पुलिस के लिए एक साधारण दिल-बहलाव था! जिनके ऊपर कोई विशेष अपराध नहीं लगाया जा सका, उनके लाइसेन्स ज़ब्त करके हथियार ही छीन लिये गए। राष्ट्रीय विद्यालयों के कागज़ात नष्ट कर देना भी विद्रोह-दमन का एक उपाय था।

जनता ने बड़ी शान्ति और संयम से काम लिया। इस आन्दोलन का इतना प्रभाव पड़ा कि श्रीमान् बड़े लाट साहब तक 'चकरा' गए। २४ जनवरी को बारदोली से सामूहिक सत्याग्रह प्रारम्भ करने का स्मरणीय निर्णय किया गया। महात्मा गाँधी ने उसे अन्तिम और अमिट निर्णय कहा था और सरकार के पास 'अल्टीमेटम' भेजा। सारा देश शारीरिक शक्ति के ऊपर आत्मिक शक्ति की विजय देखने के लिए उत्सुक हो उठा। परन्तु ईश्वर की इच्छा कुछ दूसरी ही थी।

चौरीचौरा-काण्ड

गोरखपुर ज़िले के चौरीचौरा नामक गाँव में पुलिस के अत्याचारों से लोग घबरा उठे। संयम और सहिष्णुता का बाँध टूट गया। उत्तेजित जनता ने थाने में आग लगा दी और पुलिस के कई आदमियों को पकड़ कर आग में झोंक दिया। इस दुर्घटना का समाचार महात्मा गाँधी को मिला, तो वे अत्यन्त मर्माहत हुए। उन दिनों बारदोली में कॉङ्ग्रेस कमिटी की बैठक हो रही थी। वहाँ निश्चय हुआ कि "बारदोली तथा अन्य स्थानों में जो सामुहिक सत्याग्रह आरम्भ होने वाला था, वह मुलतवी कर दिया जावे और तब तक मुलतवी रहे, जब तक कि

वातावरण इतना अहिंसात्मक न हो जावे, कि गोरखपुर की जनता के अत्याचार या बम्बई या मद्रास की गुण्डेबाज़ी पुनः न होने का विश्वास हो जाय।" इसके साथ ही असहयोग-सम्बन्धी सारे आन्दोलन भी बन्द कर दिए गए और विधायक कार्यक्रम निश्चित किया गया।

इसके बाद २४ और २५ फ़रवरी को दिल्ली में कॉङ्ग्रेस कमिटी की बैठक हुई। महात्मा जी ने लोगों को समझाया कि बारदोली के प्रस्ताव के कारण नागपुर कॉङ्ग्रेस का प्रस्ताव उलटा नहीं जाता। परन्तु जनता तो निराश हो चुकी थी। महात्मा गाँधी ने भी इस नैराश्य का अच्छी तरह अनुभव किया था। वे समयोपयोगी कार्यक्रम बनाने की चिन्ता में लगे। परन्तु नौकरशाही ने इसे महात्मा जी की कमज़ोरी समझा और वे गिरफ़्तार कर लिए गए।

महात्मा गाँधी का मुक़द्दमा

महात्मा गाँधी का विचार संसार के इतिहास की एक स्मरणीय घटना है। महामति एण्ड्रूज़ ने इसे महात्मा ईसा के विचार से तुलना की थी। महात्मा जी के ऊपर राजद्रोह-प्रचार का अपराध लगाया गया था। आपने अदालत की कार्रवाई में कोई भाग नहीं लिया था। परन्तु एक बड़ा ही मार्मिक बयान दिया था, जिसकी कुछ पंक्तियों का भाव इस प्रकार था :

"अपना बयान पढ़ने से पहले मैं यह बतला देना चाहता हूँ, कि विद्वान एडवोकेट जनरल ने मेरे सम्बन्ध में जो मन्तव्य प्रकाशित किए हैं, मैं उनका सम्पूर्ण भाव से अनुमोदन करता हूँ। उन्होंने अपने भाषण में मेरे प्रति सम्पूर्ण सुविचार किया है। क्योंकि यह बिल्कुल सच है,

कि वर्तमान शासन-पद्धति के प्रति असन्तोष फैलाने का मुझे नशा-सा हो गया है। मैं इस सत्य को अदालत से छिपाना नहीं चाहता। विद्वान् एडवोकेट-जनरल का यह कथन सत्य है, कि 'यङ्ग-इण्डिया' से जब से मेरा सम्बन्ध है, तभी से मैंने इस असन्तोष का प्रचार आरम्भ नहीं किया है, वरन् उसके बहुत पहले से किया है। इस दुखदायी-कर्त्तव्य का पालन मैंने अपनी ज़िम्मेदारी को अच्छी तरह समझ कर किया है। बम्बई, मद्रास तथा चौरीचौरा की दुर्घटनाओं के बारे में एडवोकेट जनरल ने मेरे ऊपर जो दोषारोपण किया है, मैं उन सबका समर्थन करता हूँ। मैंने रात-रात भर सोच कर देखा है, कि उन घटनाओं से अपना सम्बन्ध अस्वीकार करना मेरे लिए असम्भव है। एक शिक्षित और दायित्व-ज्ञान-सम्पन्न मनुष्य की हैसियत से, मुझे इन कार्यों का फला-फल जानना चाहिए था। एडवोकेट जनरल का यह कहना भी सच है, कि मैं जानता था कि मैं आग से खेल रहा हूँ। मैंने अपनी ज़िम्मेदारी समझ कर ही काम किया है और अगर मैं अभी छोड़ दिया जाऊँ, तो वही काम करूँगा। आज सवेरे मैंने सोच कर देखा है, कि इस समय जो बातें मैंने कही हैं, उन्हें अगर नहीं कहता तो मेरे कर्तव्य-पालन में त्रुटि रह जाती।

"मैं हिंसा से बचना चाहता हूँ, अहिंसा मेरा परम धर्म है। किन्तु मुझे अपने लिए रास्ता चुन लेना पड़ा है। जिस शासन-पद्धति ने हमारे देश की अपूर्णीय क्षति की है, उसे या तो मैं स्वीकार कर लूँ, या उसके विरुद्ध आवाज़ उठाने की सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले लूँ। मैं जानता हूँ, कि मैं तथा मेरे देशवासियों ने समय-समय पर

पागलों की तरह काम किया है। मै उसके लिए अत्यन्त दुखित हूँ, और जो कुछ मैंने किया है, उसके लिए कठोर से कठोर दण्ड की प्रार्थना करता हूँ। मैं दया की भिक्षा नहीं माँगता। मैं अपने को निर्दोष प्रमाणित करने की चेष्टा भी नहीं करता। क़ानून की दृष्टि में जो इच्छाकृत अपराध है, मैंने उसी को नागरिक का प्रथम कर्तव्य समझा है। उसके लिए मुझे जो कठोर से कठोर दण्ड दिया जा सके, मैं उसी के लिए प्रार्थी हूँ। विचारक महाशय! अगर आपकी यह धारणा हो, कि जिस शासन-तन्त्र या क़ानून की परिचालना में आप सहायता कर रहे हैं, कि वह देश के लिए मङ्गलकर है, तो आप मेरे सब से कठोर दण्ड का विधान करें या स्वयं पद-त्याग करें। आप मेरे मतानुसार काम करेंगे, इसकी मुझे आशा नहीं हैं।"

महात्मा जी का वक्तव्य समाप्त होने पर जज साहब ने अपना लम्बा फ़ैसला सुनाया और महात्मा जी को ६ वर्ष की सज़ा सुना दी गई।

सत्याग्रह कमिटी

देश को सत्याग्रह के लिए तैयार न पाकर ही महात्मा गाँधी को बारदोली सत्याग्रह स्थगित कर देना पड़ा था। जेल जाने के पूर्व इसी लिए उन्होंने कॉङ्ग्रेस को रचनात्मक कार्य में जुट जाने का आदेश दिया था, क्योंकि उनके अनुसार देश को अहिंसात्मक लड़ाई के लिए तैयार करने का यही एक मात्र उपाय था। इस रचनात्मक कार्य में अछूतोद्धार, हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा खादी प्रचार और विदेशी वस्त्र का बहिष्कार मुख्य थे। इधर गाँधी जी की जेल-यात्रा के कारण देश के वातावरण में विचित्र पस्ती आ गई। देश में दो विरुद्ध मत सुनाई

पड़ने लगे। कुछ उत्साही लोगों का कहना था, कि सत्याग्रह स्थगित कर गाँधी जी ने देश का अमार्जनीय अपकार किया है अतः लोगों को सत्याग्रह फिर से प्रारम्भ कर देना चाहिए। इसके विपरीत कुछ लोगों का कहना था, कि चूँकि अब आन्दोलन स्थगित हो ही गया, इसलिए कौंसिल-बहिष्कार का प्रस्ताव कोई महत्व नहीं रखता। इस कारण लोगों को चुनाव में भाग लेना चाहिए। कुछ लोग गाँधी जी के रचनात्मक-कार्यक्रम को ही आगे बढ़ाने के पक्ष में थे।

महात्मा जी के जेल जाने के बाद कॉङ्ग्रेस की वर्किङ्ग कमिटी की बैठकें स्थान-स्थान पर होती रहीं, जिनमें रचनात्मक कार्य पर ज़ोर दिया जाता रहा। खादी-प्रचार कार्य को सुसञ्चालित रूप देने के लिए एक बोर्ड स्थापित करने का निश्चय किया गया तथा इस काम के लिए तिलक-स्वराज्य-फ़ण्ड से रुपए देने की भी अनुमति दी गई। और काम भी चल ही रहे थे पर तो भी सुस्ती आती ही गई। लखनऊ में भी अखिल-भारतीय कॉङ्ग्रेस कमिटी की बैठक हुई। देश के इस वातावरण से असन्तुष्ट होकर श्री० विट्ठलभाई पटेल, पं० मोती लाल नेहरू (जो उन्हीं दिनों जेल से छुट कर आये थे) आदि प्रगतिगामी नेताओं ने एक जाँच कमिटी की स्थापना का प्रस्ताव पास किया। जो देश का दौरा कर यह पता लगावे कि देश सत्याग्रह के लिये तैयार है या नहीं। कमिटी ने देश भर का दौरा किया और कॉङ्ग्रेसी कार्यकर्त्ताओं का मत लिया पर अन्त में जब रिपोर्ट निकली तो उस कमिटी में ही दो मत थे। छः सदस्यों में से तीन कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में थे तो तीन सत्याग्रह और रचनात्मक कार्य के! इस समय कौंसिल प्रवेश के

पक्षपाती परिवर्तनवादियों (Pro-changers) और सत्याग्रह तथा रचनात्मक कार्य के पक्षपातियों (No-changers) के वाद-विवाद ने उग्र रूप धारण कर लिया। इसी समय देशबन्धु दास जेल से छुट कर आए, जिससे परिवर्तनवादियों का पक्ष और भी मज़बूत पड़ गया। यही आन्दोलन आगे चल कर स्वराज्य-पार्टी की नींव का कारण हुआ।

गुरु का बाग़

सन् १९२२ में देश में दो बड़ी दुर्घटनाएँ हुईं जिनका प्रभाव सारे देश पर पड़े बिना न रहा। पहली घटना गुरु के बाग़ से सम्बन्धित है। सिक्खों ने चिरकाल से ही अपने धर्म के लिए बहुत कष्ट सहे हैं और अपने इसी विश्वास के लिए अनेकों बार हँसते-हँसते मृत्यु का आलिङ्गन करने का अदम्य उत्साह प्रदर्शित किया है। उनके गुरुद्वारों का सम्बन्ध किसी न किसी गुरु के जीवन की किसी घटना से सम्बन्ध रखता है। इसीलिए सिक्ख जनता इन्हें अपरिमित श्रद्धा और ममता की दृष्टि से देखती है और उनके सञ्चालन के लिए लाखों की सम्पत्ति उनके महन्तों के हवाले कर देती है। कालान्तर में जैसा कि प्रायः सभी धर्मों में हुआ करता है, ये महन्त सेवा और त्याग की पुनीत भावना को भूल कर विलास एवं अकर्मण्यता का घृणित जीवन बिताने लगे। इस दुरावस्था से दुखित हो सुधारवादी सिक्खों का एक दल, जो अकाली दल के नाम से विख्यात है, उठ खड़ा हुआ, जिसने गुरुद्वारों में सुधार का आन्दोलन खड़ा किया। उन लोगों ने 'शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी' स्थापित की जिसने गुरुद्वारों का प्रबन्ध अपने हाथ में दिए

जाने की माँग पेश की। यह बात गुरुद्वारों के महन्तों को स्वभावत अप्रिय लगी, जिन्होंने कई स्थानों पर अकाली दल वालों पर भीषण अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया। 'नानकाना साहब' के गुरुद्वारे के महन्त ने अनेकों अकालियों को बड़ी निर्ममता से जलवा और मरवा डाला। इन अत्याचारों से ऊब कर अकालियों ने अहिंसात्मक सत्याग्रह करके इन गुरुद्वारों को अपने-अपने क़ब्ज़े में करने का निश्चय किया। फलतः अमृतसर से कुछ दूर 'गुरु के बाग़' नामक स्थान के गुरुद्वारे को उन्होंने अपने हाथ में लेने का निश्चय किया। पहले तो वहाँ के महन्त ने सुलह कर ली पर बाद में फिर झगड़ा हो गया। ग्रन्थ साहब की सेवा में नियुक्त कुछ सेवक 'सङ्गतों' में होने वाले 'लङ्गर' के लिए कुछ बबूल के वृक्ष काट लाए। महन्त ने इस पर एतराज़ किया और पुलिस को बुला लिया। सरकार ने अकालियों को वहाँ जाने से रोका, इस पर अकालियों ने सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया। वे उस जङ्गल में लकड़ियाँ काटने जाते, पुलिस उन्हें रोकती और जब नहीं मानते तो बुरी तरह पीटना शुरू कर देती। यह मारना तब तब जारी रहता, जब तक वे निहत्थे वीर बेहोश हो कर गिर न जाते! हज़ारों पठान और अन्य पुलिसवाले उन पर प्रहार करते पर अपने धर्म और अपनी आन पर मर मिटने वाले ये सिक्ख पैर पीछे नहीं हटाते थे। इतनी बलिष्ठ, हृष्ट-पुष्ट और सशक्त जाति का एक बार भी अपने आक्रमणकारियों पर हाथ न छोड़ना, हमारे इतिहास की अविस्मरणीय घटना रहेगी। सच पूछा जाए तो गाँधी जी की अहिंसा की उपयोगिता जितनी इन वीर सिक्खों द्वारा सिद्ध की गई उतनी कदाचित् कहीं अन्यत्र नहीं। यह पहला ही

अवसर था। जब तलवार से खेलने वाली सिक्ख-जाति ने इतने संयमी और आत्म-नियन्त्रण का परिचय दिया। अन्त में सरकार को झुकना पड़ा और गुरुद्वारों का प्रबन्ध इन अकालियों के हाथ में आ गया!

मुलतान का दङ्गा

इसी साल एक और दुखद घटना हुई। घटना मुलतान की है। ताज़ियों का जुलूस निकलते समय वहाँ एक भयङ्कर साम्प्रदायिक दङ्गा हो गया। इसमें हिन्दुओं को ही भीषण हानि उठानी पड़ी। हिन्दुओं की इस करुण अवस्था को देखकर बड़े-बड़े नेताओं के हृदय पर इसका प्रभाव पड़ा। स्वर्गीय महामना मालवीय जी हिन्दुओं पर किए गए इस दारुण अत्याचार से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने चुपचाप इस पैशाचिक अत्याचार को सह लेने के कारण हिन्दुओं की बड़ी निन्दा की और उन्हें अपने जान-माल और इज़्ज़त की रक्षा के लिए सङ्गठित होने के लिए ललकारा। इसी कारण महामना का झुकाव हिन्दू महासभा की ओर हुआ। इस घटना को इतना महत्व देने का अभिप्राय यही है, कि यहीं से उस साम्प्रदायिक विष-वृक्ष का बीज बोया गया, जो आज पल्लवित होकर पाकिस्तान के रूप में हमारे सामने लहलहा रहा है। इस घटना के कारण ही मालवीय जी हिन्दू-सङ्गठन की ओर लगे, उधर मुसलमान भी चुप न बैठे। स्थान-स्थान पर साम्प्रदायिक दङ्गे होते रहे, जिनमें प्रायः हिन्दू ही पिटते थे। इसी समय से शुद्धि-आन्दोलन तथा तबलीग़ और तनज़ीम की बाढ़-सी आ गई, और हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की खाई बढ़ती हो गई, जिसे पाटने में आज भी हमारे नेतागण अपने को सर्वथा असमर्थ पा रहे हैं।

गया-कॉङ्ग्रेस

इसी साल कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन बिहार में, गया में हुआ। यह बड़े महत्व का अधिवेशन था। सत्याग्रह कमिटी की रिपोर्ट से देश के राजनीतिक वातावरण में बड़ा जोश था। पं० मोतीलाल जी, हकीम अजमल खाँ, देशबन्धु दास आदि नेता कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में थे, पर अधिकांश लोग गाँधी जी के कार्यक्रम के अनुसार चलना चाहते थे इस अधिवेशन के सभापति देशबन्धु दास ही हुए। अन्त में कौंसिल-प्रवेश का प्रश्न कॉङ्ग्रेस की विषय-निर्वाचिनी सभा के सामने उपस्थित हुआ, जिसने बहुमत से इस प्रस्ताव को नामञ्ज़ूर कर दिया। कॉङ्ग्रेस की खुली बैठक में भी यह प्रस्ताव रद्द हुआ। इस साल कॉङ्ग्रेस में एक और महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुआ, जिसके अनुसार यह साफ़ कह दिया गया कि उस दिन के बाद ब्रिटिश सरकार स्वयं अथवा व्यवस्थापिका सभा की रज़ामन्दी से जो भी ऋण लेगी, उसका देनदार स्वतंत्र भारत नहीं होगा। सत्याग्रह-जाँच-कमिटी की रिपोर्ट के अनुसार एक प्रस्ताव और भी पास हुआ कि क़ानूनन हिंसात्मक बचाव जहाँ तक जायज़ है, कॉङ्ग्रेस भी उसे मञ्ज़ूर करती है। देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करने के लिए पच्चीस लाख रुपये और पचास हज़ार वॉलण्टियर जुटाने का प्रस्ताव भी इस साल स्वीकृत हुआ।

स्वराज्य-पार्टी

परिवर्तनवादियों तथा अपरिवर्तनवादियों के उस झगड़े ने, जो गाँधी जी की जेल-यात्रा के बाद उठ खड़ा हुआ था, गया-कॉङ्ग्रेस के बाद और भी उग्ररूप धारण कर लिया। कॉङ्ग्रेस के अधिवेशन से अपना

काम न निकलता देख देशबन्धु दास, पं० मोतीलाल नेहरू, हकीम अजमलखाँ साहब, श्री० विट्ठलभाई पटेल, श्री० केलकर प्रभृति सज्जनों ने 'स्वराज्य-पार्टी' की स्थापना की। श्री० दास ने कॉङ्ग्रेस के सभापतित्व से भी इस्तीफ़ा दे दिया। नयी कौंसिलों के चुनाव १९२३ के नवम्बर में होने वाले थे, इसलिए 'स्वराज्य-पार्टी' ने उसके पहले ही कॉङ्ग्रेस में बहुमत प्राप्त कर चुनाव में लड़ने का निश्चय किया। श्री० दास के इस्तीफ़ा देने पर कॉङ्ग्रेस वर्किङ्ग कमिटी में अपरिवर्तनवादियों का ही बोलबाला था, जिसके प्रधान बाबू राजेन्द्र प्रसाद चुने गए। इस कमिटी ने रचनात्मक कार्य पर ही ज़ोर दिया। इसीलिए गाँधी सेवा-सङ्घ की भी स्थापना हुई पर आपस के मनमुटाव के कारण कोई भी काम ठीक से न हो पाता था। इस स्थिति से ऊब कर मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने, जो उसी समय जेल से छुटे थे, दोनों दलों में समझौता कराने के लिए प्रयाग में एक सभा बुलाई। देशबन्धु दास सभापति हुए। समझौता इन शर्तों पर हो गया, १—कौंसिल-सम्बन्धी प्रचार ३० अप्रैल तक बन्द रहे; २—दोनों पक्ष अपने-अपने कार्यक्रम के दूसरे मदों के सम्बन्ध में जो काम करना चाहें, सो बिना एक दूसरे के काम में बाधा डाले करें; ३—अपरिवर्तनवादी पूर्व निश्चय के अनुसार सत्याग्रह के लिए रुपये और स्वयं-सेवक जुटाएँ; ४—परिवर्तनवादी दूसरे दल के साथ रचनात्मक कार्य तथा अन्य ऐसे कार्यों के लिये, जिसे दोनों मानते हैं, रुपये और कार्यकर्त्ता जुटाने में सहयोग देंगे; ५—३० अप्रैल के बाद, दोनों पक्ष जैसा ठीक समझें कर सकते हैं। पर यह समझौता स्थायी न हो सका। आपस का मनमुटाव, जिसे रोकने के

लिए यह समझौता किया गया था, बढ़ता ही गया। आपस के इस झगड़े से लोग खिन्न हो गए थे। डॉक्टर अन्सारी, श्रीमती सरोजनी नायडू, पं० जवाहरलाल नेहरू, आदि स्थायी समझौता कर लेने के पक्ष में थे। इसके लिए देशबन्धु दास ने यह प्रस्ताव पेश किया, कि कॉङ्ग्रेस के काम को कई विभागों में बाँट देना चाहिए और प्रत्येक विभाग को चलाने का भार ऐसे योग्य व्यक्तियों के हाथ में दिया जाए, जो उसमें विशेष रुचि रखते हों—जैसे राष्ट्रीय-शिक्षा, खादी-प्रचार, कौंसिल-विभाग, मज़दूर-सङ्गठन, सत्याग्रह आदि। पर यह प्रस्ताव पं० मोतीलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, सेठ जमनलाल बज़ाज़ आदि को मान्य न हुआ। अखिल-भारतीय कॉङ्ग्रेस-कमिटी की एक बैठक बम्बई में हुई, जिसमें निश्चय किया गया कि यदि स्वराज्य-पार्टी वाले उसका निर्णय मानें तो कॉङ्ग्रेस का एक विशेष अधिवेशन कर झगड़े का निपटारा कर लिया जाए। पर श्री० दास ने ऐसा कोई आश्वासन देने से साफ़ इन्कार कर दिया। इस पर पं० जवाहरलाल जी ने, बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन के समर्थन से एक प्रस्ताव इस आशय का वर्किङ्ग कमिटी में पास करा लिया कि इस झगड़े को मिटाने के लिए गया-कॉ रेस के आदेशनुसार, चुनाव के विरुद्ध प्रचार न किया जाये! इस पर पहली वर्किङ्ग कमिटी ने इस्तीफ़ा दे दिया और ऐसे लोगों की एक कमिटी बनी जो न तो कट्टर परिवर्तनवादी थे। न कट्टर अपरिवर्तन-वादी ही। डॉ० अन्सारी, इसके सभापति बने और पं० नेहरू मन्त्री।

पर इतने पर भी स्थिति में सुधार न हुआ। दिन पर दिन आपस का यह मनमुटाव बढ़ता ही गया। परिमाण-स्वरूप कुछ लोगों ने

वर्किङ्ग कमिटी को अखिल-भारतीय कमिटी की बैठक करने के लिए मजबूर किया। बैठक नागपुर में हुई, जिसने कॉङ्गरेस का विशेष अधिवेशन बुलाने का निश्चय किया। पर इसी बीच तामिल-नाड कमिटी आदि के विरुद्ध अनुशासन भङ्ग की बात उठने पर वर्किङ्ग कमिटी ने इस्तीफ़ा दे दिया। नयी कमिटी बनी, जिसने कॉङ्गरेस के विशेष अधिवेशन के लिए दिल्ली को चुना। मौलाना आज़ाद इसके सभापति चुने गए।

दिल्ली का विशेष अधिवेशन

पूर्वयोजनानुसार कॉङ्गरेस का विशेष अधिवेशन दिल्ली में हुआ। इसी समय मौलाना मुहम्मदअली जेल से छूट कर आए। उन्होंने परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियों के झगड़े को तय करने का स्तुत्य प्रयास किया। समझौता हो गया। उसके अनुसार कॉङ्गरेस के किसी भी आदमी को चुनाव में खड़े होने की आज्ञा मिल गई। हाँ, यह निश्चय ज़रूर हुआ, कि चुनाव कॉङ्गरेस के नाम पर न लड़ा जाए। इसके अनुसार स्वराज्य-पार्टी को चुनाव लड़ने का अवसर मिल गया।

इधर देश में हिन्दू-मुस्लिम दङ्गे बहुत हो रहे थे। कॉङ्गरेस के इस अधिवेशन में इन झगड़ों के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त करने का निश्चय हुआ। हिन्दू-मुस्लिम समझौते का मसविदा तैयार करने के लिए भी एक कमिटी नियुक्त की गई, तथा सभी धर्म वालों को सम्मिलित कर रक्षा-दल क़ायम करने का भी निश्चय हुआ। केनिया (अफ़्रीका) आदि उपनिवेशों में बसे हुए भारतवासियों पर गोरों द्वारा किए गए अत्याचारों की भी निन्दा इस अधिवेशन में की गई।
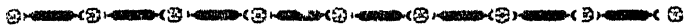
इस अधिवेशन के फल-स्वरूप स्वराज्य-पर्टी ने चुनाव में भाग लिया। मध्यप्रान्त में उन्हें बड़ी सफलता मिली तथा उन्होंने मंत्री मण्डल तक न बनने दिया। वहाँ उनका बहुमत हो गया। यद्यपि बङ्गाल में उन्हें बहुमत न प्राप्त हुआ, फिर भी उन्हें सफलता काफ़ी मिली। अन्य प्रान्तों में भी उन्हें काफ़ी सफलता मिली।

कोकनाडा-कॉङ्गरेस

सन् १९२३ के अन्त में कॉङ्गरेस का सालाना अधिवेशन कोकनाडा में हुआ। इसके सभापति मौलाना मुहम्मद अली हुए। इसमें दिल्ली में हुए कॉङ्गरेस के विशेष अधिवेशन की बहुत-सी बातें मान ली गईं। स्वराज्य-पार्टी को कौंसिल-प्रवेश की दी गई आज्ञा बहाल रक्खी गई। इसके अतिरिक्त, कॉङ्गरेस ने हिन्दू-मुस्लिम समझौते के मसविदे को अखिल भारतीय कमिटी के आगे पेश करने का आदेश दिया। खादी-प्रचार के लिए खद्दर-बोर्ड का भी सङ्गठन किया। ऐतिहासिक दृष्टि से यह अधिवेशन विशेष महत्त्वपूर्ण है। यहीं पर मुसलमानों ने अपनी माँगे स्पष्टरूप से कॉङ्गरेस के सामने पेश कीं! इस दृष्टि से, सभापति के आसन से दिया गया मौलाना मुहम्मद अली का भाषण बहुत महत्त्व रखता है!

इक्कीस दिन का उपवास

इस बीच गाँधी जी जेल से छूट आए। वे अस्वस्थ थे, पर तब भी देश के अहम मसलों में वे पूरी दिलचस्पी ले रहे थे। इस समय देश में साम्प्रदायिक दङ्गों की बाढ़-सी आ गई थी। भागलपुर, दिल्ली, कोहाट आदि स्थानों में भीषण दंगे हो गए। परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तन-वादियों का झगड़ा अभी शान्त न हुआ था। गाँधी जी पञ्च-

हिष्कारों वाली काँग्रेस की नीति पर पूरे ज़ोर से अमल करना चाहते थे और चाहते थे, कि जो काँग्रेस वाले कौंसिलों में हैं, उन्हें भी सूत कातना आदि काँग्रेस के कार्यक्रम का पालन करना चाहिए नहीं तो उन्हें काँग्रेस की मेम्बरी से हटा देना चाहिए। पर स्वराज्य-पार्टी वाले इस बात को मानने को तैयार न थे! जून के महीने में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक अहमदाबाद में हुई। यहाँ का वातावरण बड़ा क्षुब्ध रहा। बड़े वाद-विवाद के पश्चात् गाँधी जी ने अपने उस प्रस्ताव को, जिसमें उन्होंने सूत कातने आदि के रचनात्मक कार्यक्रम को न मानने वाले लोगों को काँग्रेस से हटा देने की बात कही थी, हटा लिया और कुछ शर्तों पर समझौता हो गया। पर देश की साम्प्रदायिक स्थिति में कोई अन्तर न आया, दङ्गे होते ही रहे। इससे ऊब कर गाँधी जी ने इक्कीस दिन तक के लिए अनशन करने की घोषणा कर दी। गाँधी जी के उपवास करते ही देश में हलचल मच गई। अन्त में सभी साम्प्रदाय के लोगों का दिल्ली में एक एकता-सम्मेलन हुआ। इसमें सब सम्प्रदाय वालों ने अपनी-माँगे पेश कीं। कई बातों पर समझौता हो गया और पन्द्रह आदमियों की एक केन्द्रीय राष्ट्रीय पञ्चायत भी स्थापित हुई, जिसे भिन्न-भिन्न धर्मों के स्थानीय प्रतिनिधियों की राय से वहाँ के लिए स्थानीय पञ्चायतें स्थापित करने का अधिकार दिया गया। पर इस सम्मेलन का कोई स्थाई परिणाम न निकला, क्योंकि सभी धर्मावलम्बियों को अपनी माँगे पूरी कराने की जितनी चिन्ता थी, उतनी अपने कर्त्तव्य-पालन की नहीं!

बेलगाँव-कॉङ्गरेस

गाँधी जी के उपवास के कारण परिस्थिति में ज़रा सुधार हुआ ही था, कि गवर्नमेण्ट ने एक नया चक्र चला दिया। उसने यह कह कर, कि वहाँ विप्लवकारियों का भीषण षड्यन्त्र चल रहा है, बङ्गाल में एक नया ऑर्डिनेन्स लगा दिया और उसके अनुसार अपना दमन-चक्र शुरू कर दिया। साथ ही में श्री० सुभाषचन्द्र बोस आदि अनेकों कार्यकर्त्ताओं को भी गिरफ़्तार कर लिया गया। नरम दल वाले भी इस अन्याय से क्षुब्ध हो उठे। स्वराज्य-पार्टी का विचार था कि यह सब षड्न्त्र उन्हीं लोगों को पकड़ने के लिए चल रहा है, क्योंकि उन्होंने कई स्थानों पर मंत्रि-मण्डल भङ्ग कर दिए थे। इससे गाँधी जी भी रुष्ट हुए और उन्होंने स्वराज्य-पार्टी के साथ समझौता कर लिया। इसके अनुसार स्वराज्य-पार्टी को कॉङ्गरेस का अङ्ग बन कर चुनाव लड़ने का अधिकार दे दिया गया। कॉङ्गरेस ने भी विदेशी वस्त्र बहिष्कार के अतिरिक्त, अन्य असहयोग स्थगित करना स्वीकार किया। पर चर्खा और खादी प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा हिन्दुओं में अछूतपन दूर करने का काम सबके लिए अनिवार्य कर दिए गए। इसके अतिरिक्त कॉङ्गरेस की मेम्बरी के लिए चार आने पैसे की जगह अपने हाथ से कता दो हज़ार गज़ सूत अनिवार्य ठहरा दिया गया।

बङ्गाल का दमन और इस समझौते पर विचार करने के लिए अखिल भारतीय कमिटी की बैठक बम्बई में हुई। स्थिति पर विचार करने के लिए देश के अन्य राजनैतिक दलों को भी आमंत्रित किया गया। बम्बई में एक बड़ा राजनैतिक सम्मेलन हुआ, जिसमें मुस्लिम

लीग आदि सभी राजनैतिक दल उपस्थित थे। इसके पहले प्रस्ताव में सरकार की दमन-नीति की निन्दा की गई और स्वराज्य की माँग पेश की गई। दूसरे प्रस्ताव द्वारा एक कमिटी नियुक्त हुई, जिसे इस बात पर विचार करने का आदेश दिया गया कि किस प्रकार राजनीतिक दलों को कॉङ्ग्रेस में शामिल किया जाए और स्वराज्य का एक मस्विदा तैयार करे ; जिसमें हिन्दू-मुस्लिम समस्या आदि सब मसलों का राजनीतिक दृष्टि से हल रहे। अखिल भारतीय कमिटी ने गाँधी जी और स्वराज्य-पार्टी के बीच हुए समझौते को मान लिया। इन दोनों सम्मेलनों से कॉङ्ग्रेस का रास्ता काफ़ी साफ़ हो गया। सन् १९२४ की कॉङ्ग्रेस का सालाना अधिवेशन गाँधी जी के सभापतित्व में बेलगाँव में हुआ, जिसमें पहले दी गई सब बातों पर विचार हुआ। स्वराज्य-पार्टी के साथ का समझौता मञ्जूर हो गया। गाँधी जी राजनैतिक कार्यों, यहाँ तक कि वर्किङ्ग कमिटी बनाने का अधिकार तक स्वराज्य-पार्टी को देने को तैयार थे पर उनका कहना था कि खादी-प्रचार तथा अन्य रचनात्मक कार्यों के लिए उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जाए। इसी कारण कॉङ्ग्रेस के विधान में सदस्य बनने के लिए चार आने शुल्क की जगह हाथ का कता सूत देने की बात मञ्जूर हुई।

कानपूर-कॉङ्ग्रेस

बेलगाँव कॉङ्ग्रेस के पहले ही यद्यपि स्वराज्य-पार्टी के साथ समझौता हो गया था, पर इस झगड़े का अन्त न हुआ। बम्बई में सर्व-दलसम्मेलन होने से आशा की जाती थी कि सभी दल वाले कॉङ्ग्रेस के झण्डे के नीचे आ जाएँगे, पर उसके द्वारा नियुक्त की गई कमिटी अपनी असफलता

की घोषणा कर चुप हो रही। अन्य लोगों का कहना था, कि यद्यपि कॉङ्ग्रेस ने विदेशी-वस्त्र के अतिरिक्त, अपनी असहयोग नीति का त्याग कर दिया है, परन्तु उसने हमेशा के लिए नहीं छोड़ा था। यही नहीं, बेलगाँव में उसने कॉङ्ग्रेस वालों का खादी पहनना अनिवार्य कर दिया था, जिससे अन्य लोग तथा कुछ महाराष्ट्र कॉङ्ग्रेसी भी असन्तुष्ट थे। कॉङ्ग्रेस ने कौंसिल के काम आदि का भार स्वराजियों के हाथ में दे दिया था, अतः अन्य दल वालों को उसमें शामिल होकर चुनाव लड़ने में अपना स्वार्थ सिद्ध होता न दिखाई दिया। लोग स्वराज्य-पार्टी की अड़ङ्गा नीति से असन्तुष्ट थे। क्योंकि उनका विचार था कि कॉङ्ग्रेस को मंत्री-मण्डल में भाग लेकर विधान बनाने में सहायक होना चाहिए। स्वयं स्वराज्य पार्टी में दो दल हो गए। एक दल विधान में भाग लेना चाहता था तो दूसरा केवल अड़ङ्गा नीति में विश्वास रखता था। इसी बात को लेकर डॉ० मुन्जे तथा श्री० अभ्यङ्कर में बहुत दिनों तक वाद-विवाद चलता रहा। ऐसे ही विक्षुब्ध वातावरण में कॉङ्ग्रेस का सन् १९२५ का सालाना अधिवेशन श्रीमती सरोजिनी नायडू के सभापतित्व में हुआ। इस अधिवेशन की विशेषता यह थी कि इसका कार्यक्रम स्वराज्य-पार्टी द्वारा ही बनाया गया, जिसने पं० मोती लाल जी के सभापतित्व में कई प्रस्ताव विषय-निर्वाचिनी सभा के सम्मुख उपस्थित किए। एक प्रस्ताव के द्वारा दक्षिण-अफ़्रीका में हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध बनाए गए नए क़ानून का विरोध किया गया। दूसरे प्रस्ताव द्वारा बर्मा में हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध जो कार्रवाई की जा रही थी। उसकी निन्दा की गई। एक प्रस्ताव बड़े महत्व पास का हुआ। इसके

अनुसार निश्चय हुआ कि असेम्बली में प्रस्ताव पास करके स्वराज्य की माँग पेश की जाए और यदि फ़रवरी के अन्त तक गवर्नमेण्ट की ओर से कोई सन्तोषजनक कार्यवाही न की जाए तो सारे स्वराजी मेम्बर अपना बयान देकर वहाँ से चले आवें।

कॉङ्ग्रेस में स्वतन्त्र दल

मार्च के महीने में सरकार की ओर से कोई संतोषजनक उत्तर न पाकर पं० मोतीलाल जी प्रभृति नेता असेम्बली से बाहर निकल आए। हिन्दू-सभा और आर्य समाज ने शुद्धि आन्दोलन को ज़ोर से चलाना शुरू कर दिया था। मुसलमान भी चुप न बैठे थे, उनका तबलीग़ और तन्ज़ीम आन्दोलन चल ही रहा था। इससे बड़ी कटुता आ गई थी। जगह-जगह पर दङ्गे हो रहे थे। कोहाट में दङ्गा हो ही चुका था, इधर कलकत्ते में भी भयङ्कर दङ्गा हो गया। इस परिस्थिति से ऊब कर गाँधी जी मौलाना शौकत अली के साथ जाँच करने रावलपिण्डी पहुँचे। पर जाँच कमिटी के इन दोनों मेम्बरों में भी एक मत न हो सका। दोनों की अलग-अलग रिपोर्ट छपी। इसका देश पर अच्छा असर न पड़ा और यह समस्या दिन प्रतिदिन जटिल होती गई। दङ्गे बढ़ते ही गए और हिन्दू और मुस्लिम नेताओं में वैमनस्य बढ़ता ही गया। ख़िलाफ़त कमिटी के लोग भी इससे प्रभावित हुए और आपस में बड़ा विष-वमन होता रहा। बिहार के मोहम्मद शफ़ी और पं० नेहरू में मतभेद हो गया। इधर लाला लाजपतराय और पं० मोतीलाल नेहरू में भी मतभेद हो गया। इससे लाला जी ने पं० मालवीय की सहायता से एक स्वतन्त्र कॉङ्ग्रेस दल स्थापित कर लिया, जिसने स्वराजियों के विरुद्ध ही अपने सदस्यों

को खड़ा किया। इससे आपस में बड़ा मनमुटाव फैला और कई स्थानों में व्यक्तिगत आक्षेप तक किए गए।

गोहाटी कॉङ्ग्रेस

सन् १९२६ में कॉङ्ग्रेस का सालाना अधिवेशन गोहाटी में हुआ। इसी बीच एक मुसलमान आततायी ने स्वामी श्रद्धानन्द जी की हत्या कर दी। उसकी पैरवी के लिए खड़े हुए मौलाना मुहम्मद अली-जैसे नेता! इस पर हिन्दुओं में बड़ी सनसनी फैली और हिन्दू-मुस्लिम समस्या बड़े विकट रूप में सामने आई। इस अधिवेशन के सभापति श्री श्रीनिवास ऐयङ्गर किसी भी तरह एकता स्थापित करने के पक्ष में थे! उनका कहना था कि मुसलमानों को गो-वध करने का पूरा अधिकार है और वे जब चाहें गाय मार सकते हैं पर यह बात हिन्दुओं को मान्य न थी! गाँधी जी स्वराज्य पार्टी के हाथ में राजनीति की बागडोर देकर तटस्थ हो गए थे। नाभा के महाराज के पदच्युत किए जाने की निन्दा का एक प्रस्ताव आया पर गाँधी जी के यह कहने से, कि कॉङ्ग्रेस को देशी-राज्यों के मामले में न पड़ना चाहिए, वह पास न हो सका। अहमदाबाद कॉङ्ग्रेस के बाद से हर साल एक प्रस्ताव उपस्थित किया जाता था कि कॉङ्ग्रेस का ध्येय पूर्ण-स्वतन्त्रता है, पर वह कभी पास न हो सका। गोहाटी अधिवेशन के सभापति श्री० आयङ्गर भी इस प्रस्ताव के पक्ष में थे, पर यहाँ भी यह पास न हो सका!

मद्रास कॉङ्ग्रेस

सन् १९२० के नए विधान के अनुसार यह निश्चय किया गया था कि पार्लामेण्ट दस बरसों पर उस विधान को कार्यान्वित किए जाने की

-रीति और राजनीतिक परिस्थिति पर विचार के लिए एक कमीशन नियुक्त-करेगी। कॉङ्ग्रेस आदि सभी प्रमुख राजनीतिक दलों ने इसका बहिष्कार किया था। सन् १९२० के चुनाव में कॉङ्ग्रेस ने भाग न लिया था। सन् १९२३ के चुनावों में कॉङ्ग्रेस ने भाग लेकर काफ़ी सफलता प्राप्त कर ली थी, और पं० मोतीलाल जी के नेतृत्व में उसने सरकार को कई बार नीचा दिखाया था। इससे प्रभावित होकर सरकार ने दस वर्षों से पहले ही सन् १९२७ में साइमन कमीशन भेजने की घोषणा की। सन् १९२८ के प्रारम्भ से ही कमीशन अपना काम शुरू करने वाला था; पर चूँकि उसमें एक भी भारतीय सदस्य नहीं था अतः सभी दलों ने इसका बहिष्कार किया। इसी वातावरण के बीच सन् १९२७ की कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन मद्रास में हुआ। इसके सभापति डॉ० अन्सारी चुने गए। साइमन कमीशन आने वाला था ही अतः कॉङ्ग्रेस ने निश्चय किया कि उसका विरोध करने से ही काम न चलेगा, वरन् सब दलों को मिलकर भारत के लिए एक विधान तैयार करना चाहिए। यहाँ भी पूर्ण-स्वतन्त्रता का प्रस्ताव आया। पं० जवाहरलाल नेहरू ने इसे विषय निर्वाचिनी समिति में पास कराया। पर अभी यह प्रस्ताव रूप में ही रहा और आगे चलकर लाहौर कॉङ्ग्रेस में पास हुआ। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए भी एक प्रस्ताव आया। इसके अनुसार मुसलमानों को गोवध करने का अधिकार मिलता था। चूँकि इससे हिन्दुओं में असन्तोष फैलता अतः गाँधी जी के कहने से इसे संशोधन करके पास किया गया।
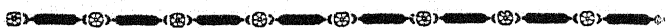
नेहरू कमिटी

इसी बीच बारदोली में ज़मीन पर 'कर' बढ़ाने के कारण सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया गया। यह सत्याग्रह ख़ूब सफल रहा। इसका नेतृत्व सरदार वल्लभभाई पटेल के हाथ में रहा जिन्होंने अपनी कार्य-कुशलता का अच्छा परिचय दिया। सरकार ने गुजरात से बाहर के लोगों को आने से मना कर दिया, पर उन लोगों ने बाहर से ही यथा-शक्ति सहायता पहुँचाई। इस सत्याग्रह ने देश में नई जान डाल दी।

मद्रास काँग्रेस के निश्चय के अनुसार विधान बनाने के लिए एक कमिटी नियुक्त हुई। पं० मोतीलाल जी इस के संयोजक थे, अतः यह नेहरू कमिटी के नाम से विख्यात हुई। इस कमिटी की योजना को, सब दलों के प्रतिनिधियों ने, कुछ बातों को छोड़ कर, मान लिया था। कलकत्ता काँग्रेस के अवसर पर इसे, एक सर्वदल सम्मेलन बुला कर सब दल वालों से स्वीकृत करवा लेने का निश्चय किया गया।

इसी बीच साइमन कमीशन ने देश में भ्रमण करना प्रारम्भ किया। सभी जगह इसके विरुद्ध प्रदर्शन हुए और काले झण्डे के साथ 'साइमन गो बैक' के नारों से इसका स्वागत किया गया। जनता में अपार उत्साह फैल गया। पञ्जाब में प्रदर्शन के समय पुलिस ने लाठियाँ चलाईं जिसमें लाला लाजपतराय की जाँघ तक चोट आई। इससे जनता में सरकार के विरुद्ध और भी रोष फैल गया।

कलकत्ता काँग्रेस और सर्व दल-सम्मेलन

इस अधिवेशन का ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व है। काँग्रेस में नेहरू रिपोर्ट तथा 'स्वराज्य' की परिभाषा को लेकर बहुत वाद-

विवाद चल रहा था। पं० जवाहरलाल जी, सुभाष बाबू प्रभृति लोग पूर्ण स्वराज्य के पक्ष में थे। दूसरे लोग औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में थे। नेहरू रिपोर्ट औपनिवेशिक स्वराज्य को ध्येय बना कर लिखी गई थी। पं० मोतीलाल जी ही इस अधिवेशन के सभापति थे। कॉङ्ग्रेस की विषय निर्वाचिनी समिति में स्वराज्य की परिभाषा के सम्बन्ध में बहुत वाद-विवाद हुआ। अन्त में महात्मा जी के कहने से इस बात पर सुलह हो गई, कि एक वर्ष तक कॉङ्ग्रेस का जो ध्येय है वही रहे, और यदि साल के बीच सरकार नेहरू-रिपोर्ट को नहीं मान लेती तब पूर्ण-स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी जाय। इस प्रकार एक प्रकार से यहीं पूर्ण-स्वतन्त्रता वाला प्रस्ताव पास हो गया।

इस अधिवेशन के साथ ही सर्व-दल सम्मेलन भी डॉ० अन्सारी के सभापतित्व में हुए। वहाँ श्री० जिन्ना ने दो बातों पर विशेष ज़ोर दिया। पहले, वे केन्द्रीय असेम्बली में मुसलमानों के लिए एक तिहाई सीटें चाहते थे। दूसरे, सूबों में मुसलमानों को उन सभी विषयों पर अधिकार मिलना चाहिए जो केन्द्रीय गवर्नमेण्ट को साफ़ तौर पर विधान में में दे दिए गए हों। इन माँगों से कई लोग, विशेष कर हिन्दू-सभा वाले असहमत थे। इस प्रकार यह सम्मेलन असफल रहा। इसके बाद मुसलमानों ने भी एक सर्व-दल समेम्लन बुलाया, जिसमें अली बन्धु-जैसे प्रतिष्ठित कॉङ्ग्रेसी नेता भी सम्मिलत हुए। यहीं से मुसलमानों ने अपनी एक प्रभावशाली संस्था बना ली, और कॉङ्ग्रेस से अलग होकर अपनी माँग पेश की। श्री० जिन्ना ने इसी समय मुसलमानों की ओर से अपनी चौदह माँगें पेश कीं।

लाहौर कॉङ्ग्रेस

इस साल कॉङ्ग्रेस का महत्वपूर्ण अधिवेशन पं० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में लाहौर में हुआ। इधर भारत के वॉयसरॉय लॉर्ड इर्विन ने एक घोषणा इस आशय की निकाली कि सरकार तो स्वयं समझौता करने को उत्सुक है। उनके अनुसार सरकार तो अपनी घोषणाओं में औपनिवेशिक स्वराज्य को तो मान ही चुकी है, अब वह एक गोलमेज़ परिषद् बनाने को भी तैयार है। पं० मोतीलाल जी और महात्मा जी इसी विषय को लेकर वॉयसरॉय से मिले भी, पर स्पष्ट हो गया कि यह घोषणा सरकार का वाग्जाल-मात्र है। अन्त में पूर्व योजनानुसार यहाँ पूर्ण-स्वतन्त्रता को ध्येय बताया गया। इससे जनता में बड़ा जोश फैल गया। स्थान-स्थान पर, २६ जनवरी को स्वतन्त्रता-दिवस मनाया गया और लोगों ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने की प्रतिज्ञा की। इसी समय स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सत्याग्रह प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया। इस प्रकार सन् १९२९ का साल भारतीय कॉङ्ग्रेस के इतिहास में विशेष महत्व रखता है।

नमक-सत्याग्रह

साबरमती-आश्रम में वर्किङ्ग कमिटी की मीटिङ्ग हुई। इसके अनुसार गाँधी जी ने नमक पर से कर उठा लेने के लिए सत्याग्रह करने का निश्चय किया तथा इसके लिए सूरत-ज़िले के 'डण्डी' नामक गाँव को चुना गया जो समुद्र के किनारे था। सन् १९३० के सत्याग्रह की एक विशेषता यह थी कि गाँधी जी ने घोषणा कर दी कि वे स्वतन्त्रता लेकर ही साबरमती लौटेंगे! इससे जनता में उत्साह छा गया। गाँधी

जी अस्सी आदमियों को लेकर आश्रम से चले, परन्तु रास्ते में तो जनता का समूह ही टूट पड़ा। इधर सरकार का दमन-चक्र शुरू हुआ। गाँधी जी गिरफ़्तार कर लिए गए। पं० मोतीलाल जी, पं० जवाहरलाल जी, श्रीमती नायडू आदि सभी नेता जेल में ठूँस दिए गए। नमक के अतिरिक्त विदेशी वस्तु बहिष्कार व मद्यनिषेध आन्दोलन ने भी ज़ोर पकड़ा। स्थान-स्थान पर पिकेटिङ्ग हुई। लाठी-चार्ज और गिरफ़्तारियों की तो बाढ़-सी आ गई। कई स्थानों पर तो गोलियाँ भी चलीं। इस सत्याग्रह से दुखित हो श्री० विट्ठलभाई पटेल ने असेम्बली से इस्तीफ़ा दे दिया। निसन्देह इस आन्दोलन में जनता ने बड़े संयम, वीरता और उत्साह का परिचय दिया।

गाँधी-इरविन समझौता

सत्याग्रह का ज़ोर देख सरकार भी जनता की जागृति की क़ायल हुई। अन्त में उसने एक गोलमेज़ परिषद् बुलाने का निश्चय किया। सरकार और कॉङ्ग्रेस के बीच समझौता कराने का सर तेज बहादुर सप्रू, श्री० जयकर आदि ने स्तुत्य प्रयास किया पर प्रधान-मंत्री मेकडॉनल्ड ने एक मूर्खतापूर्ण भाषण देकर सब कुछ समाप्त कर दिया! इसी बीच वर्किङ्ग कमिटी के सभी मेम्बर छोड़ दिए गए। वर्किङ्ग कमिटी की बैठक प्रयाग में हुई जिसमें गोलमेज़ से लौटे हुए सदस्य भी आए। गाँधी जी ने स्थिति समझी और लॉर्ड इरविन के पास उनसे मिलने के लिए एक पत्र भेजा। दिल्ली में गाँधी जी और वॉयसरॉय में भेंट हुई और बड़े वाद-विवाद के पश्चात् समझौता हो गया। अब तक सत्याग्रह थोड़ा-बहुत चल ही रहा था, पर अब समझौता हो जाने के कारण वह स्थगित कर दिया गया और सभी राजनैतिक क़ैदी छोड़ दिए गए।

यह समझौता अपना विशेष महत्व रखता है। यह पहला ही अवसर था, जब सरकार ने जनता के एक प्रतिनिधि से बात करने में अपना अपमान न समझा। नमक के सम्बन्ध में भी कुछ सहूलियतें ग़रीबों को मिल गईं। गुजरात के किसानों पर किए गए अत्याचारों की जाँच के लिए एक कमिटी बिठाने का भी आश्वासन वॉयसरॉय ने दिया।

कराची-कॉङ्ग्रेस

सर्दी की अधिकता के कारण लाहौर में ही यह तय हुआ कि कॉङ्ग्रेस का सालाना अधिवेशन फ़रवरी के अन्त अथवा मार्च के प्रारम्भ में हुआ करेगा। यह अधिवेशन बड़े विषाद का था। श्री० यतीन्द्रनाथ दास की मृत्यु से देश विक्षुब्ध था ही, इसी बीच लाहौर षड्यन्त्र केस के तीन अभियुक्तों को फाँसी लगा दी गई। इससे चारों ओर बड़ी सनसनी फैली। गाँधी जी के प्रति भी कुछ अनादर का भाव दिखाया गया। इस अधिवेशन में दो मुख्य प्रस्ताव पास हुए। पहले के अनुसार समझौता मञ्ज़ूर कर लिया गया। दूसरे के अनुसार स्वतन्त्र भारत के विधान का ख़ाका बनाया गया, जिसमें भारतीय नागरिकों के मौलिक अधिकारों—विशेषकर आर्थिक स्वतन्त्रता पर प्रकाश डाला गया। एक प्रस्ताव द्वारा सरदार भगतसिंह आदि के फाँसी पर लटकाए जाने पर शोक प्रकट किया गया। इस अधिवेशन के सभापति सरदार वल्लभ भाई पटेल हुए।

दूसरी गोलमेज परिषद्

इस बीच दूसरी गोलमेज़ परिषद् की बात छिड़ी। कॉङ्ग्रेस ने गाँधी जी को ही अकेला प्रतिनिधि बना कर भेजा। इसी बीच विलायत का मंत्रिमण्डल बदल गया जिसमें अनुदार दल की प्रधानता हो गई

इसमें कोई भी फ़ैसला न हो सका। प्रधान-मन्त्री रैमज़े मैकडॉनल्ड इस बात पर ज़ोर दे रहे थे, कि जब तक हिन्दू, मुसलमान, हरिजन आदि एकमत नहीं हो जाते तब तक ब्रिटिश सरकार के लिए कोई फ़ैसला देना असम्भव है। आपस में कोई बात तय न हो सकी, पर गवर्नमेण्ट ने मुसलमानों की सभी बातें मान लीं। हरिजनों को भी पृथक निर्वाचन की व्यवस्था दी गई, जिससे गाँधी जी बड़े असन्तुष्ट हुए। इधर भारत में लॉर्ड वेलिङ्गटन जनता को दबाने का बहाना खोज रहे थे। बहाना मिल भी गया। ग़ल्ले की सस्ती के कारण इलाहाबाद के किसान लगान न दे सके, जिसका सम्बन्ध गवर्नमेण्ट ने लगानबन्दी आन्दोलन से लगाया और भीषण दमन करना आरम्भ कर दिया। बङ्गाल में हिजली कैम्प जेल की घटना को लेकर भी अत्याचार शुरू हुए। इधर गाँधी जी परिषद् से निराश लौटे, और आते ही गिरफ़्तार कर लिए गए, फिर तो गिरफ़्तारियों, ऑर्डिनेन्स और दमन की बाढ़-सी छा गई। इस साल (१९३२) का कॉङ्ग्रेस अधिवेशन उत्कल में होने वाला था, मालवीय जी सभापति चुने गए थे, पर गिरफ़्तारियाँ तथा कॉङ्ग्रेस के ग़ैर-क़ानूनी घोषित किए जाने के कारण बड़ी चतुराई से दिल्ली में हो गया।

हरिजनों के लिए अनशन

यरवदा जेल में गाँधी जी ने हरिजनों के लिए अनशन किया। गोलमेज़ परिषद के अनुसार हरिजनों को पृथक निर्वाचन का अधिकार मिला था, जो स्पष्टतः सवर्ण और दलित हिन्दुओं में फूट डालने का प्रयत्न था। इस अनशन ने देश भर में हलचल मचा दी। कई नेताओं

के बीच-बचाव से ही हरिजन नेता श्री० अम्बेदकर से सुलह हो गई। इसके अनुसार हिन्दुओं की निर्धारित संख्या में ही हरिजनों के लिए कुछ जगहें सुरक्षित कर दी गईं। इसके बाद अछूतोद्धार की ज़ोर की लहर आई। इसी समय 'हरिजन सेवक सङ्घ' की स्थापना हुई।

कलकत्ता कॉङ्ग्रेस

दिल्ली-कॉङ्ग्रेस की तरह सन् १६३३ का कॉङ्ग्रेस अधिवेशन भी ऐसे समय हुआ जब देश में सत्याग्रह के कारण दमन का ज़ोर था। और कॉङ्ग्रेस एक ग़ैर-क़ानूनी संस्था घोषित की जा चुकी थी। इसके सभापति मालवीय जी चुने गए थे, पर वे अन्य कई नेताओं के साथ गिरफ़्तार कर लिए गए। इस विकट परिस्थिति के बीच भी अधिवेशन हुआ और लगभग सभी प्रस्ताव पास कर लिए गए।

बम्बई कॉङ्ग्रेस

सन् १९३३ के मध्य से ही सत्याग्रह आन्दोलन में सुस्ती आ गई थी। इसी बीच सरकार की तरफ़ से एक श्वेत-पत्र (*White Paper*) निकला जिसमें उन सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया था, जिनके अनुसार नया विधान बनने वाला था। उसे देख, देश के कई नेताओं को आशा बँधी और उन्होंने निश्चय किया, कि अब कॉङ्ग्रेस को सत्याग्रह स्थगित कर चुनाव में भाग लेना चाहिए। बात गाँधी जी तक पहुँची और उन्होंने उनकी बात मान कर सत्याग्रह स्थगित कर दिया। इस पर सभी सत्याग्रही छोड़ दिए गए। ऐसे ही वातावरण में सन् १६३४ का सालाना अधिवेशन हुआ। बाबू राजेन्द्रप्रसाद इसके सभापति हुए। श्वेत-पत्र के बाद यह पहला अधिवेशन था, अतः यहाँ विधान के

सम्बन्ध में भी कॉङ्ग्रेस को अपना मत देना था। इसी साल नवम्बर में केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव भी होने वाले थे अतः कॉङ्ग्रेस को चुनाव सम्बन्धी अपनी नीति पर भी प्रकाश डालना था। अधिवशन के कुछ पहले ही गाँधी जी ने कॉङ्ग्रेस से कोई क्रियात्मक सम्बन्ध न रखने का निश्चय घोषित किया। विधान के संशोधन में काफ़ी बहस हुई। अन्त में कॉङ्ग्रेस ने प्रधान मंत्री मेकाडॉनल्ड के निर्णय को अन्यायपूर्ण ठहराया, पर आपस के झगड़े को मिटाने के लिए न उसका विरोध किया, न स्वीकार ही। इसी अधिवेशन में कॉङ्ग्रेस के प्रतिनिधियों की संख्या प्रान्तों की आबादी के स्थान पर कॉङ्ग्रेस सदस्यों की संख्या के अनुपात से निर्धारित करना निश्चित हुआ।

चुनाव

सत्याग्रह स्थगित कर कॉङ्ग्रेस ने चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया था। इसके अनुसार सन् १९३५ के चुनाव में कॉङ्ग्रेस ने भाग लिया और अधिकांश स्थानों में उसकी विजय हुई। इसी बीच कॉङ्ग्रेस ने श्री० जिन्ना से भी समझौता करने का प्रयत्न किया पर ऐसा हो न सका!

लखनऊ कॉङ्ग्रेस

सन् १९३४ का सालाना अधिवेशन गिरफ्तारियों के कारण मार्च में न हो कर अक्टूबर में हुआ था। यदि सन् १९३५ का अधिवेशन मार्च में किया जाता तो पहले अधिवेशन के ठीक पाँच महीने बाद यह अधिवेशन होता, अतः यह निश्चय हुआ कि अधिवेशन सन् ११३६ के मार्च में हो। निश्चयानुसार इस बार का अधिवेशन पं० जवाहर लाल जी

के सभापतित्व में लखनऊ में हुआ। पण्डित जी का झुकाव समाजवादियों की ओर ही था, अतः कॉङ्ग्रेस के नेताओं के बीच इस बार काफ़ी मतभेद दिखाई दिया। मतभेद अधिकतर चुनाव और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति को लेकर हुआ।

फ़ैज़पूर कॉङ्ग्रेस

लखनऊ कॉङ्ग्रेस में ही तय हुआ था कि कॉङ्ग्रेस सन् १९३७ के चुनाव में भाग लेगी, अतः सन् १९३६ चुनाव सम्बन्धी तैयारी में ही बीता। इसी साल कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन बम्बई प्रान्त के फ़ैज़पुर नामक ग्राम में हुआ। गाँधी जी का कहना था, कि कॉङ्ग्रेस को ग्रामीणों के सम्पर्क में आने के लिए अपने अधिवेशन गाँवों में करने चाहिएँ, जिससे उसके प्रबन्धादि में ग्रामीणों का भी कुछ आर्थिक लाभ हो—इसी योजनानुसार यह प्रथम ग्रामीण अधिवेशन हुआ। इसकी विशेषता यह थी कि इसकी सजावट आदि का सारा इन्तज़ाम ग्राम की चीज़ों से ही किया गया था। इसके सभापति पं० जवाहर लाल जी नेहरू चुने गए। चुनाव नज़दीक थे अतः यहाँ चुनाव के सम्बन्ध में बड़ा उत्साह रहा।

चुनाव में जीत

कॉङ्ग्रेस के अधिवेशन के बाद का समय बड़े-बड़े नेताओं के चुनाव सम्बन्धी दौरों में बीता। चुनाव हुए और कॉङ्ग्रेस की जीत बम्बई, मद्रास, मध्य प्रदेश, बिहार, युक्तप्रान्त, उड़ीसा और आसाम में हुई। पञ्जाब, बङ्गाल, सिन्ध और सीमाप्रान्त में भी कॉङ्ग्रेसी काफ़ी संख्या में चुने गए। अब प्रश्न यह उठा, कि कॉङ्ग्रेस मंत्रि-मण्डल बनाए या नहीं? गाँधी जी का कहना था, कि मंत्रि-मण्डल बनाने से पहले

कॉङ्गरेस को प्रान्तीय गवर्नरों से इस बात का आश्वासन अवश्य ले ले, कि वे विधान के अनुसार मिले हुए अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग न करेंगे। यह कॉङ्गरेसी दल के नेताओं ने किया भी पर गवर्नरों ने न माना। इस पर सब प्रान्तों में कॉङ्गरेस के बाहर के लोगों की सहायता से मंत्रि-मण्डल बनाए गए, पर यह प्रयास हास्यास्पद ही रहा। अन्त में, तीन महीने बाद गवर्नरों के कुछ आश्वास न देने के बाद उपरोक्त सभी प्रान्तों में कॉङ्गरेसी मंत्रिमण्डल बनाए गए। सीमा-प्रान्त में भी कुछ दिनों बाद कॉङ्गरेसी मन्त्रिमण्डल बन गया। इन चुनावों के समय कई स्थानों पर पार्टी-बन्दी तथा आपस की फूट के प्रमाण मिले। जिनमें मध्य-प्रदेश, उड़ीसा और सीमा-प्रान्त के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। मध्य-प्रदेश में एक मंत्री, डॉक्टर खरे के ख़िलाफ़ अनुशासन-भङ्ग तक ही कार्यवाही करनी पड़ी थी!

हरीपुरा कॉङ्गरेस

कॉङ्गरेसी मंत्रिमण्डल को काम करते हुए सात-आठ महीने ही हुए थे, कि कॉङ्गरेस का अधिवेशन (१६३८) हरीपुरा में, श्री० सुभाषचन्द्र बोस के सभापतित्व में हुआ। इस अधिवेशन में विशेष समारोह और उत्साह देखने में आया। इसी समय अण्डमन के राजबन्दियों को छुड़ाने के सम्बन्ध में मंत्रिमण्डल और गवर्नरों में झगड़ा हो गया, जिससे मंत्रि-मण्डल ने इस्तीफ़ा दे दिया। इस समाचार से भी यहाँ का वायुमण्डल गरम रहा। अन्त में गवर्नरों को मंत्रिमण्डल की बात मान लेनी पड़ी!

त्रिपुरी कॉङ्गरेस

१९३९ के मार्च में कॉङ्गरेस का अधिवेशन मध्य-प्रदेश के त्रिपुरी नामक स्थान में हुआ। इस साल की विशेषता यह थी कि, सभापति-पद के लिए डॉ० पट्टाभि सीतारमैया और श्री० सुभाष बोस में बड़े ज़ोर का मुक़ाबला हुआ। यह लड़ाई गाँधी जी के कार्यक्रम में विश्वास रखने वालों और न रखने वालों में थी। अभी तक कॉङ्गरेस का काम महात्मा गाँधी के कथनानुसार होता था पर श्री० सुभाष अपना अलग कार्यक्रम देना चाहते थे। इसी बीच यूरोपीय लड़ाई छिड़ गई जिसके लिए भी कॉङ्गरेस को अपना भावी-कार्यक्रम निश्चय करना था। अन्त में श्री० बोस विजयी हुए! यह अधिवेशन बड़ी दुखद परिस्थिति में हुआ और आपस में बड़ी कटुता फैली। यद्यपि श्री० बोस बहुमत से चुने गए थे पर कॉङ्गरेस के अधिवेशन में उनकी ओर से आया हुआ प्रस्ताव पास न हो सका। अन्त में श्री० बोस ने सभापतित्व से इस्तीफ़ा दे दिया और बाबू राजेन्द्र प्रसाद सभापति बने। श्री० बोस ने सभापति पद से अलग होकर कॉङ्गरेस के विरुद्ध बहुत प्रचार किया, जिससे उन पर अनुशासन-भङ्ग की कार्यवाही भी करनी पड़ी। अन्त में उन्होंने फ़ॉर्वर्ड ब्लॉक नामक अपनी एक अलग संस्था स्थापित कर ली!

रामगढ़ कॉङ्गरेस

लड़ाई छिड़ते ही कॉङ्गरेस ने ब्रिटिश सरकार से इस बात की माँग पेश की कि वह लड़ाई के बाद भारत के सम्बन्ध में क्या पॉलिसी बर्तेगी इसे अभी से स्पष्ट कर दे। इसी हालत में कॉङ्गरेस ने सरकार को सहायता देने का वायदा किया पर इसकी सुनवाई न हुई। इस पर

सभी प्रान्तों के कॉङ्ग्रेसी मंत्रिमण्डल ने इस्तीफ़ा दे दिया। इसके बाद कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन बिहार के रामगढ़ नामक स्थान में हुआ। इसके सभापति मौलाना अबुल कलाम आज़ाद हुए। अधिवेशन आरम्भ होते ही मूसलाधार पानी बरसने लगा जिससे इसका काम जल्दी ही समाप्त कर देना पड़ा। फिर भी इसका महत्त्व कम नहीं है, क्योंकि लड़ाई के प्रारम्भ से जो नीति वर्किङ्ग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी द्वारा बताई जा रही थी, उसका समर्थन किया गया।

पाकिस्तान योजना

कॉङ्ग्रेसी मंत्रिमण्डल बनने की बात मुस्लिम लीग को न जँची! उसने प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया कि कॉङ्ग्रेस हिन्दुओं की संस्था है और उसमें मुसलमानों के साथ ज़्यादती होती है! उसने मुसलमानों पर किए गए तथा कथित अत्याचारों की जाँच के लिए पीरपुर के राजा की अध्यक्षता में एक कमिटी बिठाई, जिसने 'पीरपुर रिपोर्ट' नाम से एक रिपोर्ट प्रकाशित कर कॉङ्ग्रेस पर काफ़ी विष-वमन किया। इस झूठे प्रचार का प्रभाव मुस्लिम जनता पर खूब पड़ा। रामगढ़-कॉङ्ग्रेस के कुछ दिन बाद ही सन् १९४० में लीग का अधिवेशन लाहौर में हुआ, जिसमें पहली बार पाकिस्तान की माँग पेश की गई।

वैयक्तिक सत्याग्रह

सन् १९४० की गर्मी तक जर्मनी ने अधिकांश यूरोप पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया, ईटली भी लड़ाई में उतर आया। कॉङ्ग्रेस ने अङ्गरेज़ों से बार-बार अपनी भावी नीति के स्पष्टीकरण के लिए कहा,

पर बृटिश कैबिनेट में मि० चर्चिल प्रधान बन गए थे, अतः कोई सुनवाई न हुई। कॉङ्ग्रेस अहिंसा के सिद्धान्त में रूपान्तर कर सरकार को लड़ाई में क्रियात्मक सहायता देने को भी तैयार हो गई पर जब उसने उसका कोई परिणाम निकलते न देखा तो गाँधी जी के सञ्चालन में वैयक्तिक सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया। बड़े-बड़े नेता सरकार की युद्ध सम्बन्धी नीति की निन्दा खुले आम करते और गिरफ़्तार कर लिए जाते। नौ महीने बाद प्रायः सभी छोड़ दिए गए।

क्रिप्स योजना

सन् १९४१ की नवम्बर तक यूरोपीय महायुद्ध ने भीषण रूप धारण कर लिया। जर्मनी की रूस से लड़ाई छिड़ गई। जापान और अमेरिका भी एक दूसरे के विरुद्ध लड़ाई में उतर आए। ऐसी विषम स्थिति में बृटिश कैबिनेट की तरफ़ से एक योजना लेकर सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स भारत पहुँचे। सन् १९४२ के मार्च में यह कैबिनेट मिशन भारत पहुँचा। यह योजना मुख्य रूप से दो भागों में बाँटी जा सकती है। पहले में हिन्दुस्तान के भावी विधान के सम्बन्ध में अपना निश्चय प्रकट किया गया था। दूसरे में भारत सरकार को तत्कालीन शासन-प्रबन्ध के लिए वॉयसरॉय की वर्तमान कौन्सिल में क्या परिवर्तन किया जाएगा, इस पर प्रकाश डाला गया था। इसमें कहा गया, कि लड़ाई के पश्चात् भारत भी बृटिश साम्राज्य का एक उपनिवेश समझा जाएगा तथा विधान बनाने के लिए एक परिषद् बनेगी जिसे प्रान्तीय धारा सभाएँ चुनेंगी। किसी भी प्रान्त को भारतीय सङ्घ से अलग होने का भी अधिकार दिया गया। इस प्रकार मुस्लिम लीग की पाकिस्तान वाली

बात परोक्ष रूप से मान ली गई ! तत्कालीन शासन-प्रबन्ध के लिए कहा गया, कि वॉयसरॉय की कौन्सिल को सेना सम्बन्धी और युद्ध-सम्बन्धी कोई अधिकार न होगा। परन्तु इस वाग्जाल का अर्थ यही था, कि युद्ध-काल में सभी अधिकार वॉयसरॉय के हाथ में ही रहेंगे। अतः कॉङ्ग्रेस ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया।

सन् ४२ की क्रान्ति

इस योजना के असफल हो जाने के बाद कॉङ्ग्रेस ने निश्चय किया कि जापान की बढ़ती हुई ताक़त को देख कर तथा भारत पर उसके हमले की सम्भावना के कारण उसे स्वयं अपनी स्वतन्त्रता के लिए प्रयास करना चाहिए। गाँधी जी ने इस विषय पर कई ज़ोरदार लेख लिखे और यह बात अब स्पष्ट हो गई कि शीघ्र ही कॉङ्ग्रेस की ज़ोरदार लड़ाई छिड़ जाएगी। सरकार की ओर से युद्ध के नाम से बड़ी धाँधली भी हो रही थी। बङ्गाल और आसाम के मल्लाहों की नावें और बिहार आदि कई प्रान्तों के किसानों की ज़मीनें लड़ाई के 'सुप्रबन्ध' की दृष्टि से ज़ब्त कर ली गईं थीं, तथा अन्नादि वस्तुओं के अभाव के कारण जनता में बड़ा असन्तोष था और जनता किसी भी आन्दोलन में प्राणपण से सहायता देने को तैयार थी। वर्किङ्ग कमिटी की एक बैठक में यह निश्चय हुआ, कि अहिंसात्मक भद्र अवज्ञा करना कॉङ्ग्रेस के लिए ऐसी स्थिति में अनिवार्य है, अतः अगस्त के प्रारम्भ में बम्बई में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक बुलाई गई। ८ अगस्त, १९४२ को सत्याग्रह सम्बन्धी प्रस्ताव अखिल भारतीय कमिटी में पास हुआ, साथ ही बम्बई में एकत्र सभी नेता गिरफ़्तार कर लिए गए। इस सत्याग्रह के लिए

गाँधी जी ने कोई कार्यक्रम नहीं बनाया था। उनका कहना था कि सत्याग्रह का प्रस्ताव पास होने के बाद ही कार्यक्रम की बात आती है, पर प्रस्ताव के पास होते ही वे गिरफ़्तार हो गए, जिससे जनता के सामने कोई निश्चित कार्यक्रम न आ सका। इधर बर्मा में सुभाष बाबू ने आज़ाद-हिन्द फ़ौज इकट्ठी कर रक्खी थी। उनका उद्देश्य भी इसी समय भारत पर अधिकार कर लेने का था। इस आशाजनक स्थिति से जनता में आश्चर्यजनक उत्साह छा गया। स्थान-स्थान पर लोगों ने पुलिस चौकियाँ जला डालीं, रेल की पटरी और तार काट कर यातायात के सभी साधन विच्छिन्न कर डाले, कई स्थानों पर अङ्गरेज़ों को भी पीटा। गोरखपुर में श्री० शिब्बनलाल सक्सेना ने सत्याग्रह के काम को ज़ोर से चलाया। इधर बलिया को स्वर्गीय श्री० चित्तू-पाण्डे ने कई दिनों तक स्वतन्त्र रक्खा। बिहार ने भी बड़ा जोश दिखाया। स्थान-स्थान पर गिरफ़्तारियाँ हुईं और गोलियों में कई लोग शहीद हुए। इस क्रान्ति की विशेषता यह थी, कि इसमें जनता ने अहिंसा को छोड़ कर हिंसात्मक पथ को अपनाया और इसी कारण इसका प्रभाव भी सरकार पर यथेष्ट पड़ा! इसी हिंसात्मक क्रान्ति की नीति पर आगे आने वाले सुधारों का भवन खड़ा हुआ!

शिमला कॉ.फ्रेन्स

सन् ४२ की क्रान्ति का असर सरकार पर पड़ कर ही रहा। सन् १९४५ की जून तक वर्किङ्ग कमिटी के सभी सदस्य छोड़ दिए गए और तत्कालीन वॉयसराय लॉर्ड वेवल ने एक योजना देश के सामने रक्खी। इस पर विचार करने के लिए सभी दल वाले एकत्रित हुए। कॉङ्ग्रेस

ने एक प्रकार से इसे मान लिया। अपने सदस्यों के नाम तक दे दिए पर मुस्लिम लीग न मानी। उसका कहना था कि मुसलमान सदस्यों की संख्या अधिक होनी चाहिए और मुसलमान सदस्यों को चुनने का एक मात्र अधिकार लीग को होना चाहिए। कॉङ्ग्रेस ने यह बात न मानी इससे यह योजना भी निष्फल ही रही।

इसके बाद की घटनाएँ इतनी ताज़ी हैं कि उनका उल्लेख करना व्यर्थ है।
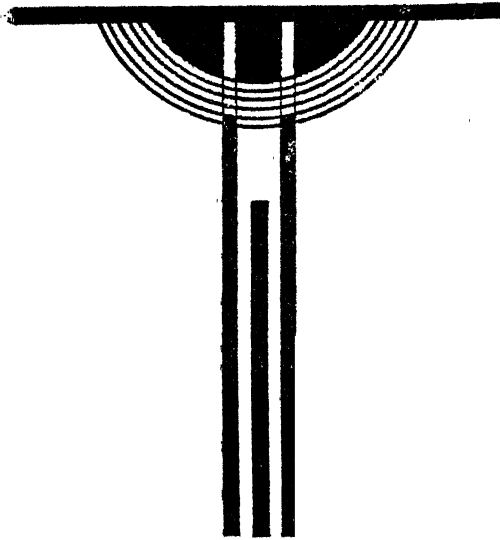
— अमर-शहीद —

सरदार भगतसिंह

(एक-मात्र प्रमाणिक जीवनी)

लेखक : श्री० जितेन्द्रनाथ सान्याल

अनुवादिका : कुमारी स्नेहलता सहगल, एम० ए०

भूमिका लेखक : माननीय बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन

सम्पादक : आर० सहगल

इस पुस्तक के रचयिता अमर-शहीद स्वर्गीय सर्दार भगतसिंह के अभिन्न साथियों में से एक हैं, जो लाहौर षड़यंत्र केस में आपके साथ ही गिरफ्तार हुए थे। एसेम्बली बम-काण्ड की यादगार तथा विलायत में प्रचार के लिए इस पुस्तक का केवल अङ्गरेज़ी संस्करण ही सन् १९३१ में प्रकाशित हो पाया था, जो दूसरे ही दिन ज़ब्त हो गया और इसके प्रिंटर श्री० त्रिवेणी प्रसाद, बी० ए० को ६ मास तथा लेखक (श्री० सन्याल) को दो वर्षों का कठिन कारावास दण्ड दिया गया। पुस्तक-प्रकाशक (श्री० सहगल जी) को हज़ारों रुपयों की क्षति उठानी पड़ी। इसी से पुस्तक का महत्व समझा जा सकता है।

पुस्तक में अमर-शहीद सर्दार भगतसिंह का पारिवारिक परिचय, संक्षिप्त जीवनी तथा उनकी लगभग सभी कारगुज़ारियों के अतिरिक्त, कुछ ऐसे सनसनीखेज़ बयानात भी हैं, जो ज़ब्ती तथा सेन्सर के कारण देशवासियों के सामने अभी तक नहीं आ सके थे। पुस्तक के अन्त